प्रकाशक
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मन्त्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ
वर्धा (बंबई राज्य)

पहली बार १०,०
दिसम्बर, १९५६
मूल्य एक रुपया

मुद्रक
० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

'भूदान यज्ञ : कि ओ केन' पुस्तक का यह हिंदी संस्करण पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। विनोबाजी ने इसे पढ़कर लेखक श्रीचारुबाबू को लिखा था कि 'आपने हमारे आन्दोलन के बुनियादी विचारों का बहुत ही अच्छे ढंग से विवरण किया है। पुस्तक मुझे सर्वांगपरिपूर्ण मालूम हुई।'

भारत की अन्य भाषाओं में भी इस पुस्तक के अनुवाद हो रहे हैं। विनोबाजी के शब्दों में हम भी आशा करते हैं कि 'जो यह पुस्तक लेगा, उसके हृदय से दान-धारा नित्य बहती रहेगी।'

उत्तर भारत ले गये। दक्षिण भारत मे और भी कई ज्ञानी, भक्त और सत पुरुषो ने जन्म ग्रहण किया था एव उन्होने भी सम्पूर्ण भारत मे भक्ति-मार्ग का प्रचार किया था। परिणामस्वरूप, वैचारिक दृष्टि से उत्तर भारत और दक्षिण भारत एक ही राष्ट्र में परिणत हो गये। यद्यपि भारत के विभिन्न क्षेत्रो में सब मिलाकर अनेक राज्य थे, तथापि विचारधारा की दृष्टि से कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक ही राज्य फैला था।

"इसके बाद मुसलमान लोग बाहर से आये। वे अपने साथ एक नयी सस्कृति ले आये। इसलाम धर्म सबको समान मानता था। उपनिषद् आदि में समानता की बात थी अवश्य, किन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था मे या सामाजिक आचरण मे इसका लेशमात्र भी नही था, बल्कि इससे उल्टी स्थिति थी। यह समाज-व्यवस्था असाम्यमूलक जातिभेद-प्रधान थी। इसीलिए मुसलमानो की सस्कृति के साथ यहाँ की सस्कृति का सघर्ष आरम्भ हुआ। मुसलमान लोग अपनी सस्कृति के विकास के लिए हिंसा और प्रेम, दोनो ही मार्गो का अनुसरण करते थे, ऐसा प्रतीत होता है। ये दोनो ही मार्ग दो धाराओ के समान एक साथ चले। गजनी, औरगजेब आदि ने हिंसा-पथ अपनाया और दूसरी ओर, अकबर, कबीर आदि ने प्रेम-पथ। मुसलमानो ने तलवार के बल पर इस देश पर विजय पायी थी, अथवा इस देश के निवासी युद्ध मे पराजित हुए थे, यह बात कोई नही बता सकता। किन्तु, युद्ध हुआ था, यह बात सत्य है। परन्तु, उससे पहले मुसलिम सतो ने इस देश में आकर इसलाम की समतामूलक वाणी को ग्राम-ग्राम मे पहुँचा दिया था। इस जातिभेदवाले देश के लोग उन लोगो के प्रचार से खूब प्रभावित हुए थे। इस प्रकार ये दो सस्कृतियाँ एक-दूसरे के निकट आयी। इसके बाद इस देश मे अनेक भक्त उत्पन्न हुए। उन लोगो ने जातिभेद के विरुद्ध प्रचार किया और एक ही परमेश्वर की उपासना पर विशेष बल दिया। इसने इसलाम को लाभ पहुँचा, इसमें सन्देह नही। आर्य सस्कृति और द्रविड सस्कृति का जो सम्मिश्रण हुआ था, उसमें इसलामी सस्कृति भी जुड गयी।

"इस प्रकार भारत मे जो सस्कृति बन गयी थी, उसमे विज्ञान का अभाव था। भारत में एक समय विज्ञान बहुत प्रगति कर चुका था सही,

किन्तु मध्यवर्ती काल मे उसका अभाव रहा। ठीक इसी समय यूरोप में नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार होने से वहाँ शानदार वैज्ञानिक प्रगति हुई और तब यूरोपियन लोग यहाँ आ पहुँचे। भारत अंग्रेजो की परतन्त्रता की बेडियो में जकड गया। दोनो के बीच संघर्ष चलता रहा। संघर्ष के माध्यम से ही सम्मिश्रण की क्रिया आरम्भ हुई। इस मिश्रण के फलस्वरूप एक नयी सस्कृति उत्पन्न हुई। वह है सामूहिक अहिंसा। पहले अहिंसा का प्रयोग दो व्यक्तियो के बीच तक सीमित था। सामुदायिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग नही हो पाता था, क्योंकि विज्ञान की प्रगति के लिए आज मानव-समाज एक-दूसरे के साथ जिस प्रकार सम्बन्ध स्थापित कर रहा है, पहले वैसा सम्भव नही था। आज जहाँ कही भी संघर्ष होता है या सम्बन्ध स्थापित होता है, से सामाजिक रूप प्राप्त हो जाता है। इसीलिए विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप कोई आदोलन आज किसी एक देश तक सीमित नही रह पाता। वह विश्वव्यापी आदोलन में परिणत हो जाता है। आज एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ या एक समाज का दूसरे समाज के साथ सम्पर्क भी स्थापित हो रहा है और संघर्ष भी चल रहा है।" *

अंग्रेज भारत को केवल पराधीन करके ही शात नही हो गये, बल्कि उन्होंने उसे पूर्णत नि शस्त्र कर दिया। इसके बाद भारत मे जाग्रति पैदा हुई और स्वाधीनता-प्राप्ति की लालसा जगी। किन्तु, प्रचलित उपाय से, अर्थात् हिंसा के द्वारा स्वाधीनता-प्राप्ति की स्थिति नही रह गयी थी। हिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करने की जो भी चेष्टाएँ हुईं, वे पूर्णत असफल सिद्ध हुईं। हृदय में स्वाधीनता के लिए तीव्र आकाक्षा थी और बाहर था असफलता और निराशा का घोर अन्धकार। भारत की अन्तरात्मा किसी सफल मार्ग की खोज में लग गयी। परिस्थिति की आवश्यकता ने भारत के अध्यात्म और पाश्चात्य विज्ञान के संयोग से, सामुदायिक अहिंसा को जन्म दिया। युग की माँग पर, जब इस प्रकार के किसी आत्मिक गुण के विकास की स्थिति पैदा होती है, तब एक युग-पुरुष के माध्यम से उस गुण का विकास और

---

* विनोबा

प्रचार होता है। सामूहिक अहिंसा के विकास और प्रचार के लिए युग-पुरुष आविर्भूत हुए—महात्मा गाधी।

सामूहिक अहिंसा के प्रयोग के फलस्वरूप हमने राजनीतिक क्षेत्र में स्वाधीनता प्राप्त की। अहिंसा जीवन का एक आध्यात्मिक विचार है। आत्मा की एकता, अर्थात् सव किसीमे एक ही आत्मा विराजनान है, इस वात का विश्वास ही अहिंसा के सिद्धान्त का मूल है। वह जीवन के मूल मे प्रवेश करती है। जीवन के मूल मे प्रविष्ट हो जाने के वाद जीवन के सभी क्षेत्रो मे उसका प्रयोग न हो, ऐसा सम्भव नही है। इसीलिए आज भारत मे आर्थिक, सामाजिक आदि, जीवन के सभी क्षेत्रो मे सामूहिक अहिंसा-सिद्धान्त के प्रसार और विकास के प्रयत्न चल रहे है। भारत की जो स्थिति आज है, उसमे उसीकी आवश्यकता है। सामुदायिक अहिंसा की चरम परिणति है, सर्वोदय-सिद्धान्त मे। वही चरम और परम ध्येय है।

"अव भारत और पश्चिम की वारी आ गयी है। भारत एक नवीन सस्कृति, नवीन विचारधारा, अर्थात् सामूहिक अहिंसा, पश्चिमी जगत् मे पहुँचायेगा। मनु ने कहा है: 'स्व स्व चरित्र शिक्षेरन्, पृथिव्या सर्वमानवा'—'पृथ्वी के सभी लोग चरित्र की शिक्षा भारत के श्रेष्ठ व्यक्तियो से ग्रहण करेगे।' मनु की यह भविष्यवाणी महात्मा गाधी के आविर्भाव से सत्य सिद्ध हो गयी है।

"आत्मज्ञान और विज्ञान के सयोग से जो परिणाम प्रकट हुआ है, उसका आलोक भारत के माध्यम से सम्पूण विश्व मे विकीण होगा—यही परमेश्वर की इच्छा है।" * इसके लक्षण भी देखने मे आ रहे है। भारत की ओर से शाति-स्थापना की वाणी कोरिया पहुँची और वहाँ युद्ध वद हो गया। भारत ईश्वर की इच्छा सम्पूर्ण रूप से पूरी कर सकेगा क्या? सामूहिक अहिंसा के पूण विकास के लिए जिस त्याग और एकात तथा अक्लात तपस्या की आवश्यकता है, भारत यदि उसे पूरा कर सकेगा, तो वह इस युग मे सम्पूर्ण विश्व को आलोक-दान करने में समर्थ होगा।

---

* विनोवा

अनुक्रम

विषय पृष्ठ

परिशिष्ट

भूदान : क्या और क्यों ?

भूदान-यज्ञ क्या है ?

'यज्ञ'—इस शब्द से हम सब लोग परिचित है। 'यज्ञ' क्या है—यह हम सब न्यूनाधिक जानते है। 'यज्ञ' एक प्रकार की पूजा-पद्धति को कहते है। 'यजति यजते विष्णु सुधी पूजयतीत्यर्थ ।' 'अश्वमेध'-यज्ञ की बात हम लोग जानते है। 'राजसूय'-यज्ञ से भी हम लोग परिचित है। गीता के चतुर्थ अध्याय मे द्रव्य-यज्ञ, तपो-यज्ञ, योग-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ इत्यादि यज्ञो का उल्लेख है। गरुड-पुराण, श्रौतसूत्र आदि ग्रन्थो मे ब्रह्म-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, देव-यज्ञ, नृ-यज्ञ, महाव्रत, सर्वतोमुख, पौण्डरीक, अभिजित्, विश्वजित्, आगिरस इत्यादि अनेक प्रकार के यज्ञो का उल्लेख और वर्णन है। किन्तु 'भूदान-यज्ञ' का उल्लेख कही नही है। यह नवीन शब्द और नवीन यज्ञ है।* 'नवीन' शब्द को लेकर हमारे मन मे शका नही उठनी चाहिए, क्योकि युगान्तरकारी शब्द-रचना से सब लोग पूर्णत परिचित है। 'दरिद्रनारायण' और 'वन्दे मातरम्'—इन दोनो शब्दो के स्रष्टा बगाल के दो महान् मनीषी थे। स्वामी विवेकानद ने 'दरिद्रनारायण' शब्द की रचना की और इस शब्द ने धर्म और समाज-सेवा के क्षेत्र मे युगान्तर उत्पन्न किया। 'वन्दे मातरम्' शब्द के स्रष्टा और द्रष्टा थे ऋषि बङ्किमचन्द्र। भारत की राष्ट्रीयता के उन्मेष और भारतीय स्वाधीनता-सग्राम के इतिहास मे इस शब्दरूपी मत्र का क्या स्थान है, यह सब लोग जानते है। 'भूदान-यज्ञ' शब्द भी भारत मे आर्थिक और सामाजिक समता की स्थापना के क्षेत्र मे क्रातिकारी साबित होगा, इसमे सन्देह नही। विचार-विमर्श जितना आगे बढेगा, भूदान-यज्ञ का तात्पर्य और उद्देश्य क्रमश उतना ही स्पष्ट होगा। सक्षेप मे, इस शब्द का अर्थ यही है कि जो

---

* "भूदान-यज्ञ में 'यज्ञ' शब्द का अर्थ और उद्देश्य" प्रकरण देखिये।

व्यक्ति भूमिहीन दरिद्र है—जो खेती करना जानता है और खेती करना चाहता है, किन्तु दूसरे का खेत जोतने या मजदूरी करने के अतिरिक्त जिसके पास कोई उपाय नही है, उसके लिए भूमिदान, और यह भूमिदान होगा भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करने के लिए, माल्किाना प्रवृत्ति के अत के लिए। अर्थात्, वायु, जल और प्रकाश की भाति भूमि का भी एकमात्र मालिक भगवान् है और सबको अपने हाथ से खेती करने का समान अधिकार है—यह विचार अपने हृदय मे लाकर दाता अपनी मालकियत को समाप्त करने के लिए भूदान-यज्ञ मे भूमि अर्पित करेगा, जिससे कि गांव की भूमि गाँव की हो जाय, अर्थात—भूमि का ग्रामीकरण हो । भूदान-यज्ञ का उद्देश्य है—भूमि के इस प्रकार ग्रामीकरण को आधार मानकर ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक-समाज की रचना करना ।

ईश्वर ने अपने द्वारा निर्मित प्राणियो और मनुष्यो के जीवन-यापन के लिए, जिन सामग्रियो की मूलत आवश्यकता होती है, उन्हे समान भाव से उचित रूप मे सबके लिए सुलभ कर दिया है। इसे कहते हैं 'पचभूत'—'क्षित्यप्तेजमरुत्व्योम'—क्षिति (भूमि), अप (जल), तेज (प्रकाश), मरुत् (वायु) और व्योम (गगन) । हवा का सभी लोग अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार उपभोग कर सकते है। हवा पर सबका समान अधिकार है। प्रकाश पर भी सबका समान अधिकार है और सब लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार उसका उपभोग कर सकते है। जल पर भी सबका बराबर अधिकार है। जब आकाश से वर्षा होती है, तब वह ऊँच-नीच, धनी-दरिद्र का भेद-भाव नही दिखाती। नदी की बहती धारा पर सबका समान अधिकार है। भगवान् की सृष्टि की यह चतुराई है कि मनुष्यो और अन्य प्राणियो के लिए जिस वस्तु की जितनी बडी मात्रा मे आवश्यकता है, वह वस्तु उतनी ही बडी मात्रा मे सुलभ की गयी है। वायु के बिना मनुष्य थोडी देर भी नही जी सकता, इसीलिए वह सर्वाधिक सहजप्राप्य है। जिस प्रकार ईश्वर के दान वायु, प्रकाश और जल पर सबका समान अधिकार है, उसी प्रकार ईश्वरीय दान पृथ्वी पर भी सबका बराबर अधिकार है। भगवान् के दान पर एक व्यक्ति का अधिकार हो और दूसरे का नही, ऐसा ईश्वर का विधान नही हो सकता। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी ने अपनी अनुपम भाषा मे कहा है "सूर्य घर-घर जा पहुँचता

है। उसकी जितनी रश्मि एक राजा पाता है, उतनी ही एक मेहतर भी। भगवान् कभी भी अपनी चीज का असमान रूप मे वितरण नहीं करता। यदि ईश्वर ने हवा, जल, प्रकाश और गगन के वितरण मे भेद-भाव नही किया है, तो यह कैसे सम्भव है कि उसने भूमि का सब लोगो मे बराबर-बराबर वितरण न कर केवल कुछ लोगो के हाथ मे उसे छोड दिया ?" किन्तु, युग के बाद युग और शताब्दी के बाद शताब्दी तक समाज मे आर्थिक अव्यवस्था रहने के कारण भूमि मनुष्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गयी है। आज एक व्यक्ति के पास भूमि है ओर एक के पास नही। एक व्यक्ति के पास जरूरत से ज्यादा भूमि है ओर एक व्यक्ति के पास उसकी जरूरतो की तुलना मे सर्वथा नगण्य। इसीलिए देश मे इतना हाहाकार है। देश के विकट सम्पत्ति-वैपम्य की जड यही अस्वाभाविक ओर विकारग्रस्त भूमि-व्यवस्था है। सहृदय लोग यह अनुभव कर सकते है कि किस प्रकार दरिद्र भूमिहीनो का करुण-क्रन्दन भारत के अन्तस्तल को छेद रहा है। माँ की गोद पाने के लिए मातृहीन शिशु जिस प्रकार आकुल-आग्रह करता है, उसी प्रकार भूमिहीन दरिद्र भूमि पाने के लिए व्याकुल होकर प्रतीक्षा कर रहे है। जिस प्रकार निस्सतान स्त्री भले ही दूसरे के बच्चे का लालन-पालन करे, पर उससे उसके अपने गर्भ से उत्पन्न सन्तान को गोदी खिलाने की स्वाभाविक आकाक्षा तृप्त नही होती, उसी प्रकार दूसरे की भूमि को आबाद करने पर भी भूमिहीन दरिद्र भूमि के लिए अपनी क्षुधा को तृप्त नही कर पाता।

ग्राम-सघटन का कार्य सफल क्यो नही हो पाता ? सघटन-कर्ताओ की अभिज्ञता क्या है ? भूमिहीनो को चरखा दिया जाता है, तात दी जाती है, अन्यान्य गृहशिल्प दिये जाते है, किन्तु इन चीजो को वे हृदय से ग्रहण नही कर पाते—इन चीजो से उनका हृदय तृप्त नही होता। इसका कारण यह है कि भूमिहीन सर्वप्रथम भूमि चाहता है—भूमि को वह 'अपनी भूमि' के रूप मे देखना चाहता है। आज भारत तथा एशिया महादेश के जिन स्थानो मे जो भी अशाति दिखाई पडती है, उसके मूल मे यही भूमि-समस्या है। अतएव भूमि-समस्या के शातिपूर्ण समाधान पर भारत का कल्याण निर्भर करता है। भारत मे सामाजिक और आर्थिक समता-स्थापन की दिशा मे इस समस्या का शातिपूर्ण समाधान पहला कदम है।

प्रश्न है कि यह भीषण भूमि-क्षुधा हे क्यो ? ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसीमे इसका कारण भी समाहित है। भगवान् ने सवके समान भाव से उपयोग के लिए 'पचभूत' का जो दान किया हे, भूमि उसीमे से एक है। मनुष्य के जीवित रहने के लिए 'पचभूत' की प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता अपरिहार्य है। मनुष्य के चलने-फिरने के लिए गगन की, सॉस लेने के लिए वायु की, पीने के लिए जल की और ताप-रक्षा के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। ये चारो चीजे तो मनुष्य अपनी आवश्यकता के अनुसार समान अधिकार के साथ ग्रहण कर सकता है, किन्तु केवल इन्ही चीजो को लेकर जीवित नही रहा जा सकता।

जीवन-रक्षा के लिए इन वस्तुओ के अतिरिक्त खाद्य-पदार्थों, वस्त्रो और निवास-स्थान की भी आवश्यकता होती है। खाद्य-पदार्थो, वस्त्रो और निवास-स्थान के लिए आवश्यक सामग्रियो के उत्पादन का एकमात्र साधन भूमि या भूगर्भ है। अतएव भू-उत्पादित या भूगर्भ-उत्पादित सामग्रियो पर मनुष्य के भोजन, वस्त्र और निवास की व्यवस्था निर्भर करती हे। भूमि या भूगर्भ छोडकर और किसी भी साधन से इन आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो सकती। मनुष्य अपने हाथो से या यन्त्रो के सहारे अनेक पदार्थ तैयार कर सकता है, किन्तु खाद्य-सामग्रियॉ, साग-सब्जी और फल-मूल एकमात्र भूमि से ही उत्पन्न हो सकते है। हमारे वस्त्रादि के लिए रूई ओर चरखा तथा तॉत के लिए लकडी भूमि से ही उत्पन्न होती है, वस्त्र-निर्माण के यत्रो का लोहा भी भूगर्भ से ही उत्पन्न होता है। घर या निवास मिट्टी, ईट या पत्थर से वने, पर उसकी प्रत्येक सामग्री भूमि या भूगर्भ से ही उत्पन्न होती है। इस प्रकार थोडा भी विचार करने से यह वात समझ मे आ जाती है कि हमारी जीवन-रक्षा और सुख-स्वच्छंदता के लिए जिस किसी सामग्री की आवश्यकता पडती हे, उसकी त्पत्ति भूमि या भूगर्भ से ही होती है। वायु, प्रकाश ओर जल के साथ भूमि । पार्थक्य यही है कि वे सब सहज सुलभ है, उनको पाने के लिए परिश्रम नही करना पडता, परन्तु खाद्यान्न, वस्त्र तथा निवास-स्थान पाने के लिए चोटी का पसीना एडी तक वहाकर परिश्रम करना पडता है। भगवान् ने मनुष्य को जहाँ खाने के लिए एक मुँह दिया है, वही उत्पादन करने के लिए दो हाथ भी दिये है। भूमि मनुष्य के जीविकोपार्जन का मौलिक क्षेत्र और खाद्य-पदार्थ, वस्त्र तथा निवासस्थान के उत्पादन का मौलिक साधन है। इसीलिए

वायु, जल और प्रकाश की तरह भूमि पर मनुष्यों का समान अधिकार न होने से मनुष्य का जीवन दूसरे के हाथ में बंधक पड़ जाता है और मनुष्य—विशेषकर वह मनुष्य, जो भूमि पर दोनों हाथों से परिश्रम कर उत्पादन और जीविकोपार्जन करना चाहता है—अपनी साँस घुटती हुई महसूस करता है। आज यदि ऐसा होता कि वायु पर मनुष्य पूर्ण नियंत्रण की क्षमता प्राप्त कर लेता और वायु मनुष्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में परिणत हो जाती, अधिकांश वायु पर केवल थोड़े-से लोगों का अधिकार हो जाता, वायु पर जमीन्दारी और मालगुजारी-प्रथा लागू हो जाती और वायु का मूल्य प्रति बीघा दो सौ रुपये और एक बीघा वायु की मालगुजारी दस रुपये तय हो जाती, तब जरा सोचिये तो कि क्या अवस्था होती ? जिसके अधिकार में वायु नहीं होती, वह प्राण बचाने के लिए वायु के जमीन्दार या मालगुजार के पास दौड़-धूप करता। वह समझता कि वायु के जमीन्दार या मालगुजार के हाथ उसके जीवन-मरण का प्रश्न है। जिस प्रकार कहानी की राक्षसी के हाथ मनुष्य के जीवन और मृत्यु की लकड़ियाँ होती हैं, उसी प्रकार जो व्यक्ति खेती करना जानता है और खेती करना चाहता है और जिसके लिए खेती के अतिरिक्त जीविका की अन्य कोई व्यवस्था करना सम्भव नहीं है, और जिसके पास 'अपनी' भूमि नहीं है—वह व्यक्ति भी अनुभव करता है कि उसका जीवन और मरण जमीन्दार या मालगुजार के हाथ में है—उसके जीवन और मृत्यु की लकड़ियाँ जमीन्दार और मालगुजार के हाथ में हैं। इसका कारण यह है कि जीवन-रक्षा के लिए वायु, जल और प्रकाश के अतिरिक्त उसे और भी जिन तीन चीजों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है, अर्थात् भोजन, वस्त्र और निवास-स्थान, उनके उत्पादन का एकमात्र साधन भूमि उसके हाथ में नहीं है। इसके लिए उसे निर्भर करना पड़ता है दूसरे की इच्छा और खुशी पर। इसीलिए वह श्वासरुद्ध मनुष्य की भाँति अपने को अनुभव करता है। उसके अन्तर के अन्तरतम प्रदेश की यही अनुभूति होती है। उसके अन्तर की यही भाषा होती है। वह मूक है। अब वह क्रमशः मुखर हो रहा है। यदि शीघ्र और शांतिपूर्वक भारत में भूमि का समान बँटवारा नहीं हुआ, तो भारत की प्रगति अवरुद्ध हो जायगी। भारत को एक कल्पनातीत दुर्दैव का सामना करना पड़ेगा।

यहाँ प्रसंगवश एक आवश्यक बात समझ रखनी होगी। जो साँस लेना

पन छोडकर और क्या हो सकता है ? विनोवाजी पागल है और उनके पीछे आप कुछ पागल लोग जुट गये है। हमारे शास्त्रो ने, हमारे महाभारत ने यह शिक्षा दी है कि विना लडाई किये कोई किसीको जमीन नही देता—शातिपूर्वक कोई भूमि नही छोडता।" लेखक ने उत्तर मे उन लोगो से कहा था . "किन्तु, महाभारत से मैने इसके विपरीत शिक्षा ग्रहण की है। पाण्डवो की न्यायसगत भूमि कौरवो ने नही लौटायी। शाति के रास्ते सूई की नोक के वरावर भी भूमि नही दी। लड़ाई हुई। तत्कालीन भारतवर्ष के सभी राजाओ ने कौरवो अथवा पाण्डवो का पक्ष ग्रहण किया। प्राय सभी कौरव मारे गये, पाण्डवो की भी अवस्था प्राय यही हुई। कुल मे दीपक जलाने लायक केवल थोडे से लोग वच रहे। इतना मर्मान्तिक परिणाम निकला। इस सम्वन्ध मे महाभारत यदि कोई शिक्षा देता है, तो यही कि जो भूमि जिसे मिलनी हो, उसे वह दे देनी चाहिए, अन्यथा सर्वनाश अनिवार्य और अवश्यम्भावी है।"

किन्तु, फिर भी मन से सशय दूर नही होता। ऐसा कहा जाता है कि इतिहास मे ऐसा कोई उदाहरण उपलव्व नही है। जो वात कभी अतीत मे नही हुई, वह अव कैसे सम्भव होगी ?—इस तरह की आपत्ति या आशका का कोई कारण नही है। इतिहास मे कौन विषय स्थान पाता है ? जो वात कभी नही हुई, वह सम्भव होने पर इतिहास मे स्थान प्राप्त करती है। जो वात हुई है या होती है, वह तो इतिहास नही है। फ्रासीसी विप्लव होने से पूर्व इतिहास मे क्या उसकी कोई मिसाल थी ? विना शस्त्र के लडाई करके भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की—इससे पूर्व इतिहास मे क्या ऐसी कोई घटना घटी थी ? इसलिए यह आशका निराधार है। फिर भी मन पूर्णत सशयमुक्त नही होता। भूदान-यज्ञ आदोलन की उत्पत्ति, विकास और आज तक के फल का अध्ययन करने और भूदान-यज्ञ मे निहित भाव-धारा को हृदयगम करने पर यह सशय दूर होगा, ऐसी आशा है।

यह विनोवा कौन है ?

भूदान-यज्ञ के स्रष्टा और प्रवर्तक है आचार्य विनोवा भावे। कौन है यह विनोवा ? वे आजीवन सेवाव्रती सन्यासी है, महात्मा गाधी के वडे अनुयायी है, गाधी-मत्र के श्रेष्ठतम धारक और वाहक है। उन्हे महात्मा गाधी

का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कहा जाता है। वही उत्तराधिकारी योग्य उत्तराधिकारी होता है, जो अपने पूर्वजो से प्राप्त सम्पत्ति मे वृद्धि करता है और वही शिष्य योग्य शिष्य होता है, जो गुरु को छोडकर भी चल सकता है। इस अर्थ मे विनोवा महात्मा गाधी के योग्य आध्यात्मिक उत्तराधिकारी और शिष्य है। वे आज के युग-पुरुष है। स्वाधीनता-प्राप्ति के वाद भारत में रामराज्य या 'सर्वोदय' की प्रतिष्ठापना महात्मा गाधी का लक्ष्य था। किन्तु, स्वाधीनता-प्राप्ति के कुछ ही दिनो वाद वे इस ससार से चले गये। उनके स्वप्न को पूरा कर सकने योग्य कोई महापुरुष उस समय दिखाई नही पडता था। अतएव देश हताशा के अन्धकार से आच्छन्न हो गया था। विनोवा वहुत दिनो से एकान्त-साधना मे लीन थे। उस एकान्तवास को त्याग कर विनोवा वाहर आये और कुछ दिनो के अन्दर ही उनकी आलोक-छटा से दिक्-दिगन्त उद्भासित हो उठा। कुछ ही दिनो के अन्दर देश के ग्राम-ग्राम, नगर-नगर मे एक नवीन जाग्रति आयी। आज सारा भारत आशाभरी दृष्टि से उनकी ओर देख रहा है। इस समय सारा ससार शाति-पिपासु है। इसीलिए ससार के अन्यान्य देश भी अतीव उत्कण्ठा के साथ उनके मुख से निकली हुई शाति की वाणी सुन रहे हैं—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार प्यासा प्यास वुझाने के लिए पानी ग्रहण करता है। सन् १९४० ईसवी में श्री महादेव देसाई ने विनोवा के सम्बन्ध मे लिखा था "लोग आज नही, कुछ वर्ष वाद विनोवा का प्रभाव समझ पायँगे।" उनकी यह भविष्यवाणी सफल सिद्ध हुई है।

महाराष्ट्र के (वम्वई प्रदेश-अन्तर्गत) कोलावा जिला के गागोदा ग्राम मे सन् १८९५ के ११ सितम्वर को ब्राह्मण-कुल मे विनोवा का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम नरहरि भावे एव माता का नाम रुक्मिणी देवी अथवा रखुमाई था। उनके पितामह थे शम्भुराव भावे।

विनोवा के पितामह शम्भुराव उदार, धर्म-परायण और तेजस्वी पुरुष थे। उस समय भी वे छुआछूत नहीं मानते थे। साम्प्रदायिकता से वे दूर थे। किसीकी निन्दा की परवाह न कर एक वार उन्होने एक मुसलमान सगीतज्ञ को पाटेश्वर मदिर मे ले जाकर भजन सुना था। वे चान्द्रायण व्रत का पालन करते थे। यह वहुत कठिन व्रत होता है। शम्भुराव के तीन पुत्र थे—नरहरि, गोपालराव और गोविन्द। वडे पुत्र नरहरि वुद्धिमान् और महत्त्वा-

काकी थे। उन्होने कॉलेज की पढाई छोडकर, बुनाई का काम सीखकर बडौदा के एक कारखाने मे काम करना आरम्भ कर दिया था।

नरहरि के प्रथम पुत्र है विनोबा। विनोबा का पूरा नाम विनायक नरहरि भावे है। घर में उन्हे लोग 'विन्या' कहकर पुकारते थे। महात्मा गाधी के आश्रम मे आने पर उन्हे गाधीजी से 'विनोबा' नाम मिला। विनोबा के तीन भाई है—बालकृष्ण, शिवाजी और दत्तात्रेय। विनोबाजी के एक और भाई पैदा हुए थे, किन्तु बचपन मे ही उनकी मृत्यु हो गयी थी। उनके एक बहन भी थी, जिनका नाम 'शान्ता' था। बचपन मे ही छोटे भाई दत्तात्रेय की मृत्यु हो गयी। विवाह के कुछ वर्षो के बाद ही बहन की भी मृत्यु हो गयी। गाधीजी के साबरमती आश्रम मे भरती होने के बाद विनोबा के दोनो भाई बालकृष्ण और शिवाजी ने भी अपने बडे भाई का पदानुसरण किया और वही चले गये तथा उन्होने आश्रम के कार्य मे जीवनोत्सर्ग कर दिया। बालकृष्ण (बालकोबा) अभी महात्मा गाधी द्वारा सस्थापित उरुलिकाचन प्राकृतिक चिकित्सालय का कार्यभार ग्रहण किये हुए है। शिवाजी विख्यात भाषा-शास्त्री और सत-साहित्य के प्रगाढ पडित है। भारत के लिपि-सशोधन के काम मे वे लगे है।

विनोबा का बचपन पहाडो से घिरे हुए गागोदा ग्राम में बीता। पितामह की धर्मनिष्ठा, भक्ति-भाव एव तेजस्विता की विनोबा के सुकुमार हृदय पर गम्भीर छाप पडी। उनकी माता बहुत धर्मपरायणा और भक्तिमती महिला थी। उनका हृदय विशाल और उदार था। माता ही विनोबा की सर्वश्रेष्ठ गुरु थी। उन्होने अपनी माता से बहुत-कुछ पाया है। माँ कोई गहना नही पहनती थी। कितना भी जाडा हो, वे बडे तडके उठकर ठडे जल से स्नान करती थी। अपने पिता से सीखे हुए बहुत-से मराठी भजन उन्हे याद थे। भोजन बनाते समय भी वे भजन गुनगुनाती रहती थी। भजनो मे कभी-कभी वे इतनी निमग्न हो जाती थी कि तरकारी मे दो बार नमक डाला या एक बार भी नही इसका भी उन्हे खयाल नही रहता था। पुत्र विनोबा भी तन्मय होकर माँ का भजन सुनते थे। धर्म-भाव के विकास के लिए माँ विनोबा को साधु-सतो की कहानियाँ सुनाती थी। इसीसे विनोबा के मन मे धर्म-ग्रन्थो का पारायण करने की उत्कठा जगी। माँ के निर्देशानुसार विनोबा को भोजन

करने के पहले तुलसी के वृक्ष मे जल चढाना पडता था और इस प्रकार माँ पुत्र को यह सिखाती थी कि दूसरो को खिलाये बिना स्वयं नही खाना चाहिए—यहाँ तक कि पेडो को भी खिलाये बिना नहीं खाना चाहिए। माँ पुत्र को साथ लेकर शिव-मन्दिर जाती और शिव-मस्तक पर किये जानेवाले जलाभिषेक को दिखाकर समझाती कि बूँद-बूँद करके जो अभिषेक हो रहा है, वही साधना का रूप है। एक बाल्टी पानी एक साथ ही उडेल देने से अभिषेक या साधना नही होती। बहुत छोटी उम्र से ही भोजन-सुख के प्रति विनोवा वीतराग थे। माँ भी उन्हे सिखाती कि किसी चीज के प्रति 'और चाहिए' की आकाक्षा रखने मे सुख नही मिलता। सयम से ही असली सुख प्राप्त होता है। माँ ने एक वार आम खरीदकर खाने के लिए पुत्र को पैसे दिये, किन्तु विनोवा आम खाने की बात ही भूल गये और दूसरे दिन उन्होने पैसे माँ को लौटा दिये। उनकी माँ उदार और समदर्शी थी। उनके घर एक अन्धे सज्जन आश्रित थे। विनोवा आदि उन्हे 'अंधा चाचा' कहकर पुकारते थे। उनकी माँ उन सज्जन के प्रति ऐसा व्यवहार करती थी कि उनके जीवन-काल तक विनोवा आदि यह नही समझ पाये कि वे परिवार के सदस्य न होकर वाहरी आदमी थे। 'अंधे चाचा' की मृत्यु के वाद जव लोगो ने अशौच-पालन नही किया, तव उन लोगो ने माँ से पूछा और यह जान पाये कि वे सज्जन इस परिवार के सदस्य नही थे।

माँ का स्वभाव सचमुच सेविका-जैसा था। किसी पडोसी के वीमार पड जाने पर वह उसके घर जाकर भोजन आदि वना आती। एक दिन अपने घर भोजन वना चुकने के वाद एक पडोसी के यहाँ भोजन वनाने के लिए चलने लगी, तो विनोवा के मन में यह सन्देह हुआ कि माँ के मन मे स्वार्थपरता तो नहीं है। किन्तु, माँ से पूछने पर उनकी समझ मे यह वात आयी कि माँ के मन मे स्वार्थ नही, वरन् परमार्थ था। उनकी समझ मे यह वात आ गयी कि अपने घर भोजन वनाने के वाद वे दूसरे के घर भोजन वनाने क्यो जा रही थी, पहले क्यो नही गयी ? वात दरअसल यह थी कि देर से भोजन वनने पर पडोसी को गरम भोजन मिलेगा, इसी खयाल से वे वाद मे वहाँ जा रही थी। घर पर सवल, स्वस्थ भिक्षुक आने पर भी वे उसे निराश नहीं करती थी। किन्तु, विनोवा का कहना था कि कार्य-सक्षम, सवल और स्वस्थ भिक्षुक को भिक्षा देना अन्याय करना है, आलस्य को प्रश्रय देना है। एक दिन विनोवा ने

अपनी माँ से यह वात कही, किन्तु इसका जो उत्तर माँ ने उन्हे दिया, उसका खडन करने की शक्ति विनोवा मे नही थी और आज तक नही है। उन्होने कहा "द्वार पर जो भिक्षा माँगने आता है, वह भिक्षुक नही है, वह तो साक्षात् भगवान् है। भगवान् को क्या कुपात्र समझना चाहिए ?" माँ के यही सव महान् आचरण देखकर विनोवा के तरुण मन मे समभाव और भक्ति के वीज प्रस्फुटित हुए।

धर्मग्रन्थ पढने के प्रभाव और माँ के सरल, सहज, परिशुद्ध जीवन के घनिष्ठतम साहचर्य ने विनोवा के तरुण मन को साधना की ओर आकृष्ट किया। शनै शनै विनोवा ने कठिन जीवन विताना आरम्भ कर दिया। यह देखकर माँ ने एक दिन उनसे कहा · "विन्या, गृहस्थाश्रम-धर्म का ठीक से पालन करने पर एक पीढी का उद्धार होता है, किन्तु, उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करने से सात पीढियो का उद्धार होता है।" इस प्रकार माँ ने पुत्र का मन ब्रह्मचर्य-पालन करने की ओर आकृष्ट किया था। उस समय विनोवा की आयु केवल दस वर्ष की थी। उससे पूर्व रामदास स्वामी की 'दासवोध' नामक पुस्तक पढकर भी उनका मन ब्रह्मचर्य की ओर आकर्षित हुआ था। माता का आशीर्वाद पाकर दस वर्ष के वालक ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का सकल्प ले लिया।

ऐसे पितामह ! ऐसी माता ! अपने साथ वैराग्य और सन्यासप्रवृत्ति लेकर जन्म ग्रहण करनेवाले लोग ऐसे ही कुलो मे जन्म लेते है।

सन् १९०५ मे ११ वर्ष की आयु मे विनोवा माँ के साथ अपने पिता के कर्मस्थल वडौदा चले आये और विद्यालय मे पढना आरम्भ किया। विनोवा कुशाग्रवुद्धि थे। उनकी स्मरणशक्ति भी असाधारण थी। उन्होने स्वय एक स्थान पर कहा है कि एक समय था, जव उन्हे २०-२५ हजार श्लोक कठस्थ थे। वचपन से ही वे वडे अध्ययनशील थे। विनोवा ने १३-१४ वर्ष की उम्र मे ही वडौदा सेन्ट्रल लाइब्रेरी की सभी पुस्तके पढ डाली थी। यह कितने आश्चर्य की वात है, क्योकि उन दिनो वडौदा सेन्ट्रल लाइब्रेरी देश के सवसे अच्छे पुस्तकालयो मे से एक थी। जव लाइब्रेरी मे कोई पुस्तक पढने को वाकी नही रही, तो उन्होने अपने साथियो के सहयोग से 'विद्यार्थी मडल' नामक एक अध्ययन-सस्था की स्थापना की। कहाँ-कहाँ से लाकर १६०० पुस्तके एकत्र की गयी।

मडल की प्रत्येक पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम पुस्तक थी। विनोबा को घूमने का बड़ा शौक था। ५-७ मील घूमना उन्हे कुछ मालूम ही नही पड़ता। किसी-किसी दिन १२ बजे दिन मे उन्हे टहलने का शौक पैदा होता। साथी लोग मुश्किल मे पड जाते। फिर भी वे गये बिना नही रहते। विनोबा की भाषण देने की शक्ति असाधारण थी। जब वे बोलना शुरू करते, तो धारा-प्रवाह बोलते जाते। आम रास्ते पर खडे होकर साथियो के साथ वाद-विवाद करने के क्रम मे वे बोलने लगते तो भारी भीड एकत्र हो जाती।

विनोबा स्कूल में सदा प्रथम स्थान पाते। मराठी भाषा मे वे बचपन से ही अद्वितीय थे। सस्कृत भाषा मे भी वे असाधारण रूप से दक्ष थे, किन्तु पहले पिता के आदेश पर उन्हें सस्कृत छोडकर फारसी पढनी पडी। मैट्रिकुलेशन परीक्षा मे प्रथम स्थान पाना उनके लिए कोई कठिन बात नही थी। किन्तु, इसके लिए उन्होने कोई चेष्टा नही की, क्योंकि उनका मन दूसरी ओर लगा था। १९१४ ईसवी मे मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर वे कॉलेज में भर्ती हुए। गणित उनका सबसे प्रिय विषय था। गणित मे उनकी असाधारण दक्षता का लोहा सम्पूर्ण छात्र-समुदाय मानता था। किन्तु, साधारण शिक्षा और गतानुगति जीवन-यात्रा मे उन्हें प्रेम नही था। स्कूल मे पढने के समय भी वे कठोर जीवन बिता रहे थे। वे चटाई पर सोते और तकिये का उपयोग नही करते थ। कॉलेज-जीवन भी वैसा ही रहा। स्कूल मे पढते समय ही उनके मन में राष्ट्रीय चेतना जगी थी। वह जमाना स्वदेशी आदोलन और बग-भग का था। कॉलेज में पढते समय उनका मन बगाल के क्रातिकारी दल के कार्यकलापो के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। इस प्रकार उनका मन दो तरफ झुक रहा था. (१) आध्यात्मिकता और (२) देश की स्वाधीनता। इन्ही दो बातो को ध्यान मे रखकर उन्होंने पढना-लिखना छोडकर गृह-त्याग करने का निश्चय किया। इटरमीडियेट परीक्षा के कुछ दिन पहले एक दिन उन्होने चूल्हे के पास बैठकर अपने सर्टिफिकेटो को आग में जलाना आरम्भ कर दिया। माँ ने पूछा कि "वे ऐसा क्यो कर रहे है ?" उन्होने उत्तर दिया "मै अब और नही पढूँगा और कभी नौकरी भी नही करूँगा। इसीलिए सर्टिफिकेटो को जला दे रहा हूँ।" माँ ने कहा कि "सर्टिफिकेटो को रख देने से किसी दिन वे काम आ जाते।" विनोबा ने इसके उत्तर मे कहा "यदि इन्हे रख दूँगा, तो हो सकता है कि किसी दिन

इनकी ममता में बँध जाऊँ। इसीलिए भविष्य की सम्भावना समाप्त कर देना ही अच्छा है।" वे कैसे दृढप्रतिज्ञ थे, यह इस बात से प्रकट हो जाता है। इन्टरमीडियेट की परीक्षा देने के लिए वे बम्बई के लिए रवाना हुए। यह सन् १९१५ की बात है। उस समय उनकी आयु १९ वर्ष थी। किन्तु, बम्बई न जाकर वे काशी चले आये और रास्ते से ही घर पत्र भेजकर सूचित कर दिया कि उन्होंने घर-बार त्याग दिया है।

काशी आकर उन्होंने अच्छी तरह संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया और काशी की प्रख्यात म्यूर सेन्ट्रल लाइब्रेरी मे वे धर्मग्रन्थों के गम्भीरतापूर्वक अध्ययन में संलग्न हुए। धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय के साथ-साथ उन्होंने आसन, प्राणायाम आदि भी आरम्भ कर दिया। दो घंटे एक छात्र को पढाकर वे महीने में दो रुपये कमाते और उसीमे जीवनयापन करते। वे तीन दिन में एक दिन खाते और उनका भोजन होता—दही और शकरकंद। दो उद्देश्यों से प्रेरित होकर उन्होंने गृहत्याग किया था—एक ब्रह्म और दूसरा क्रांति। क्रांति के लिए उनका लक्ष्य था बंगाल और ब्रह्म के लिए हिमालय। काशी में उन्हें बंगाल के क्रांतिकारियों का पता चला। किन्तु, उनके साथ बातचीत करके वे संतुष्ट नहीं हुए। उसी समय वे काशी से हिमालय भी गये थे और वहाँ के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गये थे।

सन् १९१६ ईसवी। हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन-समारोह के उपलक्ष्य में महात्मा गांधी काशी आये थे और उस समारोह में उन्होंने एक बहुत ही प्रभावशाली भाषण किया था। अखबारों में उसे पढकर अन्य लोगों की ही भाँति विनोबा भी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गांधीजी से मुलाकात की और बाद में पत्र लिखकर उस सम्बन्ध में उनसे कई बातें जाननी चाहीं। गांधीजी ने एक पत्र के उत्तर में सामने बातचीत करने के लिए विनोबा को आश्रम में आमन्त्रित किया। उस समय तक महात्मा गांधी का आश्रम साबरमती नहीं गया था। आश्रम अहमदाबाद के कोचरब मुहल्ले में था। विनोबा ने वहाँ जाकर महात्मा गांधी से भेंट की।

आश्रम की सहज सरल जीवन-यात्रा, कथनी और करनी में अभेद, देश-भक्ति एवं त्याग-तपस्या का जीवन देखकर विनोबा विशेष रूप से प्रभावित हुए। जिन दो बातों—क्रांति और आध्यात्मिकता—को लेकर उन्होंने

गृहत्याग किया था, वे उन्हें सयुक्त रूप से महात्मा गाधी के पास देखने को मिली। इसके बाद उन्होंने महात्मा गाधी की इच्छा और अनुमति से आश्रम मे प्रवेश किया।

आश्रम मे प्रवेश पाने के बाद विनोबाजी की जीवन-धारा ने निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होने का अवसर पाया और महात्मा गाधी की तरह सचालक पाकर उन्होंने अपने को धन्य एव कृतार्थ समझा। उन्होंने आश्रम मे जडवत् भरत-सदृश परिश्रम करना आरम्भ किया। पानी भरने, सफाई करने, भोजन बनाने, सूत कातने और कपडा बुनने आदि आश्रम के विभिन्न कार्यो मे वे योगदान करते। किन्तु, अधिक परिश्रम के कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो गया और स्वास्थ्य ठीक करने एव सस्कृत धर्मग्रन्थो का अध्ययन करने के लिए उन्होंने आश्रम से एक वर्ष की छुट्टी ली। फिर उन्होंने वाई नामक स्वास्थ्यप्रद स्थान मे जाकर नारायण शास्त्री नामक महाराष्ट्रीय बाल-ब्रह्मचारी के पास उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र और शाकर-भाष्य, मनुस्मृति, पातञ्जल-योग-दर्शन, वैशेषिक दर्शन और याज्ञ-वल्क्य-स्मृति आदि ग्रन्थो का अध्ययन किया। तदुपरान्त उन्होंने अनेक शिक्षार्थियो को गीता पढाई। इस प्रकार उन्होंने धर्मशास्त्रो और सस्कृत मे अगाध पाण्डित्य लाभ किया। अपने जीवन को आश्रम के आदर्श के अनुसार और भी अधिक सुदृढ बनाने के लिए उन्होंने अपने प्रवास-काल मे भी बहुत कठोर तपश्चर्या की। यहाँ रहकर उन्होंने महात्मा गाधी को अपने एक पत्र मे अपनी दिनानुदिन की कार्यावली का विस्तृत विवरण भेजा। उन्होंने गाधीजी को लिखा था कि वे उन्हे पिता-तुल्य मानते हैं। यह पत्र पाकर महात्मा गाधी को लगा कि पुत्र पिता को पीछे छोडकर आगे जा रहा है। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा "भीम है, भीम।" जिस दिन एक वर्ष पूरा हुआ, उस दिन निश्चित समय पर विनोबा ने चुपचाप आकर आश्रम मे पुन प्रवेश किया। ऐसी थी उनकी नियमनिष्ठा और सत्यनिष्ठा। कुछ दिन बाद आश्रम मे टट्टी साफ करने का काम शुरू हुआ। विनोबाजी ने सबसे पहले यह काम लिया। और तीन महीने तक अत्यधिक निष्ठा और तन्मयता से इसे करते रहे। कुछ काल तक उन्होंने गुजरात विद्यापीठ मे अध्यापन और आश्रम मे व्यवस्थापक का काम भी किया।

सन् १९१८ मे वडौदा मे इन्फ्लुएंजा की वीमारी सक्रामक रूप से फैली। इस वीमारी मे विनोवा की माँ का स्वर्गवास हुआ। माँ मृत्युशय्या पर पडी थी। खवर पाकर विनोवा आश्रम से चलकर माँ की मृत्युशय्या के पास आ खडे हुए। मृत्युशय्या पर पडी होने और वहुत दिन वाद प्रिय पुत्र से अन्तिम मिलन होने के वावजूद माँ ने कहा था : "काम-काज छोडकर क्यो चले आये ?" धन्य है ऐसी माता ! माँ का स्वर्गवास हुआ। विनोवा श्मशान के ब्राह्मणो द्वारा माँ के मुख में अग्निक्रिया कराने के लिए राजी न हुए। वे माँ की शव-यात्रा मे भी नही गये, माँ की आत्मा की शान्ति के लिए वे गीता-उपनिषद् का पाठ करते रहे।

सन् १९२१ मे सेठ जमनालाल वजाज के अनुरोध पर महात्मा गाधी ने विनोवा को वर्धा मे सत्याग्रह आश्रम की स्थापना के लिए भेजा। पहले से ही जमनालालजी सावरमती आश्रम मे आते-जाते थे। उनकी तीव्र इच्छा थी कि महात्मा गाधी वर्धा मे आकर आश्रम की स्थापना करे। उनकी यह इच्छा पूरी नही हुई, किन्तु विनोवा को पाकर वे धन्य हुए। विनोवा ने वहाँ आश्रम की स्थापना की। तव से वर्धा के सभी सगठनमूलक कार्य विनोवा की देखरेख मे पूरे किये जाने लगे। सावरमती आश्रम मे वे एक मौन साधक के रूप मे थे। वर्धा मे आकर वे आश्रम-सचालक वने। आश्रम का उद्देश्य था जीवन-पर्यन्त अहिंसाव्रती देशसेवको की सृष्टि करना। इसलिए आश्रमवासियो के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास की शिक्षा देना जरूरी था। विनोवा ने खूव सोच-विचार के वाद आश्रमवासियो के एकादश व्रत निश्चित किये और उन्हे श्लोक-रूप दिया। आश्रम की प्रात कालीन एव सायकालीन प्रार्थनाओ मे उन श्लोको का पाठ होने लगा और इस प्रकार आश्रमवासियो के चरित्र-गठन का प्रयत्न चलने लगा। ये एकादश व्रत है : सत्य, अहिसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, अभय, सर्व धर्म समभाव, स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण।

वर्धा मे जमनालालजी और उनके परिवार के सभी लोगो के साथ विनोवा का अत्यन्त आन्तरिक और घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गया। जमनालालजी ने उन्हे अपना आध्यात्मिक गुरु मान लिया। विनोवा के आध्यात्मिक और नैतिक प्रभाव से जमनालालजी का जीवन उत्तरोत्तर त्यागमय होने

लगा। जमनालालजी के पुत्र कमलनयन और पुत्री मदालसा की शिक्षा का भार विनोबा ने अपने हाथ मे ले लिया। इस समय की एक घटना विनोबा के उच्च हृदय का परिचय देती है। विनोबा अपने नाम आनेवाले सभी पत्रो को पढकर रख देते थे, और जब बहुत सारे पत्र एकत्र हो जाते थे, तब एक दिन बैठकर उत्तर लिख देते थे और उन पत्रो को फाडकर फेंक देते थे। एक दिन उन्होने एक पत्र पाया, उसे पढा और फाडकर फेंक दिया। इससे कमलनयन विस्मित हुए। उन्होने पत्र के टुकडो को जोडकर देखा। वह महात्मा गाधी का पत्र था और उसमे लिखा था "तुमसे बढकर उच्च आत्मा मेरी जानकारी मे नही है।" बापू का इतना बडा प्रशसापत्र और उसकी यह अवस्था। कमलनयन ने साश्चर्य विनोबा से पूछा "इसको आपने फाडकर फेंक क्यो दिया ?" विनोबा ने सहज भाव से उत्तर दिया "यह मेरे काम नही आयगा, इसलिए फाडकर फेंक दिया।" कमलनयन बोले : "यह तो सग्रह करने योग्य वस्तु थी।" विनोबा ने पुन सहज भाव से उत्तर दिया "जो चीज मेरे काम नही आयगी, उसे क्यो भविष्य के लिए सँभालकर रखूं ? यह तो बापू की महानता है कि उन्होने मुझे ऐसा समझा है। मेरे दोषों को तो उन्होने देखा नही है।" इन थोडी-सी बातो मे ही विनोबा का चरित्र प्रकट हो जाता है। विनोबा कितने अन्तर्मुख है और उनकी प्रकृति आध्यात्मिकता से कितनी समृद्ध है, यह उसका एक उदाहरण है। विनोबा कितने उच्च स्तर के अपरिग्रही है, इसका एक दृष्टान्त यहाँ देना अप्रासगिक न होगा। पहले वे पुस्तक पर अपना नाम लिख देते थे। बाद मे उनके मन मे यह बात आयी कि "पुस्तक पर अपना नाम क्यो लिखूं ? पुस्तक तो सम्पत्ति है। पढ लेने के बाद पुस्तक को सग्रहीत रखना भी परिग्रह है। पुस्तक स्वय पढ लेने के बाद यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसे पढना चाहे, तो उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।" उसी समय से उन्होने पुस्तक पर नाम लिखने की आदत छोड दी। सन् १९१८ मे जब वे अपना सामान अपने सिर पर लेकर पदयात्रा करते थे, तब भी नयी पुस्तक लेना आवश्यक होने पर पुरानी पुस्तके दूसरो को देकर वे अपना बोझ हल्का कर लेते थे।

सन् १९२३ मे विनोबाजी ने वर्धा-आश्रम छोड नागपुर जाकर झडा-सत्याग्रह मे भाग लिया और वहाँ उन्हे कुछ महीने के कारावास की सजा

मिली। जेल से वाहर आने पर सन् १९२४ के आरम्भ मे, महात्मा गाधी के निर्देश पर उन्होने केरल में भाईकम-सत्याग्रह का नेतृत्व किया। वहाँ के सनातनी ब्राह्मण लोग मदिरो के आसपास के मार्गों पर भी हरिजनो को नही चलने देते थे। कुछ समय के सत्याग्रह के वाद सरकारी पक्ष और सनातनियो ने हार स्वीकार कर ली। विनोवाजी पुन आश्रम में लौटकर मौन-माधना मे लीन हो गये। विनोवा ने सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह मे भाग लिया ओर दुर्वल गरीर रहने पर भी उन्होने ताड के पेड काटने का काम शुरू किया। सन् १९३२ के आन्दोलन मे उन्होने धुलिया आदि स्थानो मे भापण किये, जिमके कारण वे गिरफ्तार कर जेल मे डाल दिये गये। वे धुलिया जेल मे थे और सेठ जमनालाल वजाज, प्यारेलाल आदि उनके साथ थे। जेल मे वे लोग एक साथ सूत कातते, गेहूँ पीसते और वैठकर विविध विपयो की चर्चा करते। जेल भी आश्रम के रूप मे परिणत हो गया था। धुलिया जेल मे विनोवाजी का सवसे वडा काम था—गीता पर प्रवचन। प्रति रविवार को एक अध्याय के हिसाव से उन्होने गीता के १८ अध्यायो की अपूर्व व्याख्या की। वे ही प्रवचन आज 'गीता-प्रवचन' पुस्तक के रूप मे सम्पूर्ण भारत मे विख्यात है। उस समय विनोवाजी की आयु केवल ३७ वर्ष की थी। इसी आयु मे आध्यात्मिक साधना मे वे कितने ऊँचे उठ गये थे, इस वात का पता 'गीता-प्रवचन' का अध्ययन करने से लग जाता है। 'गीता-प्रवचन' का मूल मराठी भापा से प्राय सभी भारतीय भापाओ मे अनुवाद हो चुका है और इसकी कई लाख प्रतियाँ विक चुकी है। 'गीता-प्रवचन' एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमे इन्होने गीता के आधार पर पूर्ण जीवन-दर्शन की व्याख्या की है। जो लोग इसका श्रद्धासहित अध्ययन करेंगे, उनका जीवन निश्चित रूप से सेवा और त्यागमय एव ईश्वराभिमुखी हो जायगा। भूदान-यज्ञ आरम्भ होने के वीस वर्प पूर्व ये प्रवचन किये गये थे। फिर भी उनका अध्ययन करने से भूदान-यज्ञ की भावधारा सहज ही हृदयगम होती है और उससे प्रेरणा मिलती है।

वाल्यकाल मे, जव विनोवा गागोदा में थे, माता रुक्मिणीदेवी को गीता पढने की तीव्र इच्छा हुई। गीता का मराठी पद्य या गद्य मे जो भी अनुवाद उपलव्ध था, वह इतना कठिन था कि वे समझ ही नही पाती थी। तव उन्होने

सहज सरल भाव से विनोबा से गीता का पद्यानुवाद कर देने को कहा। पुत्र पर माँ का इतना अधिक विश्वास था। माँ के इस अगाध विश्वास ने ही विनोबा को असीम शक्ति प्रदान की। जो हो, माँ के जीवन-काल मे विनोबा उनकी यह इच्छा पूरी न कर सके। सन् १९३२ मे उन्होंने गीता के श्लोकों के अनुरूप छद मे एक अपूर्व 'समश्लोकी' मराठी अनुवाद किया। उन्होंने उसे 'गीताई' नाम दिया। मराठी भाषा मे 'आई' शब्द का अर्थ 'माँ' है अर्थात् 'गीताई' का अर्थ 'गीता-माँ' हुआ। गीता विनोबा के जीवन का एकमात्र पथप्रदर्शक रही। उन्होंने गीता की शिक्षा के अनुसार अपने जीवन को बनाया है। इसीलिए गीता उनके लिए मातृ-स्वरूप है। विनोबा ने अपनी 'विचार-पोथी' मे लिखा है

"जब मैं गीता का अर्थ समझने लगा, तब माँ नहीं रही। मुझे ऐसा लगा कि मा मुझे गीता-माँ की गोद मे सौंपकर चली गयी है। गीता-माँ, आज भी मै तेरे ही दूध से पल रहा हूँ और भविष्य में भी तू ही मेरा आधार होकर रहेगी।" 'गीताई' को महाराष्ट्र मे इतनी लोकप्रियता मिली है कि उसकी लाखो प्रतियाँ बिक गयी है।

धुलिया जेल मे रहते समय ही विनोबाजी ने ग्राम-सगठन का काम करने का सकल्प लिया। जेल मे छूटने पर वे ग्राम-ग्राम मे घूम-घूमकर ग्रामवासियों को सूत-कताई, सफाई आदि की शिक्षा देते रहे। वर्धा की मगनवाडी मे पहले सत्याग्रह-आश्रम स्थापित हुआ था। तदुपरान्त वह बजाजवाडी मे सेठ जमनालाल बजाज के 'धाम-बँगला' नामक बँगले मे ले जाया गया। बँगले मे आश्रम के उपयुक्त सारी व्यवस्था कर सकना सम्भव नहीं था। अतएव सन् १९३३ के प्रथमार्द्ध मे वर्धा से दो मील दूर नालवाडी को ग्राम-सगठन के काम के उपयुक्त समझकर वहाँ नया आश्रम बनाकर "ग्राम-सेवा-मडल" स्थापित किया गया और ग्राम-सेवा का काम व्यवस्थित रूप से शुरु हुआ। दो लाख की आबादीवाले वर्धा अचल को छह भागो मे विभक्त कर हर भाग की जिम्मेदारी एक-एक आश्रमवासी को सौंपी गयी। ये कार्यकर्ता दो-दो सप्ताह के अन्तर पर ग्रामो का भ्रमण कर आश्रम मे लौटते थे, अपने काम का विवरण देते थे और परस्पर विचार-विमर्श करते थे। वहाँ एक दिन ठहरकर वे फिर ग्रामो को लौट जाते थे। सूत-कताई के

सम्बन्ध मे विनोवा ने स्वय ही कई प्रकार के परीक्षण किये है। सूत कताई मे वे सिद्धहस्त है। उन्होने तकली कातने की नवीन पद्धति का आविष्कार किया है। सूत-कताई को अत्यधिक प्रचलित करने के लिए उन्होने तुनाई की नयी पद्धति निकालकर उसका परीक्षण किया और वह पद्धति सम्पूर्ण भारत मे प्रचारित हो गयी। वे अपने ही हाथ से रूई का वीज निकालकर उसे धुनते। कपडा वुनने का भी काम वे स्वय करते। प्रतिदिन आठ घटे वे यह सव काम करते। सूत कातने के आर्थिक आधार की प्रतिष्ठापना के लिए उन्होने ६ मास तक सूत कातकर उसकी आय से ही अपनी जीविका चलायी। इन सव कामो मे उन्होने इतनी दक्षता प्राप्त की है, जितनी भारत मे और कोई नही कर सका है। सूत-कताई को मौलिक हस्तशिल्प मानकर उन्होने इस विषय मे एक मौलिक पुस्तक भी लिखी है।

भावी जीवन मे सर्वोदय-ऋषि होनेवाला यह महापुरुष शुरू से ही कैसी धातु मे ढला था, इसका पता उसकी तरुणाई की एक घटना से लगता है। यह १९२८ की वात है। उस समय वे वर्धा-आश्रम मे थे। आम का मौसम था। एक दिन वे वाजार से छह आने मे एक टोकरी छोटे देशी आम खरीद लाये। दो दिन वाद जव वे पुन वाजार गये, तो आम वेचनेवाली उसी वृद्धा को उस दिन भी आम वेचते देखा। उस दिन वृद्धा ने दो आने मे ही एक टोकरी आम देने चाहे। आज मूल्य इतना कम क्यो है, यह विनोवा ने जानना चाहा। वृद्धा ने कहा "पिछले दिन आँधी मे काफी आम गिरे थे, परन्तु खरीदार पर्याप्त न होने के कारण दाम इतना कम रखना पडा है।" विनोवा ने वृद्धा से पूछा "एक टोकरी आम के लिए उसी दिन की भाँति इस वार भी परिश्रम करना पडा था या नही?" वृद्धा ने कहा · "हाँ।" तव उन्होने कहा "तव मै कम दाम मे क्यो लूँ?" कहकर उन्होने एक ेकरी आम लेकर छह आने पैसे दे दिये।

सन् १९३६ मे महात्मा गाधी ने वर्धा के निकट सेवाग्राम-आश्रम की स्थापना की। उसी समय ग्रामोद्योग-सघ की स्थापना हुई और खादी के अलावा दूसरे ग्रामोद्योगो के लिए प्रयत्न होने लगे। नालवाडी-आश्रम में विभिन्न शिल्पो का काम शुरू हुआ। सावरमती-आश्रम की महिला कार्य-कर्त्रियो के वर्धा चले आने पर उन लोगो के लिए वहाँ एक महिलाश्रम की

भी स्थापना हुई। आश्रम का भार महात्मा गाधी ने विनोबा को सौंप दिया। विनोबा के सचालन-काल मे आश्रम ने आशातीत उन्नति की। सन् १९३६ से १९४१ तक प्रत्येक वर्ष वर्धा जिले के कार्यकर्ताओ का सम्मेलन बुलाया जाता था। सम्मेलन मे कई दिनो तक विभिन्न सघटन-मूलक कार्यों के विषय मे विचार-विमर्श किया जाता था। विनोबाजी ने इसे 'खादी-यात्रा' नाम दे रखा था। अन्य धर्मों के प्रति समश्रद्धा का भाव रखने के लिए उन्होंने अरबी भाषा सीखी और इसी भाषा में लिखित 'कुरान-शरीफ' का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन किया। कुरान के सम्बन्ध मे उनका ज्ञान अगाध है। महात्मा गाधी द्वारा चलायी गयी बुनियादी शिक्षा या नयी तालीम की व्यवस्था और सघटन मे भी उन्होंने बडी सहायता पहुंचायी। कुष्ठ-रोगियो की सेवा उनका बडा प्रिय काम है। उन्होंने अपने एक कार्यकर्ता को इसी कार्य के लिए तैयार कर उसे तीन कुष्ठ-सेवाश्रमो का काम सौंपा है।

नालवाडी-आश्रम मे अत्यधिक परिश्रम करने के कारण सन् १९३८ मे विनोबाजी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। इससे महात्मा गाधी ने उद्विग्न होकर उन्हें किसी स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान मे जाकर स्वास्थ्य-लाभ करने का परामर्श दिया। किन्तु विनोबाजी ने बाहर जाना पसन्द नही किया। नाल-वाडी से ४ मील दूर पवनार नदी के किनारे जमनालालजी का एक बँगला था। विनोबा ने वही आकर आश्रम स्थापित कर रहना शुरू कर दिया। वहाँ पर धाम नदी और पवनार नदी का सगम है और चूंकि बँगला धाम नदी के उस पार था, उन्होंने आश्रम का नाम रखा "परमधाम"।

गत महायुद्ध के समय सन् १९४० के वर्षांत मे महात्मा गाधी ने इस उद्देश्य से व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया कि कोई भी व्यक्ति धन या जन से युद्ध मे सहायता न पहुँचाये। उस सत्याग्रह मे महात्मा गाधी ने विनोबाजी को प्रथम सत्याग्रही मनोनीत किया। सारे भारत ने इस बात को आश्चर्यपूर्वक सुना और तब से उनका नाम और सुयश सर्वत्र प्रचारित होने लगा। व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए उन्हे पहले तीन मास का कारावास-दड मिला, किन्तु जेल से छूटने पर उन्होंने पुन सत्याग्रह किया और उन्हे पुन कारावास-दड मिला। इस प्रकार इस आन्दोलन के डेढ वर्षों के अन्दर वे तीन बार गिरफ्तार हुए और तीन बार जेल गये।

सन् १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन के समय अन्य नेताओ की भाँति विनोवा भी 'परमधाम'-आश्रम से गिरफ्तार कर अज्ञात स्थान मे ले जाकर रखे गये और आश्रम जब्त कर लिया गया। एक वर्ष तक वे मद्रास के वेलोर जेल मे रखे गये थे। तदुपरान्त वे मध्यप्रदेश के सिवनी जेल मे रखे गये। वेलोर जेल मे रहते समय उन्होने तेलुगु, कन्नड, तमिल, मलयालम आदि भाषाएँ सीखी। विभिन्न भाषाओ के तुलनात्मक अध्ययन की वात उनके मन मे वचपन से ही थी। अतएव जो भी भाषा वे सरलतापूर्वक सीख सकते थे, सीख लेते थे। उन्होने भारत की प्राय सभी प्रादेशिक भाषाएँ सीख ली है। इन प्रादेशिक भाषाओ मे से वँगला पर उनका अच्छा अधिकार है।

नोआखाली की वीभत्स साम्प्रदायिक स्थिति को शान्त करने के लिए जव महात्मा गाधी वहाँ पद-यात्रा करने गये थे, तव विनोवाजी पवनार नदी के तीर पर स्थित 'परमधाम' आश्रम मे ग्राम-सेवा की साधना मे शान्तिपूर्वक लीन थे। कितने ही व्यक्तियो ने उनसे नोआखाली जाने के लिए अनुरोध किया, किन्तु महात्मा गाधी के आदेश के कारण वे आश्रम से वाहर एक डग भी नही गये। उनका शृखला-वोध इतना अधिक दृढ था।

सन् १९४८ की ३० जनवरी को महात्मा गाधी इस ससार से विदा हो गये। इसके डेढ महीने वाद सेवाग्राम मे सम्पूर्ण भारत के गाधीवादी आदर्श मे विश्वास रखनेवाले कार्यकर्ताओ का एक सम्मेलन हुआ। गाधीजी के 'सर्वोदय' के स्वप्न को पूरा करने के लिए 'सर्वोदय-समाज' और 'सर्व-सेवा-सघ' की स्थापना हुई। गाधीजी के कार्यों का भारी वोझ विनोवाजी पर आ पडा। वहुत ही नम्रतापूर्वक उन्होने सव भार स्वीकार कर लिया और आश्रम के एकातवास को छोडकर वाहरी दुनिया मे आ गये।

महात्मा गाधी द्वारा इच्छित शान्ति-स्थापना का काम अव भी शेष था। शरणार्थियो की समस्या एक वडी समस्या के रूप मे आकर खडी हो गयी। उन्होने दिल्ली आकर शरणार्थियो की सेवा मे अपने को लगा दिया। शिविर-शिविर मे जाकर उन्होने उन्हे आत्मनिर्भरता की शिक्षा देना आरम्भ किया। शिविर-शिविर मे चरखा, चक्की आदि की स्थापना हुई। मेव लोगो की समस्या सवसे जटिल थी। मेव कहलाते है, दिल्ली, आगरा आदि क्षेत्रो के

मुसलमान किसान। पाकिस्तान की स्थापना होने पर वे उत्साहित हो पाकिस्तान चले गये थे, किन्तु वहाँ सुविधा न पाकर वे पुन लौट आने को विवश हुए थे। इस बीच उनके घर-द्वार, जमीन-जायदाद आदि पर हिन्दू शरणार्थियो ने अधिकार जमा लिया था। विनोवाजी ने यह कठिन काम अपने हाथ मे लिया और बहुत परिश्रम तथा प्रयत्नो के बाद वे मेव लोगो की कुछ जमीन लौटाने और कुछ बदलने की व्यवस्था करने मे सफल हुए। साम्प्रदायिक शान्ति-स्थापना के लिए उन्होने बीकानेर, अजमेर, हैदराबाद आदि स्थानो का भ्रमण किया और उनके नैतिक प्रभाव से उन स्थानो मे शान्ति का वातावरण बना।

इसके बाद वे पुन 'परमधाम'-आश्रम मे आकर एकान्त साधना में लीन हो गये। उत्पादन के लिए श्रम और स्वावलम्बन सर्वोदय का मूलतत्व है। स्वय अपने जीवन मे इस आदर्श की स्थापना न कर केवल जन-साधारण को इसकी शिक्षा देने के लिए आगे बढना एक विडम्बना-मात्र है। यह बात सोचकर विनोवाजी और उनके आश्रम के साथी 'परमधाम' में 'काचन-मुक्ति-योग' के व्रती बने। किन्तु, 'काचन-मुक्ति-योग' है क्या ?

कांचन-मुक्ति-योग

अर्थ और श्रम—यही दोनो शक्तियाँ ससार मे विशेष रूप से क्रियाशील है। उत्पादक श्रम को छोडकर लोग अर्थ पर अधिकाधिक निर्भर है, इसीलिए ससार मे अधिक अनर्थ हो रहा है। पहले के समाज मे ऐसा एक समय और अवस्था थी, जब सब लोग निर्विवाद रूप से स्वय उत्पादन करते थे और अपनी जरूरत की चीजे अपने श्रम से तैयार कर लेते थे। उस समय कोई भी सर्वथा निर्धन नही होता था, और न ही कोई बहुत अधिक धनवान् होता था। सब लोग समान सम्पत्तिवाले भले न हो, पर अधिक वैषम्य नही था, हो भी नही सकता था। किन्तु बहुत लोगो के उत्पादक श्रम से हट जाने के कारण ही धन का इतना वैषम्य पैदा हो गया है। सकटग्रस्त होने के कारण असहायावस्था का लाभ उठाकर मनुष्य अपने लाभ के लिए दूसरे व्यक्ति को नौकर रखने लगा और उसके श्रम पर आराम मे जीवन बिताने लगा। इसी प्रकार उसके हाथ मे भूमि और उत्पादन के अन्यान्य साधन,

जैसे, उत्पादन के यन्त्रादि जमा होने लगे। इस प्रकार विपमता की क्रमश वृद्धि होने लगी और अधिक व्यापक तथा गम्भीर रूप उसने धारण कर लिया। धन से दूसरो का श्रम खरीदने मे मनुष्य सुविधा देखने लगा। धन के द्वारा दूसरे के श्रम से अर्जित सामान की खरीद भी सुविधाजनक प्रतीत हुई। इस प्रकार अर्थ धन-वैपम्य की सृप्टि और वृद्धि का प्रधान अस्त्र वन गया। इसलिए लोग श्रम से छुटकारा पाने के लिए अर्थ-सचय मे जुट गये। आज ससार मे कुछ लोगो के हाथ में, गैर-उत्पादको के हाथ मे, भूमि और उत्पादन के जो दूसरे साधन केन्द्रीभूत हो गये हैं, उसका आधारभूत कारण यही है। इसी-लिए वर्तमान युग मे श्रम तथा श्रमिक की प्रतिप्ठा नप्ट हो गयी हे और अर्थ को गलत ढग से अत्यधिक महत्त्व मिल गया है। उत्पादक श्रम को पुन उसका अति सम्मानपूर्ण स्थान न मिलने से धनी और गरीव की विषमता दूर नही होगी और समान भाव से सव लोगो का कल्याण भी सम्भव नहीं। विनोवाजी कहते है "वर्तमान विकारग्रस्त समाज-व्यवस्था मे प्रत्येक वस्तु का मूल्य पैसे से आँका जाता है ओर इसलिए वस्तु का वास्तविक मूल्य दिखाई नही पडता। कहा जाता है कि यहाँ की जमीन का मूल्य अत्यधिक हो गया है, किन्तु जमीन की उदारता तो पूर्ववत् ही वनी हुई है। परसो वक्सर के गजेटियर मे पढा कि डेढ सौ वर्प पूर्व वहाँ एक सेर गेहूँ एक पैसे मे विकता था, आज वही एक सेर गेहूँ दस आने मे मिलता है। किन्तु, पहले एक सेर गेहूँ से जितने लोगो का पेट भरता था, आज भी उतने ही लोगो का पेट भरता है और उतनी ही पुष्टि मिलती है। आज पैसे के मायाजाल मे पडकर मरुभूमि को हमने जलाशय मान लिया है।" वे और भी कहते हैं "जनता का हृदय शुद्ध है। जो कुछ गडवडी नजर आती है, वह सामाजिक अर्थ-व्यवस्था की वुराइयो के कारण। उत्पादन और श्रम के साथ पैसे का कोई निर्दिप्ट सम्पर्क नही रह गया है। पैसा सर्वदा अपना रूप वदलता रहता है। कभी वह एक रुपया वन जाता है, कभी दो रुपये और कभी चार रुपये। पैसा वदमाश और दुश्चरित्र है। उसीको हमने अपना कारवारी वना लिया है। वदमाश के पास ही हमने अपनी चाभी रख दी है।" इसलिए विनोवाजी ने कुछ दिन उपवास रखकर भगवान् के नाम से सकल्प लिया कि वे अव पैसा ग्रहण नही करेगे। अर्थ-वर्जन का सकल्प लेकर विनोवाजी और उनके साथी

परमधाम-आश्रम मे शारीरिक श्रम के द्वारा अपनी जरूरत की चीजो का उत्पादन करते थे। वे आश्रम मे आर्थिक सहायता स्वीकार नही करते थे। यदि कोई आश्रम की सहायता करना चाहता, तो केवल शारीरिक श्रम से सहायता कर सकता था। सर्वोदय के आदर्श की स्थापना के लिए इस आदर्श का अनुसरण आवश्यक है। उन्होने इसीको 'काचन-मुक्ति-योग' नाम दिया है। सर्वोदय-स्थापना के लिए 'काचन-मुक्ति-योग' की साधना अपरिहार्य है।

सर्वोदय-दर्शन और सर्वोदय-समाज की स्थापना

अहिंसा के पथ पर देश का स्वाधीनता-आदोलन चल रहा था। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद शोषणमुक्त, श्रेणीहीन अहिंसक-समाज की स्थापना की कल्पना भी महात्मा गाधी ने उसी समय कर ली थी और इसके लिए उन्होने १८ सूत्री एक कार्यक्रम तय किया था। स्वाधीनता-आदोलन के साथ-साथ यह काम भी देश के विभिन्न भागो मे न्यूनाधिक मात्रा मे चल रहा था। उक्त रचनात्मक कार्य के १८ सूत्र ये थे (१) हिन्दू-मुसलिम या साम्प्रदायिक एकता की स्थापना, (२) अस्पृश्यता-निवारण, (३) मादक-द्रव्य-निषेध, (४) खादी, (५) अन्यान्य ग्रामोद्योग, (६) ग्रामो की स्वास्थ्य-व्यवस्था, (७) नयी बुनियादी तालीम, (८) प्रौढ-शिक्षा, (९) महिलाओ का उद्धार, (१०) स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी शिक्षा, (११) राष्ट्र-भाषा-प्रचार, (१२) मातृभाषा के प्रति श्रद्धा-भाव, (१३) आर्थिक साम्य-प्रतिष्ठा के लिए चेष्टा, (१४) काग्रेस-सघटन (स्वाधीनता-युद्ध के लिए राष्ट्रीय राजनीतिक सस्था, (१५) किसान-सगठन, (१६) मजदूर-सगठन, (१७) छात्र-सगठन और (१८) कुष्ठरोगी-सेवा और कुष्ठरोग-प्रतिकार। अवस्था और प्रयोजन के अनुसार इस तालिका मे वृद्धि की जा सकती है।

रस्किन के अग्रेजी ग्रथ 'अनटु दिस लास्ट' का जो अनुवाद महात्मा गाधी ने किया था, उसे उन्होने 'सर्वोदय' नाम दिया था। उस अनुवाद की भूमिका मे उन्होने लिखा है "आधुनिक सस्कृति और उस पर आवृत समाज-व्यवस्था का सिद्धान्त यही है कि यथासम्भव अधिक सख्या मे लोगो के लिए अधिकाधिक परिमाण मे सुख-सुविधाओ की व्यवस्था की जाय। इस प्रधान सिद्धान्त से सहज ही यह उप-सिद्धान्त निकलता है कि यथासम्भव अधिक लोगो के लिए

अधिकाधिक सुख की व्यवस्था करने पर जो थोडे लोग वच रहेगे, उन्हे यदि दु ख-कष्ट भी हो, तो कोई क्षति नही। दस मे से नौ आदमियो के सुख की व्यवस्था करने पर यदि एक व्यक्ति वच जाय, तो उसके वारे में चिन्ता करने की जरूरत नही। सिर्फ यही नही, वल्कि उसका अनिष्ट या नाश करने की भी जरूरत हो, तो वैसा कर देना चाहिए। ऐसे सिद्धान्त के आवार पर गठित समाज-व्यवस्था मे विरोव, झगडा और अत मे ध्वस अपरिहार्य हो, तो इसमे कोई आश्चर्य नही। इसका कारण यह है कि इस समाज-व्यवस्था मे जो वलवान् होता है, वह यही सोचता है कि दुर्वलो का नाश हो और उनके नाश के लिए वह प्रयत्नशील भी रहता है। किन्तु दुर्वल यह नही चाहता कि वलवान् की स्वार्थसिद्धि के लिए उसका नाश हो। दुर्वल होने से क्या? इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नही है, जो यह चाहता है कि उसकी मृत्यु हो, अथवा वह न रहे। हर आदमी यही चाहता है कि वह जीवित रहे। इसका कारण यह है कि इस 'रहने' मे या 'अस्तित्व' मे मनुष्य एक प्रकार के आनन्द या सुख का अनुभव करता है। अतएव सघर्ष और सर्वनाश के प्रतिकार के लिए गठित समाज मे हर कोई शाति और सतोष प्राप्त करेगा। ऐसे समाज की रचना के लिए यह स्पष्ट है कि 'यथासम्भव अधिक लोगो के लिए अधिकतम सुख-सुविधा' वाली नीति को छोडकर 'हर किसीके हर प्रकार के कल्याण' वाले सिद्धान्त के आवार पर सामाजिक जीवन को तैयार करना पडेगा। 'सवकी हित-सिद्धि' जीवन का तत्त्वज्ञान होना चाहिए।" यही तत्त्वज्ञान अहिंसक समाज-रचना के मूल मे है। इसीलिए महात्मा गाधी की कल्पना की अहिंसक समाज-रचना का नाम पडा है 'सर्वोदय'। भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियो ने समाज-व्यवस्था के इसी आदर्श का प्रचार किया है और इस तथ्य को एक श्लोक मे प्रकट किया है : "सर्वे भवन्तु सुखिन" (सव लोग सुखी हो)।

रस्किन के उपर्युक्त 'अनटु दिस लास्ट' ग्रन्थ का आवार है वाइविल मे वर्णित (St. Mathews ch 20) "Unto this Last" नामक नीतिमूलक कहानी (Parable)। यह कहानी इस प्रकार है एक व्यक्ति ने किसी मजदूर को अपने अगूर के वगीचे मे एक पेनी मजदूरी तय कर काम करने के लिए भेज दिया। उस समय वहाँ एक मजदूर की दैनिक मजदूरी थी एक पेनी। दोपहर के समय इस व्यक्ति ने मजदूरो के अड्डे पर जाकर देखा

कि कुछ लोग वहाँ बेकार हैं। उसने उन लोगों को भी अपने बगीचे में काम करने के लिए भेजा और आश्वासन दिया कि उन्हें पूरी मजदूरी मिलेगी। सन्ध्या समय वह व्यक्ति फिर अड्डे पर गया और उसने देखा कि अब भी कुछ लोग बेकार बैठे हैं। उसने उन बेकार मजदूरों से पूछा "तुम लोग यहाँ बेकार क्यों बैठे हो?" मजदूरों ने जवाब दिया "हमें कहीं काम नहीं मिलता।" उसने कहा "तुम लोग भी मेरे अंगूर के बगीचे में काम करने चलो। पूरी मजदूरी मिलेगी।" जब रात हुई, तब बगीचे के मालिक ने अपने सहकारी से कहा : "सब मजदूरों को बुलाकर पूरी-पूरी मजदूरी दे दो और सबसे अंत में जो मजदूर आये हैं, उन्हींसे पहले देना शुरू करो।" सबसे अंत में जो लोग आये थे, उन्हें जब एक-एक पेनी मिली, तब जो लोग पहले आये थे, उन्होंने सोचा कि उन्हें अधिक मजदूरी मिलेगी। किन्तु जब उन्हें भी एक-एक पेनी ही मिली, तो उन लोगों ने शिकायत करना शुरू किया। अंत में मालिक से उन लोगों ने कहा "जो लोग सबसे अंत में आये हैं, उन लोगों ने केवल एक घंटा परिश्रम किया है और हम लोगों ने सारा दिन धूप में तपकर मेहनत की है। फिर भी हमें उन लोगों के ही बराबर मजदूरी मिली।"

खेत के मालिक ने उत्तर दिया "मैंने तुम लोगों के प्रति कोई अन्याय नहीं किया है। तुम लोगों को एक पेनी देने का ही वादा था। तुम लोगों ने वादे के अनुसार एक-एक पेनी पायी है। अब तुम लोग घर जा सकते हो। जो तुम लोगों को दिया है, वही उन लोगों को भी दूँगा, जो सबसे अन्त में आये हैं।" ("Friend, I do thee no wrong Dist not thou agree with me for a penny? Take that thine is And go thy way I will give unto this last even as unto thee") इसमें मूलभूत नीति यह है कि 'प्रत्येक व्यक्ति से उसकी सामर्थ्यभर ग्रहण करो और उसकी जरूरत के अनुसार दो' (From each according to his capacity and to each according to his need) । यही है आर्थिक और सामाजिक समानता की नीति। अतएव इस नीति के आधार पर रचित रस्किन के अमूल्य "अनटु दिस लास्ट" ग्रन्थ को पढकर महात्मा गाधी ने सर्वप्रथम सर्वोदय की प्रेरणा पायी और इसने उनकी जीवन-पद्धति में विप्लवी परिवर्तन ला दिये।

महात्मा गाधी के स्वर्गवास के बाद सन् १९४८ के मार्च महीने मे विनोबाजी की प्रेरणा से सम्पूर्ण भारत के रचनात्मक कार्यकर्ताओ का सेवाग्राम मे सम्मेलन हुआ और सर्वोदय का कार्य सफलतापूर्वक आगे बढाने के लिए 'सर्वोदय-समाज' की स्थापना हुई। प्रत्येक वर्ष एक-एक राज्य मे सर्वोदय-समाज का वार्षिक सम्मेलन हुआ। अप्रैल १९५१ के मध्य मे हैदराबाद के निकटवर्ती शिवरामपल्ली गाँव मे तृतीय वार्षिक 'सर्वोदय-सम्मेलन' सम्पन्न आ।

विनोबाजी की तेलंगाना-यात्रा

उस समय हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत तेलगाना नामक स्थान मे भूमि-समस्या को लेकर हिंसात्मक आदोलन चल रहा था। कम्युनिस्टो के रा अनेक भू-स्वामी मारे गये थे। भू-स्वामियो से छीनकर पर्याप्त भूमि कृषको के बीच बाँट दी गयी थी। दूसरी ओर, उन लोगो को अधिकागत क्षतिग्रस्त करके फिर जमीन छीनी जा रही थी। सरकार सशस्त्र उपायो से इस सघर्ष का दमन करने की चेष्टा कर रही थी। दोनो ही पक्ष मार-काट के शिकार हो रहे थे। वहाँ भय, आतक, हत्या और अग्निकाण्ड का जोर था। दोनो ही पक्षो के द्वारा सर्वसाधारण लोग पीडा, लाछना और अत्याचार के शिकार हो रहे थे। दिन मे सशस्त्र पुलिस का अत्याचार—कम्युनिस्ट या कम्युनिस्टो के सहायक होने के सन्देह मे पुलिस के हाथो लाछना और रात मे जमीदार—मालगुजार—समर्थक अथवा पुलिस के सहायक होने के सन्देह मे कम्युनिस्टो का अत्याचार। दोनो पक्षो के अत्याचार से लोग पागल जैसे हो गये थे।

विनोबाजी अस्वस्थ थे, इसलिए शिवरामपल्ली सर्वोदय-सम्मेलन मे जाने की उनकी उतनी इच्छा नही थी। उसके पहले उडीसा के अगुल नामक स्थान मे सर्वोदय-सम्मेलन हुआ था। वहाँ भी वे नही गये थे। श्री शकरराव देव ने उनसे कहा "यदि आप शिवरामपल्ली-सम्मेलन में नही जायँगे, तो सब लोगो के वहाँ जाकर समय नष्ट करने का कोई अर्थ नही होता।" अस्वस्थ रहने पर भी विनोबाजी शिवरामपल्ली जाने को राजी हो गये और पैदल ही जाने का उन्होंने निश्चय किया। ८ मार्च को प्रस्थान कर ३०० मील पैदल चलकर वे वहाँ पहुँचे। शिवरामपल्ली सर्वोदय-सम्मेलन मे भाग लेनेवाले सर्वोदय-कार्यकर्ताओ के मन पर तेलगाना की घटनाओ का अत्यधिक प्रभाव पडा था। अहिंसा में विश्वास

करनेवाले कार्यकर्ताओ के लिए तेलगाना एक चुनौती के रूप मे था। शाति और प्रेम के मार्ग मे देश की भूमि-समस्या तथा आर्थिक समस्या का समाधान न कर पाकर केवल मुख से अहिसा की बाते करना कोई अर्थ नही रखता।

महात्मा गाधी की मृत्यु के बाद विनोबाजी आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र मे अहिसा के प्रयोगार्थ अन्वेषण कर रहे थे। एक शाति-सैनिक के रूप मे उन्होने तेलगाना का भ्रमण करने का निश्चय किया। उन्होने कहा "मै सर्वोदय-समाज का सेवक हूँ। मेरे लिए 'सर्वोदय' शब्द भगवान् के नाम के समान है। सर्वोदय का अर्थ सब लोग समझते है। अतएव कम्युनिस्ट भी इसके अपवाद नही है।" इसीलिए पहले ही उन्होने हैदराबाद जेल मे जाकर कम्युनिस्ट बदियो से मुलाकात की और दो-तीन घटे तक उनसे बातचीत की। उन्होने कहा "कम्युनिस्ट भाइयो की विचारधारा क्या है, यही जानने और समझने के लिए मैने जेल मे उन लोगो से भेट की।" इसके बाद १६ अप्रैल को उन्होने अपने कुछ साथियो सहित तेलगाना-भ्रमण के लिए पैदल ही प्रस्थान किया। तेलगाना-भ्रमण के निश्चय की क्या पृष्ठभूमि थी और उन्होने पैदल-भ्रमण क्यो किया, इस सम्बन्ध में उन्होने वा गल (हैदराबाद) नामक स्थान मे २५ मई, १९५१ को अपने प्रार्थना-प्रवचन मे प्रकाश डालते हुए कहा "गाधीजी के स्वर्गवास के बाद सोचता था कि अब मुझे क्या करना चाहिए ? मै विस्थापितो की सेवा मे लग गया। किन्तु, यहाँ के (तेलगाना के) कम्युनिस्टो के बारे मे मै बराबर चिन्तित रहा। यहाँ की हत्या आदि की सभी घटनाओ के समाचार मुझे मिलते थे। फिर भी मेरे मन मे निरुत्साह का कोई भाव नही आया, क्योकि मानव-जीवन की विकास-धारा के सम्बन्ध मे मुझे कुछ ज्ञान है। इसीलिए मै कहता हूँ कि जब-जब मानव-जीवन नवीन सस्कृति ग्रहण करता है, तब-तब कुछ सघर्ष होता है, रक्त की धारा भी बहती है। इसलिए निरुत्साहित न होकर शात मन से चिन्तन करना होगा और शातिपूर्ण मार्ग की खोज करनी होगी।

"यहाँ शान्ति-स्थापना के लिए सरकार ने पुलिस भेजी है। किन्तु, पुलिस विचार नही करती। पुलिस के पास शस्त्र होता है और वही उसका एकमात्र साधन होता है। अतएव पुलिस को जगल मे बाघ का उपद्रव शात करने के लिए भेजा जाना चाहिए। पुलिस को बाघ का शिकार करके बाघ से लोगो की

रक्षा करनी चाहिए। किन्तु, कम्युनिस्टो का उपद्रव वाघ का उपद्रव नही है। वह मनुष्यो का उपद्रव है। उन लोगो की कार्यपद्धति कितनी भी गलत क्यो न हो, उन लोगो के जीवन मे कोई-न-कोई विचार-धारा है। इस मामले को केवल पुलिस भेजकर हल नही किया जा सकता। सरकार इस वात से अनभिज्ञ नही है। यह जानते हुए भी अपना कर्तव्य समझकर सरकार ने पुलिस भेजी है। इसके लिए मैं सरकार को दोप नही देता।

"मै वर्तमान समस्या के वारे मे इसी प्रकार सोचता था। इससे मेरे मन मे यह वात आयी कि मै इस क्षेत्र मे भ्रमण करूँ। किन्तु, यदि भ्रमण करना है, तो कैसे भ्रमण करूँ? मोटर आदि सवारियाँ विचारशोधक नही, वल्कि समय-शोधक है—वे केवल दूरी कम कर सकती है। जहाँ चिन्ता-धारा का शोधन करना हो, वहाँ शातिपूर्ण उपायो का अवलम्वन आवश्यक है। प्राचीन काल मे तो ऊँट-घोडे आदि थे। लोग उनका व्यवहार करते थे ओर रातभर मे दो सौ मील तक की यात्रा कर लेते थे। शकराचार्य, महावीर, वुद्ध, कवीर, नामदेव आदि ने भारत-भ्रमण किया था और पैदल ही भ्रमण किया था। उन लोगो ने तीव्रगामी सवारियो की सहायता नही ली, क्योकि विचार-धारा मे सशोधन करना उनका उद्देश्य था और विचार-धारा मे परिवर्तन लाने के लिए उत्तम उपाय है—पैदल यात्रा करना। आजकल पैदल घूमना पसन्द नही किया जाता, किन्तु यदि शातिपूर्वक विचार किया जाय, तो यह वात समझ मे आती है कि पदल भ्रमण करने के सिवा और कोई चारा ही नही है।"

भूदान-यज्ञ का जन्म

दो दिन वाद १८ अप्रैल को विनोवाजी नलगुडा जिले के पोचमपल्ली ग्राम मे पहुँचे। वही से दण्डकारण्य आरम्भ होता है। ग्रामवासियो ने वडे समारोह से आदरपूर्वक उनका स्वागत किया। नलगुडा और वारगल जिले कम्युनिस्ट उपद्रवो के लिए वदनाम थे और पोचमपल्ली ग्राम कम्युनिस्टो का केन्द्र माना जाता था। उस क्षेत्र मे दो वर्षो के अन्दर २० व्यक्तियो की हत्या की गयी थी। उस ग्राम मे १०-१२ कम्युनिस्ट रहते थे। गाँव मे लगभग ३ हजार की आवादी थी और खेती के काम की जमीन ढाई हजार एकड थी। फिर भी तीन हजार लोगो मे से दो हजार भूमिहीन थे। वहाँ पहुँचने के दो घटे वाद

विनोवाजी गाँव की प्रदक्षिणा के लिए निकले। वे हरिजनो की वस्ती देखने गये। हरिजन अत्यन्त गरीव थे। उनके पास जमीन तो नही ही थी, उन्हे पूरा काम और भरपेट भोजन भी नही मिलता था। भूमिवालो की जमीन पर मजदूर काम करते थे और मजदूरी के रूप मे उन लोगो को पैदा हुई फसल का वीसवाँ भाग, कम्वल और एक जोडा जूता मिलता था। विनोवा को देखकर उन लोगो ने समझा कि सम्भवत महात्मा गाधी की तरह कोई महापुरुष आये है। उन लोगो ने सोचा कि उन्हे अपने अभावो की वात वताने मे कोई व्यवस्था हो सकती है और यही सोचकर उन्होंने विनोवाजी से जमीन माँगी। विनोवाजी ने उनसे पूछा कि उन्हें कितनी जमीन चाहिए। उन लोगो ने वताया कि ४० एकड नीची जमीन और ४० एकड ऊची जमीन, कुल ८० एकड जमीन मिलने से उन लोगो का काम चल जायगा। विनोवाजी ने उनसे जानना चाहा कि जमीन मिलने पर वे साथ मिलकर खेती करेगे या अलग-अलग ? अपने वीच कुछ विचार-विमर्श करने के वाद उनके मुखिया ने कहा कि वे लोग मिलकर खेती करेगे। विनोवाजी ने उन लोगो को उसी भाव का एक आवेदनपत्र देने को कहा। उन्होने सोचा था कि वे सरकार से उन्हे जमीन दिला देने की चेष्टा करेगे। इसी वीच गाँव के और लोग वहाँ आ गये। विनोवाजी ने उन लोगो से पूछा कि यदि सरकार से जमीन न मिले या मिलने मे देर हो, तो क्या गाँव के कोई सज्जन गरीवो के लिए कुछ जमीन देगे ? ग्रामीणो मे से एक भाई श्री रामचद्र रेड्डी ने कहा कि वे अपनी और अपने भाइयो की ओर से ५० एकड ऊँची और ५० एकड नीची भूमि, कुल १०० एकड भूमि गरीव भाइयो के लिए देना चाहते है। उस दिन सध्या समय प्रार्थना-सभा मे विनोवाजी ने इस दान की घोषणा की। उन्होने जमीन पायी और उन भूमिहीन हरिजनो को दे दी। उन लोगो के चेहरे पर हर्ष फूट पडा।

किन्तु, विनोवाजी ने सोचा "यह क्या हुआ ! जहाँ मनुष्य ३ कट्ठा जमीन के लिए लडाई-झगडा करता है, वहाँ माँगने से ही १०० एकड जमीन कैसे मिल गयी ! कितनी जमीन चाहिए, यह भी तो उन्होने नही कहा था। जरूरत थी ८० एकड जमीन की और मिली १०० एकड जमीन। तव क्या आज भगवान् ने श्री रामचद्र रेड्डी के माध्यम से भारत की भूमि-समस्या के समाधान के लिए सकेत दिया है ? तव क्या महात्मा गाधी की आत्मा ने श्री रामचन्द्र रेड्डी

में प्रविष्ट होकर भूमि-समस्या के शांतिमय ढंग से समाधान के लिए निर्देश दिया है ?" इस प्रकार याचना के द्वारा भूमि-संग्रह करके भूमि-समस्या के समाधान की बात उनके मन में आयी। इस प्रकार भूदान-यज्ञ की गंगोत्री फूट पड़ी। उन्होंने उसे 'भूदान-यज्ञ' नाम दिया। उन्होंने भूदान-यज्ञ का संदेश लेकर हिंसा-विध्वस्त, रक्तस्नात तेलंगाना के द्वार-द्वार घूमने का संकल्प लिया। किन्तु, क्षणभर के लिए उनके मन में शंका उत्पन्न हुई। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन में कहा था "जिस दिन मुझे पहला दान मिला, उस रात मैं सोचने लगा—क्या इस तरह भूमि माँग-माँगकर मैं सभी भूमिहीनों की समस्या का समाधान कर सकूँगा ? मुझे साहस नहीं मिल रहा था, क्योंकि इतिहास में इस तरह का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं था। किन्तु, भीतर से शक्ति मिली। अंदर से आवाज आयी: 'डरो मत। भूमि माँगते चलो।' तब मेरे मन में यह बात आयी कि जब 'वे' मुझे भूमि माँगने की प्रेरणा दे रहे हैं, तब 'वे' अवश्य ही दूसरों को भूमि-दान करने की भी प्रेरणा देंगे, क्योंकि वे कभी अधूरा काम नहीं कर सकते।" विनोबाजी ने गत ८ अगस्त, १९५५ को आंध्र के श्रीकाकुलम् जिले के पार्वतीपुरम् ग्राम में प्रार्थना-प्रवचन में कहा: "जिस दिन मैंने प्रथम दान (१०० एकड़) पाया, उसी दिन रात में सोचने लगा कि इस घटना का कोई अर्थ है क्या ? मेरे मन में आया कि संसार में मनुष्य केवल अपने विचार से ही काम नहीं कर सकता। संसार में उसके लिए विचार पहले से ही तैयार रहते हैं। आज संसार में वातावरण तैयार हो गया है। मैं तो निमित्त-मात्र हूँ ? मैंने और भी सोचा: यह काम पूरा करने की शक्ति मुझमें है क्या ? तब अन्तर से आवाज आयी मैं शक्तिरहित हूँ। किन्तु, शक्ति-रहित होने पर भी मैं विश्वास-शून्य नहीं हूँ। इसलिए यदि मैं अभिमान-शून्य हो जाऊँ, तो रामावतार के समय जिन्होंने बन्दरों से काम कराया, वे मेरे द्वारा भी काम करा लेंगे। दूसरे दिन मैंने दूसरे गाँव में जाकर कहा 'यदि आपके चार पुत्र हैं, तो मैं आपका पाँचवाँ पुत्र हूँ। मुझे पंचमांश दीजिये।' कोई इस प्रकार भी माँग सकता है, इसके लिए वहाँ के लोग तैयार नहीं थे। हिरोशिमा में अणु बम गिरने का जो फल हुआ था, वैसा ही फल मेरी बात का भी उन पर हुआ। मुझे ७५ एकड़ जमीन मिल गयी और इस प्रकार भूदान-यज्ञ का आरम्भ हुआ।" इसी प्रकार अत्यन्त विनय एवं भक्तिपूर्वक वे भूदान

माँगते-माँगते आगे बढे। जून महीने के मध्य तक, अर्थात् दो महीने तक वे तेल-गाना मे इसी प्रकार द्वार-द्वार घूमे। इन दो महीनो के अन्दर उन्हे दरिद्रनारायणो के लिए १२ हजार एकड भूमि दान मे मिली। फिर वर्षा ऋतु आ गयी। चातुर्मास्य पालनार्थ एव 'काञ्चन-मुक्ति' साधना के लिए वे अपने परमधाम आश्रम मे लौट गये।

अनेक लोगो की आँखे खुली। भारत की आर्थिक स्वतत्रता का द्वार खुल गया है। भारत की भूमि-समस्या के शातिमय समाधान का मार्ग मिल गया है। किन्तु, फिर भी कुछ लोगो के मन में यह सन्देह रहा कि तेलगाना मे जमीन्दारो और मालगुजारो ने इसलिए कुछ-कुछ भूमि दान में दी कि वे कम्युनिस्टो के अत्याचारो से उत्पीडित थे। साधारण अवस्था मे इस प्रकार भूमि का मिलना सम्भव नही है। विनोबाजी ने सोचा : भूमि तो केवल जमीन्दारो और माल-गुजारो ने नही दी। बहुत-सी जमीन तो साधारण किसानो से मिली है। तब यह सन्देह क्यो होता है ? आशका करनेवालो की बातो का यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम-मार्ग के द्वारा काम पूरा करने के लिए यह जरूरी है कि पहले हिंसा का प्रयोग किया जाय। किन्तु, यह तो अहिंसा का मार्ग नही है। उन्होने निश्चय किया कि जहाँ तेलगाना की स्थिति नही है, अर्थात् जहाँ हिंसात्मक आदोलन नही चलते रहे है, वहाँ भूदान-यज्ञ की परीक्षा की जानी चाहिए।

भूदान-यज्ञ का क्रमिक विकास

भगवान् ने यह सुयोग उन्हे प्रदान किया। अहिंसक-समाज की स्थापना-सम्बन्धी अपने विचार राष्ट्रीय आयोजना आयोग के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए श्री जवाहरलाल नेहरू ने उनसे दिल्ली जाने का अनुरोध किया। विनोबाजी जाने को सहमत हुए, किन्तु पैदल ही जाने का निश्चय किया। अपनी जन्म-तिथि के दूसरे दिन १२ सितम्बर, १९५१ को उन्होने मध्यप्रदेश होकर दिल्ली के लिए प्रस्थान किया और वे भूदान-यज्ञ का प्रचार करते-करते और भूमि-दान माँगते हुए चले। दो महीने मे ५५० मील का मार्ग तय करके वे दिल्ली पहुँचे। इन दो महीनो मे उन्होने १८ हजार एकड भूमि प्राप्त की। जिस राह वे गये थे, उधर किसी प्रकार का हिंसात्मक आदोलन कभी नही चला था। उस अञ्चल मे उस समय कोई हिंसात्मक दल भी सक्रिय नही था। तेलगाना मे उन्हे

दो महीने मे १२ हजार एकड जमीन मिली थी, इस शातिपूर्ण क्षेत्र मे उन्हें दो महीने मे १८ हजार एकड मिली। आशका करनेवालो की शका दूर हो गयी।

दिल्ली का काम समाप्त हो जाने पर उत्तरप्रदेश के सर्वोदय-प्रेमी कार्यकर्ताओ ने विनोवाजी से अनुरोध किया कि वे उत्तरप्रदेश के विस्तृत क्षेत्र मे भूदान-यज्ञ की परीक्षा करें। विनोवाजी अपने आश्रम न लौटकर पैदल ही उत्तरप्रदेश के लिए रवाना हुए और उत्तरप्रदेश का भ्रमण करने लगे। इन दिनो वहाँ आम चुनाव की हलचल थी। अधिकाश कार्यकर्ता तीन महीने तक चुनाव के काम मे व्यस्त रहे। फिर भी उन्हें जन-साधारण का सहयोग मिलता रहा और ६ महीने मे उन्हे एक लाख एकड भूमि प्राप्त हुई। अगले साल १९५२ मे अप्रैल के तीसरे सप्ताह में सर्वोदय-सम्मेलन वनारस के निकट सेवापुरी-आश्रम मे किया गया। विनोबा उस समय तक ६ महीने की अवधि मे एक लाख एकड भूमि प्राप्त कर चुके थे। सेवापुरी-सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि भूदान-यज्ञ-आदोलन सारे देश में चलाया जाय और दो वर्षो के अदर सारे देश मे २५ लाख एकड भूमि प्राप्त की जाय। भारत मे ५ लाख गाँव है। प्रत्येक गाँव मे एक भूमिहीन किसान परिवार को ५ एकड जमीन देने के लिए और उसे 'सर्वोदय-परिवार' की सज्ञा देने के लिए भी २५ लाख एकड जमीन अनिवार्यत चाहिए। इसी आधार पर २५ लाख एकड भूमि प्राप्त करने का सकल्प लिया गया। विनोवाजी के निर्देशानुसार सर्व-सेवा-सघ ने प्रत्येक राज्य मे राज्य भूदान-यज्ञ समिति वनायी। सारे भारत मे भूदान-यज्ञ-आदोलन शुरु हुआ। विनोवाजी को तेलगाना में औसतन प्रतिदिन दो सौ एकड, दिल्ली के रास्ते मे प्रतिदिन तीन सौ एकड, सेवापुरी-सम्मेलन तक ६ महीनो मे प्रतिदिन पाँच सौ एकड और सेवापुरी-सम्मेलन के वाद प्रतिदिन एक हजार एकड भूमि मिली। सव श्रेणी के लोगो ने उन्हे भूमि दान दी। हिन्दुओ ने भी भूमि दी, मुसलमानो ने भी और अन्यधर्मावलम्वियो ने भी। स्त्रियो ने भी अत्यधिक श्रद्धा और भक्ति के साथ दान किया है। वडे-वडे जमीन्दारो और मालगुजारो ने भी भूदान दिया है और छोटे-छोटे किसानो ने भी। ऐसे-ऐसे गरीव किसानो ने भूदान-यज्ञ मे अपनी आहुतियाँ दी है कि वे वाते विनोवाजी की मधुर स्मृतियाँ वनकर रह गयी है। इसका उल्लेख करते हुए उन्होने लिखा है : "इस यज्ञ मे कुछ 'शवरियो' ने अपने 'वेर' दान किये है और कुछ सुदामाओ ने अपने चावल।

ये मेरे लिए चिरस्मरणीय भक्तिगाथाएँ बन गयी है।" काग्रेस, समाजवादी दल, कृषक-मजदूर प्रजा पार्टी (वर्तमान प्रजा-समाजवादी दल), भारतीय जन-सघ आदि राजनीतिक दलो ने भूदान-यज्ञ-आदोलन का समर्थन किया है।

बरसात के दिनो मे विनोबा काशी विद्यापीठ मे ठहरे। १२ सितम्बर, १९५२ को उन्होने पुन भ्रमण आरम्भ किया और दो दिन उत्तरप्रदेश का भ्रमण करने के बाद १४ सितम्बर को प्रात काल बिहार में प्रविष्ट हुए। उस समय तक उत्तरप्रदेश मे उन्हे तीन लाख एकड भूमि मिल चुकी थी। बिहार मे भी आशा के अनुरूप ही भूमि मिलने लगी। दो वर्षो के अन्दर अर्थात् सन् १९५४ के मार्च महीने तक सारे भारत में जो २५ लाख एकड भूमि एकत्र करने का सकल्प लिया गया था, उसमे से ४ लाख एकड भूमि बिहार के हिस्से मे थी। निश्चय हुआ था कि बिहार का ६ महीने तक भ्रमण करने के उपरान्त विनोबा सन् १९५३ के ७ मार्च को दिनाजपुर जिले के रायगज नामक स्थान के पास पश्चिम बगाल मे प्रवेश करेंगे और ७० दिन के भ्रमण के बाद बाँकुडा जिला होते हुए बगाल छोड देंगे और १६ मई, १९५३ को बिहार के मानभूम जिले मे प्रवेश करेगे। वे फिर एक महीने बिहार का भ्रमण करेगे और तदुपरान्त उडीसा का भ्रमण आरम्भ करेगे। किन्तु, बिहार मे भ्रमण करते-करते उन्होने अपने सारे कार्यक्रम में परिवर्तन कर दिया। उन्होने निश्चय किया कि बिहार की भूमि-समस्या का समाधान हुए बिना वे बिहार नही छोडेगे। उन्होने बिहार की कृषि-योग्य भूमि का षष्ठाश ३२ लाख एकड भूमि बिहारवासियो से माँगी। विनोबाजी के इस निश्चय के पीछे क्या तथ्य था, यह समझना आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी ने कहा है "भूमि-समस्या का समाधान होने मे चिन्तनधारा मे क्राति आयगी। इसीलिए मैं सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर रहा हूँ और अन्य कुछ लोग भी कर रहे हैं। किन्तु, मैंने अनुभव किया है कि एक राज्य मे व्यापक रूप से उसका प्रयोग करके यह देखना आवश्यक है कि किस प्रकार समस्या का समाधान होता है। इसीलिए मै बिहार मे ३२ लाख एकड भूमि माँग रहा हूँ।" इसके उपरान्त राज्य के किसी एक जिले मे काफी सघटित रूप से काम करने का निश्चय किया गया। भगवान् बुद्ध की विचरण भूमि समझकर गया जिले को इस कार्य के लिए चुना गया। गया को इस कार्य के लिए चुनने का एक कारण यह भी था कि जितने प्रकार की भूमि बिहार में

है, वह सब गया जिले में उपलब्ध है। समतल, ऊँची-नीची, जगली, पर्वतीय, बालू-भरी और पथरीली, सब तरह की भूमि इस जिले में है। यहाँ बहुत कीमती जमीन भी है और बहुत सस्ती भी। इस प्रकार भूमि के मामले में गया जिला बिहार का प्रतिनिधित्व करता है। भारत के विभिन्न स्थानों से आकर कार्यकर्ता यहाँ एकत्र हुए और काम में लगे।

सन् १९५२ के दिसम्बर महीने में विनोबाजी अस्वस्थ हो गये। उस समय वे मानभूम जिले का भ्रमण कर रहे थे। अस्वस्थता के कारण उन्हें मानभूम जिले के चाडील ग्राम में प्राय तीन महीने तक विश्राम करना पडा। इसीलिए इस वर्ष का सर्वोदय-सम्मेलन भी चाडील में ही हुआ। चाडील-सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि सेवापुरी-सम्मेलन में किये गये निश्चय के अनुसार दो वर्षों के अन्दर, अर्थात् सन् १९५४ के मार्च महीने तक, सम्पूर्ण भारत में २५ लाख एकड भूमि का सग्रह तो किया ही जाय, सन् १९५७ ईसवी तक सम्पूर्ण भारत की कृषि-योग्य भूमि का षष्ठांश ५ करोड एकड भूमि भूदान-यज्ञ में सग्रहीत हो। इसी उद्देश्य से आगामी पाँच वर्षों के लिए—कम-से-कम एक वर्ष का समय एकाग्रभाव से भूदान-यज्ञ में देने के लिए कार्यकर्ताओं से अनुरोध किया गया। सन् १९५७ तक ५ करोड एकड भूमि-दान का सग्रह कर भारत की भूमि-समस्या का समाधान कर लेने का सकल्प विशेष अर्थपूर्ण था। सन् १७५७ में पलासी के युद्ध से भारत परतत्रता के बन्धन में बँधा था, सन् १८५७ में 'सिपाही-विद्रोह' के माध्यम से पराधीनता के बन्धन काट फेंकने के लिए क्राति का सूत्रपात हुआ और सन् १९५७ में सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना कर भारत की स्वतत्रता को पूर्ण बनाने का निश्चय किया गया। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है : "मैं समझता हूँ कि आर्थिक क्राति अनिवार्य है। सन् १७५७ में पलासी की लडाई हुई थी, १८५७ में क्राति हुई और १९५७ में आर्थिक और सामाजिक क्राति हो।"

सेवापुरी-सर्वोदय-सम्मेलन में दो वर्षों के अन्दर भूदान-यज्ञ में २५ लाख एकड भूमि एकत्र करने का निश्चय हुआ था। दो वर्ष बाद १९-२० अप्रैल, १९५४ को बोधगया में सर्वोदय-सम्मेलन हुआ। इस समय तक सम्पूर्ण भारत में २,३७,०२२ दाताओं से २८,२५,१०१ एकड भूमि प्राप्त हो चुकी थी। इस प्रकार सेवापुरी-सम्मेलन का सकल्प पूरा हुआ, यद्यपि कई राज्यों में उनके

लिए निश्चित किये गये 'कोटे' पूरे नही हो सके। फिर भी दो वर्षो के अन्दर इतने अधिक दाताओ से इतनी जमीन का प्राप्त होना कल्पनातीत बात है। इसके अतिरिक्त बहुत-से समग्र ग्रामदान मिल गये। इसका अर्थ यह कि गाँव में जिसके पास कम या बेशी जो भी जमीन थी, वह उसने भूदान-यज्ञ मे अर्पित कर दी। इस प्रकार भूदान-यज्ञ का प्रथम अध्याय सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अभी दूसरा अध्याय चल रहा है, जिसके अनुसार सन् १९५७ तक ५ करोड एकड भूमि प्राप्त करनी है। इसका काम भी चल रहा है। बोधगया-सम्मेलन के बाद से सारे देश मे इसी लक्ष्य को सामने रखकर कार्य आरम्भ हो गया है। इसके अतिरिक्त बोधगया-सम्मेलन के बाद भूमि-वितरण के काम पर विशेष जोर दिया गया और अब तक जो भूमि प्राप्त हुई थी, उसे सुव्यवस्थित ढग से और शीघ्र भूमिहीनो मे बाँटकर ग्राम-राज्य की स्थापना का आधारभूत कार्य तत्परता के साथ किया जा रहा है।

बिहार मे २७ महीने की लम्बी अवधि तक पैदल भ्रमण करने के बाद उडीसा जाने के मार्ग मे विनोबाजी पश्चिम बगाल मे आये। बाँकुडा एव मिदनापुर होकर उडीसा जाने मे उन्हे २५ दिन लगे। १ जनवरी, १९५५ को वे बाँकुडा जिले के शालतोडा नामक स्थान मे पहुँचे। उनके भ्रमण-काल मे बाँकुडा जिले के सर्वसाधारण मे एक अभूतपूर्व उत्साह एव जाग्रति देखी गयी। २६ जनवरी को वे उडीसा राज्य मे प्रविष्ट हुए। इससे पूर्व ही वहाँ भूदान-यज्ञ का काम बहुत आगे बढ चुका था। उस समय तक उडीसा मे ४२ हजार दाताओ से १ लाख, २५ हजार एकड भूमि और ८५ ग्राम दान मे प्राप्त हो चुके थे। वहाँ के आन्दोलन की प्रगति, विशेषकर ग्रामदान की गति देखकर उडीसा जाने से पहले ही विनोबाजी ने एक पत्र मे लिखा था "बिहार मे भूमि-प्राप्ति, उडीसा मे भूमि-क्राति और अन्य स्थानो मे स्वच्छन्द विचरण।" उनकी यह भविष्यवाणी सफल सिद्ध हुई है। विनोबाजी के उडीसा जाने के बाद सम्पूर्ण राज्य मे, विशेषकर कोरापुट जिले मे भूदान-यज्ञ-आदोलन ने एक नया मोड लिया। वहाँ ग्रामदान तेजी से होते रहे। भूमिदान की चरम परिणति सर्वस्व ग्रामदान मे है, क्योकि उससे व्यक्तिगत प्रभुत्व समाप्त हो जाता है और ग्राम एक परिवार के रूप मे परिणत होकर 'ग्राम-परिवार' की सृष्टि करता है। जिस दिन (२८ मई, १९५५) उन्होने कोरापुट जिले मे प्रवेश किया, उस दिन तक

दान मे प्राप्त भूमि का परिमाण था १ लाख ८१ हजार एकड और दाताओ की सख्या थी ५९ हजार ३ सौ। इसमे से ९ हजार दाताओ से ५९ हजार एकड जमीन केवल कोरापुट जिले मे ही प्राप्त हुई थी। सर्वस्व ग्रामदानो की सख्या थी ९१। २० अगस्त, १९५५ तक उडीसा मे कुल ४९८ ग्राम दान मे पाये गये थे। इसमें से कोरापुट जिले मे ही ४०० ग्राम दान मे मिले है। आज तक उडीसा मे कुल २ लाख ९ हजार ६८१ एकड जमीन दान मे मिली है।

मार्च, १९५५ के अतिम सप्ताह मे पुरी मे सातवाँ सर्वोदय-सम्मेलन किया गया। उस सम्मेलन मे सन् १९५७ तक भूमि-क्राति को सफल बनाने का निश्चय दुहराया गया। इसके अतिरिक्त सर्व-सेवा-सघ ने सर्वोदय तथा अहिसा मे निष्ठा रखनेवाले सभी लोगो से सविनय निवेदन किया कि सन् १९५७ तक भूमि-क्राति को सफल करने के लिए, अहिसक पद्धति की इस कठिन परीक्षा मे, अपने सभी कामो को छोडकर वे अपनी सम्पूर्ण बुद्धि, शक्ति और कार्यक्षमता का उपयोग इस काम मे कर्ें। अगस्त, १९५५ तक सारे भारत मे ४ लाख ९३ हजार ६५९ दाताओ से ४० लाख १४ हजार ६२९ एकड भूमि दान मे मिली है। इसमे से २ लाख ११ हजार २०४ एकड भूमि का ७२,३५२ परिवारो के बीच वितरण किया जा चुका है।

उडीसा की पैदल-यात्रा समाप्त करने के बाद १ अक्तूबर, १९५५ को विनोबाजी ने आध्र राज्य मे प्रवेश किया और वहाँ पूरे तीन महीने तक पैदल-यात्रा करने के बाद उन्होने जनवरी, १९५६ के पूर्व ही हैदराबाद राज्य मे पैदल-यात्रा आरम्भ की। उडीसा मे पैदल-यात्रा के समय विनोबाजी ने तीन दिन (८ अगस्त से १० अगस्त, १९५५) तक उडीसा के सीमावर्ती आध्र राज्य के इलाको का भ्रमण किया। हैदराबाद से वे पुन ११ मार्च, १९५६ को आध्र राज्य मे पधारे और वहाँ दो महीने तक उन्होने पैदल-यात्रा की। इस प्रकार तीन बार मे उन्होने आध्र राज्य की पाँच महीने से कुछ अधिक समय तक यात्रा की। आध्र राज्य मे विनोबाजी की पद-यात्रा के समय वहाँ के कार्यकर्ता विशाल आध्र आदोलन को लेकर व्यस्त थे और वहाँ सबका सक्रिय सहयोग प्राप्त न हो सका, फिर भी उनके पद-यात्रा-काल मे वहाँ लगभग ६३ हजार एकड भूमिदान, वार्षिक १ लाख ३५ हजार रुपये का सम्पत्तिदान, २० सर्वस्वदानी ग्राम और ११ गृहदान मिले।

भूदान-यज्ञ-आदोलन को सघ के बन्धन मे न रखकर जन-आदोलन का

रूप देने की बात उडीसा जाने के समय विनोबाजी के मन में उठी थी। आदोलन को सस्था की सीमा मे बाँध रखने से क्राति ला सकना सम्भव नही है। इसलिए उन्होंने सोचा कि आंदोलन का दायित्व अब जनसाधारण के हाथ में सौंपना होगा और ऐसा लोकमानस तैयार करना होगा, जिसमें कि लोग स्वत प्रवृत्त होकर एक दिन निश्चित करके सारे भारत मे भूमि-वितरण कर डाले। उडीसा-भ्रमण के अपने अन्तिम पडाव पर विनोबाजी ने सर्व-सेवा-सघ के कुछ विशिष्ट सदस्यो के समक्ष अपना मनोभाव रखा। इसके बाद १६ और १७ दिसम्बर, १९५५ को आध्र-अतर्गत विजयवाडा नगर मे सर्व-सेवा-सघ की जो बैठक हुई, उसमे इस बारे मे विशेष रूप मे विचार हुआ। उक्त बैठक में इस सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए विनोबाजी ने कहा "जैसे सम्पूर्ण देश मे एक ही दिन होली मनाते हैं और एक ही दिन दीवाली, उसी तरह जन-साधारण एक दिन तय करे और उस दिन सारे देश मे सर्वत्र भूमि-वितरण कर डाले। ऐसी क्राति जन-आदोलन के द्वारा ही सम्भव है। सचित धन मे आर्थिक सहायता लेने, न लेने का प्रश्न गौण है। मुख्य बात यह है कि आदोलन का आधार व्यापक बनाना होगा।" विनोबाजी आगे कहते हैं कि इस बात के आधार पर यह सोचना उचित है कि प्रादेशिक भूदान-समिति आदि का अस्तित्व रहे या नही? उनके मत मे प्रत्येक प्रान्त मे सर्व-सेवा-सघ का एक शाखा-कार्यालय रहे। वहाँ दानपत्र आदि जमा रहे। वहाँ दान-सग्रह, साहित्य-प्रचार आदि के काम हो। बाकी सम्पूर्ण आदोलन जन-साधारण पर छोड दिया जाय। सर्व-सेवा-सघ ने इसका समर्थन किया। यह निश्चय हुआ कि अभी प्रादेशिक भूदान-समिति आदि तो बनी रहेगी, परन्तु सगठन को, जितना सम्भव होगा, विकेन्द्रित किया जायगा और सचित धन से आर्थिक सहायता लेना धीरे-धीरे कम किया जायगा। तदनुसार ही आवश्यक व्यवस्था की जा रही है और इस निश्चय को कार्यरूप मे परिणत करने के प्रयत्न चल रहे हैं।

आध्र में विनोबाजी की पद-यात्रा ने अपूर्व सफलता प्राप्त की। उनकी आध्र की पद-यात्रा का वह सर्वश्रेष्ठ पराक्रम है। सत्य पर आवृत अहिसात्मक आदोलन मे इस सुफल की आशा करना दुराशा नही है। आध्र राज्य के अनेक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता इस आदोलन की विचारधारा से अनुप्राणित हुए हैं और उन्होंने भूदान-यज्ञ के काम मे अपने आपको लगा दिया है। यहाँ के भूदान-

कार्यकर्ताओ में श्री गोराजी का नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है। गोराजी और उनके सम्पूर्ण परिवार ने अपने को भूदान-यज्ञ के रग में रँग दिया है। उनके पुत्र श्री लवणम् प्रार्थना सभा मे विनोवाजी द्वारा दिये जानेवाले भाषण का हिन्दी से तेलुगु मे अनुवाद करके सुनाते थे। इस काम मे उन्होने इतनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया कि सब लोग चकित रह गये।

१३ मई, १९५६ को विनोवाजी ने आध्र से तमिलनाड (मद्रास) मे पदार्पण किया। उसके दो सप्ताह बाद २७ से २९ मई तक, तीन दिन, तमिलनाड-अतर्गत भारत के सात महातीर्थो मे से एक और अन्यतम महातीर्थ काचीपुरम् मे आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सन् १९५७ तक आदोलन की अभीष्ट-सिद्धि के लिए सकल्प ग्रहण किया गया है। इस अवधि के पूरे होने मे केवल १८ महीने बाकी है। अतएव इस सम्मेलन मे विनोवाजी ने आदोलन की तब तक हुई प्रगति का सिंहावलोकन किया। सर्व-सेवा-सघ के प्रस्ताव मे भी उसका उल्लेख किया गया। पाँच वर्षो से चल रहे इस आदोलन की प्रगति के परिणामस्वरूप कई ऐसे दृष्टात उपलब्ध हुए है, जिनका अनुसरण कर जन-साधारण निष्ठा और एकाग्रता के साथ निरतर प्रयत्न करके सकल्पित अवधि के अन्दर अभीष्ट प्राप्त कर सकता है। वे दृष्टान्त है　(१) विहार मे २४ लाख एकड भूमिदान प्राप्त होने से यह सिद्ध हुआ है कि अहिंसात्मक उपाय से कोई भी प्रदेश भूमि-समस्या का बहुत हद तक समाधान कर सकता है। (२) उडीसा मे बहुत-से ग्रामदान प्राप्त हुए है। इससे भूमि पर मालकियत की जड कमजोर पडी है। इसके अतिरिक्त इससे ग्रामराज की स्थापना की कल्पना सामने आयी है और उस सम्बन्ध मे कुछ विचार भी किया गया है। विनोबाजी कहते है कि व्यापक ग्रामदान के द्वारा ससार के समक्ष एक नवीन मार्ग का उदय हुआ है। (३) विहार मे एक दिन मे ही दो सौ ग्रामो मे ग्रामवासियो ने आत्मप्रवृत्त होकर भूमि-वितरण कर लिया है। उडीसा के सर्वस्वदानी चार-पाँच सौ ग्रामो मे प्राय एक ही समय भूमि-वितरण किया गया है। विनोवाजी कहते है कि इससे वितरण की कुञ्जी हमारे हाथ मे आयी है। (४) मध्यप्रदेश मे भूदान की प्रगति ीक तरह से नही हो रही थी। स्थिति को सुधारने के लिए मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओ ने सघन सामूहिक पद-यात्रा का कार्यक्रम अपनाया और उसमे भारी सफलता प्राप्त की। इससे इस आशा का सचार

हुआ है कि जहाँ साधारण कार्यकर्ता अकेले-अकेले काम करके भूमिदान, सम्पत्ति-दान इत्यादि कार्यक्रम पूर्ण नही कर पाते है, वहाँ उनके सामूहिक प्रयत्न से सफलता प्राप्त की जा सकती है। (५) व्यापक सम्पत्तिदान के सम्बन्ध मे अनेक लोगो के मन मे सन्देह था, किन्तु बिहार की एक जनसभा मे, जिसमे जयप्रकाशनारायणजी उपस्थित थे, कई हजार सम्पत्तिदान-पत्र प्राप्त हुए। उडीसा के छोटे-छोटे ग्रामो मे भी बडी सख्या मे सम्पत्तिदान-पत्र प्राप्त हुए है।

भूदान-आरोहण मे भूदान-यज्ञ 'सम्पूर्ण ग्रामदान' की सीढी तक पहुँचा है। विनोबाजी के कथनानुसार—भूदान का चरम उत्कर्ष ग्रामदान है। किन्तु, वह क्राति की सर्वोच्च सीढी नही है। क्राति के 'एवरेस्ट' शिखर तक पहुँचने मे अभी और बहुत-कुछ बाकी है। केवल भूमि-क्राति होने से ही आर्थिक क्राति नही हो जायगी। भूमि-क्राति के साथ-साथ उद्योग-सम्बन्धी क्राति भी होनी चाहिए, अर्थात् खादी और ग्रामोद्योग-समूह की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। आर्थिक क्राति के साथ-साथ सामाजिक क्राति की भी पूर्ण परिणति होनी चाहिए। इसके लिए जाति-भेद का अत अत्यधिक आवश्यक है। क्राति को सुगम बनाने के लिए शिक्षा-व्यवस्था भी क्राति के अनुकूल और उसकी सहायिका होनी चाहिए। अतएव 'नयी तालीम' शिक्षा-पद्धति का व्यापक प्रचलन आवश्यक है। इसीलिए विनोबाजी ने काचीपुरम् सर्वोदय-सम्मेलन मे घोषणा की कि भारत के दक्षिणी प्रदेश मे वे क्राति का पूर्ण विकास देखना चाहते है और इसलिए वे तमिलनाड मे भूदान के काम के साथ, (१) खादी और ग्रामोद्योग, (२) जातिभेद-उन्मूलन और (३) नयी तालीम, इन तीन कामो मे योगदान करेगे। इस कारण वे तमिलनाड मे अनिश्चित काल तक रहेगे। उन्होने अभी इन तीन कामो को क्यो ग्रहण किया, इस सम्बन्ध मे उन्होने पाडीचेरी मे (८ जुलाई, १९५६ को) कहा "एक प्रदेश मे लाखो एकड भूमि-दान प्राप्त किया जा सकता है, यह बिहार ने सिद्ध कर दिया है। एक प्रदेश मे सैकडो ग्रामदान मिल सकते है, और मालकियत मिट सकती है, यह बात उडीसा ने साबित कर दी है। इसलिए एक तरफ मेरा काम समाप्त हो गया है। भूदान के मार्ग से क्या हो सकता है, यह साबित हो चुका है। इससे अधिक केवल एक मनुष्य और क्या

कर सकता है ? अपने बारे में मुझे यही कहना है कि मेरी ओर से भूदान-कार्य की पूर्ण परिणति हो गयी है। इसलिए अब से मैं यहाँ अपने भूदान के काम के साथ ग्रामोद्योग, नयी तालीम, जातिभेद-उन्मूलन आदि कामो को जोडकर ग्राम-राज्य की कल्पना को मूर्त रूप देना चाहता हूँ।" इस महान् कार्य को आरम्भ करने के पूर्व उन्होने चित्तशुद्धि और गम्भीर चिन्तन के लिए काचीपुरम् मे सम्मेलन समाप्त होने के बाद तीन दिन (१ जून से ३ जून, '५६) तक उपवास रखा। साधारण तौर पर तीन दिनो के उपवास के लिए विशेप-कुछ चिन्तित होने की बात नहीं है, किन्तु विनोबाजी की पाकस्थली बहुत क्षतिग्रस्त है और उन्हे तीन-चार घंटे के अतर पर अवश्य कुछ भोजन चाहिए। फलत उनके उपवास ने बडी चिन्ता उत्पन्न की, किन्तु हर्ष की बात है कि ईश्वर की कृपा से उपवास के कारण उनके स्वास्थ्य मे विशेप-कुछ अतर नही आया। उपवास टूटने के बाद केवल तीन दिन तक विश्राम करने के उपरान्त ७ जून से उन्होने तमिलनाड में पुन पद-यात्रा आरम्भ कर दी। अब प्रश्न यह है कि तमिलनाड में ही इस काम को करने का सकल्प विनोबाजी ने क्यो लिया ? इस समय क्राति के अतिम पर्याय का विकास करने का अवसर उपस्थित हुआ है और इसका प्रयोजन तमिलनाड मे उनकी पद-यात्रा के बीच मे ही प्रकट हुआ है। अतएव अहिंसात्मक समाज-रचना के इन तीन अति आवश्यक कामो को तमिलनाड मे उन्होने शुरू किया है, यह समझना स्वाभाविक हे। पर विनोबा कहते हैं कि उन्हे आशा है कि इस प्रदेश मे उन्हे विशेष समर्थन प्राप्त होगा। प्राचीन धर्मग्रन्थो मे उनका विश्वास है। श्रीमद्भागवत मे लिखा है कि जब ससार में कही भी भक्ति शेप नही रह जायगी, तब भी द्रविड प्रदेश मे भक्ति का अभाव नही रहेगा। तमिलनाड के प्राय प्रत्येक गाँव के मध्य मे एक बडा मन्दिर है। इससे श्रीमद्भागवत की यह क्ति सही जान पडती है। इसके अलावा उनका खयाल है कि तमिलनाड में खादी का जो काम हो रहा है, वह व्यवसाय की दृष्टि से नही हो रहा हे। ग्राम-सगठन की ही दृष्टि से वह काम हो रहा है। वहाँ कितने ही रचनात्मक कार्य हो रहे हैं। इसलिए उनके काम के लिए तमिलनाड का वातावरण अधिक उपयुक्त हे। इस बात ने भी उन्हे ऐसा सोचने के लिए प्रभावित किया होगा। तमिलनाड में क्राति के कार्य की प्रगति कैसी होती है, इस बात की ओर सभी लोग ध्यानपूर्वक देखेंगे।

मई, १९५६ के अंत तक सारे भारत में ५ लाख ३७ हजार दानपत्रों के द्वारा ४१ लाख ८२ हजार एकड़ भूमिदान और २१ हजार ८ सौ दानपत्रों के द्वारा वार्षिक ७ लाख ८१ हजार रुपये का सम्पत्तिदान प्राप्त हुआ है। आज तक सारे भारत में १,१०९ सम्पूर्ण ग्रामदान प्राप्त हुए हैं । इसमें से १,०४५ ग्राम उड़ीसा के हैं। अबतक १,८७७ व्यक्तियों ने जीवनदान किया है।

भूदान-यज्ञ के पाँच सोपान

विनोबाजी कहते हैं कि भूदान-यज्ञ के पाँच सोपान हैं। एक सोपान से दूसरे सोपान पर चढ़ते-चढ़ते भूदान-यज्ञ विनोबाजी के उड़ीसा-भ्रमण-काल में पाँचवें सोपान पर पहुँचा। उनकी व्याख्या के अनुसार भूदान-यज्ञ के पाँच सोपान ये हैं

(१) तेलगाना में भूमिहीन दरिद्रों और भूमि के मालिकों के बीच विद्वेष-विवाद आदि के फलस्वरूप वहाँ जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी, उसका प्रतिकार अत्यन्त आवश्यक था। उसी अवस्था में वहाँ भूदान-यज्ञ आरम्भ हुआ और उसका अच्छा परिणाम आया। वहाँ की भयानक स्थिति भी शांत हुई। इसका प्रभाव सारे देश पर पड़ा और देश की विचार-धारा में भूदान-यज्ञ ने एक विशेष स्थान प्राप्त किया। यह भूदान-यज्ञ का पहला सोपान था।

(२) तेलगाना के हंगामे में हजारों भूमि-स्वामी और उनके पक्ष के आदमी मारे गये थे। वहाँ लूटमार, डकैती और गृहदाह की घटनाएँ अबाध गति से घट रही थीं। बहुत लोग सोचते हैं कि वैसी अवस्था में वहाँ भू-स्वामियों से अनुकूल परिणाम प्राप्त करना कठिन न था। किन्तु, सम्पूर्ण देश के लिए विशेषकर जहाँ सामान्य अवस्था है, अर्थात् जहाँ कोई हिंसात्मक आंदोलन नहीं चल रहा है, भूदान-यज्ञ उपयोगी है या नहीं और ऐसे स्थानों पर उसका अनुकूल परिणाम निकलेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। इसीलिए एक ऐसे क्षेत्र में भूदान-यज्ञ की परीक्षा लेना आवश्यक था, जहाँ बिलकुल सामान्य स्थिति हो। विनोबाजी के दिल्ली जाने के मार्ग में यह परीक्षा की गयी और भूदान-यज्ञ सफल साबित हुआ। सम्पूर्ण देश की दृष्टि उस ओर आकर्षित हुई। भूदान-यज्ञ की चारों ओर चर्चा होने लगी। यह हुआ भूदान-यज्ञ का दूसरा सोपान।

(३) इसके बाद कार्यकर्ताओं के मन में आत्म-विश्वास पैदा करने की आवश्यकता हुई, जिससे कि वे आत्म-विश्वास लेकर देशव्यापी आंदोलन को

चलाने मे सफल हो। सेवापुरी-सर्वोदय-सम्मेलन मे दो वर्षो के अन्दर सारे देश मे २५ लाख एकड भूमि और उत्तरप्रदेश मे ५ लाख एकड भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया गया। ये दोनो ही सकल्प पूरे हुए और कार्यकर्ताओं के मन में आत्मनिष्ठा उत्पन्न हुई। इस प्रकार भूदान-यज्ञ तीसरे सोपान पर चढा।

(४) देशभर मे जितनी भूमि है, उसका छठा हिस्सा प्राप्त करने से ही सभी भूमिहीनो को भूमि दे सकना सम्भव है। पहले एक प्रान्त मे खूब जोर-शोर से काम करके वहाँ की षष्ठाश भूमि प्राप्त कर लेने से अन्य प्रान्तो पर भी उसका प्रभाव पडेगा। तव देशभर मे भूमि का षष्ठाश प्राप्त कर सकना सहज होगा। इस वात को सोचकर विहार की षष्ठाश भूमि, अर्थात् ३२ लाख एकड भूमि सग्रह करने का निश्चय किया गया। वहाँ २३ लाख एकड से कुछ अधिक भूमि प्राप्त हो चुकी है। इस समय कार्यकर्ता भूमि-वितरण के काम पर विशेष जोर दे रहे है, इसलिए भूमि-प्राप्ति की ओर ध्यान नही दिया जा रहा है। विहार मे जितनी भूमि दान मे मिली है, उससे अधिक महत्त्व की वात यह है कि वहाँ कितने लोगो ने भूमि-दान किया है। वहाँ तीन लाख व्यक्तियो ने भूमिदान किया है। एक प्रान्त मे किस प्रकार लाखो व्यक्ति लाखो एकड भूमि दान मे दे सकते है, इसके लिए विहार द्रष्टव्य है। लाखो व्यक्तियो ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ दान किया। विहार मे जो दान मिले है, उनमे अधिकाश सात्त्विक दान है। यह भूदान-यज्ञ का चौथा सोपान है।

(५) भूमि पर से व्यक्तिगत मालकियत की समाप्ति से ही भूमि-क्राति सफल होगी। सभी ग्रामो मे व्यक्तिगत मालकियत मिट जाय ओर ग्राम ही सारी भूमि का स्वामी वने। सारा ग्राम एक परिवार के रूप मे रहे। इमे विनोवाजी ने 'ग्राम-परिवार' नाम दिया है। विनोवाजी ने उडीसा के कोरापुट जिले मे जव पैदल-यात्रा शुरु की, तव वहाँ ग्राम-दान-आदोलन वडी तेजी से चल रहा था। अगस्त, १९५५ तक उडीसा मे ५०० से अधिक ग्रामदान मिले। इसमे से केवल कोरापुट जिले मे ही ४०० से अधिक ग्रामो का समग्र-दान मिला। भूदान-यज्ञ मे षष्ठाश दान से अधिक महत्त्व सर्वस्व दान का है। इस प्रकार डीसा मे भूदान-यज्ञ पाँचवे सोपान पर पहुँचा।

विनोवाजी ने भूदान-यज्ञ के पाँच सोपानो का नामकरण किया है। पहले सोपान मे स्थानीय अशाति का दमन हुआ। इसलिए उन्होने इसे 'अशाति-

दमन' नाम दिया है। दूसरे सोपान में सम्पूर्ण देश का ध्यान भूदान-यज्ञ की ओर आकृष्ट हुआ। इसलिए इसे 'ध्यानाकर्षण' नाम मिला है। तीसरे सोपान में कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास जाग्रत हुआ। इसलिए इसका नाम रखा है 'निष्ठानिर्माण'। चौथे सोपान में यह परीक्षा की गयी कि किसी एक प्रान्त में किस प्रकार पष्ठांश भूमि का संग्रह किया जा सकता है। इसलिए इसे 'व्यापक भूमिदान' नाम मिला। पाँचवें सोपान में गाँव को एक परिवार के रूप में परिणत करने का प्रयत्न किया गया। अतएव इसे नाम मिला 'भूमि-क्रांति'।

इसीलिए विनोबाजी ने कहा है कि भूदान-यज्ञ आंदोलन नहीं, वरन् आरोहण है।

बापू जैसा ही दृश्य

विदेशी शासन समाप्त कर हमने जो स्वाधीनता प्राप्त की है, वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता है। वह सम्पूर्ण स्वराज नहीं है। राजनीतिक स्वाधीनता एक सुयोग-मात्र है। इस सुयोग का सदुपयोग करके आर्थिक और सामाजिक साम्य-प्रतिष्ठा कर सकने से ही देश सम्पूर्ण स्वराज प्राप्त करेगा। महात्मा गांधी ने अपने १८ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम में इसी स्वराज का चित्र आँका है। आर्थिक साम्य-स्थापना उक्त १८ सूत्री रचनात्मक कार्यों में सर्वोपरि है। किन्तु परिस्थिति ऐसी है कि भूमि-समस्या का समाधान तथा आर्थिक साम्य-स्थापना आजकल के युगधर्म के रूप में उपस्थित है और महात्मा गांधी का वह अधूरा काम भगवान् ने विनोबाजी के हाथ में सौंपा है। महात्मा गांधी में जिस विभूति का प्रकाश हमने देखा था, विनोबाजी में वैसी ही विभूति का विकास परिलक्षित हो रहा है। और ऐसा लगता है कि गांधीजी की आत्मा विनोबाजी के माध्यम से काम कर रही है। कृपालानीजी ने बिहार में विनोबाजी के साथ भेंट करके उनकी कार्य-पद्धति का अवलोकन किया था और उन्होंने ऐसा अनुभव किया था। उन्होंने कहा था "बापू के साथ चम्पारण में रहकर मैंने जो दृश्य देखा था, यहाँ विनोबाजी के पास भी वही दृश्य देख रहा हूँ। बापू जिस प्रकार काम करते थे, विनोबाजी भी उसी प्रकार काम कर रहे हैं। मैं तो इस प्रकार काम नहीं करता, क्योंकि मेरी प्रकृति ही दूसरे ढंग की है। किन्तु, जो मनोभाव लेकर, जिस पद्धति से, जिस प्रकार बापू काम करते थे, उसी प्रकार विनोबाजी

भी काम कर रहे हैं । गाधीजी जिस तरह ग्रामवासी भाइयो के साथ बात-चीत करते थे, विनोबाजी भी उसी तरह उनके साथ बात करते हैं। ऐसा मन मे लग रहा है और आशा भी हो रही है कि बापूजी की वही आत्मा हम लोगो के बीच आकर काम कर रही है। इतने दिनो तक अनुभव कर रहा था कि उन्होने जो-कुछ सिखाया था, वह उनके चले जाने के बाद, लोग भूलते जा रहे है। किन्तु, इन सब कामो को देखकर ऐसा लगता है कि महात्माजी की आत्मा विनोबाजी के माध्यम से हम लोगो के बीच काम कर रही है और गाधीजी का काम चालू है—वह बन्द नही हुआ है। केवल विदेशी शासन का अवसान ही उनका लक्ष्य नही था। हम लोगो मे जो लोग राजनीतिज्ञ है, वे विदेशी शासन की समाप्ति को ही क्राति समझते थे, किन्तु उनके लिए यह क्राति की दिशा मे एक कदम-मात्र ही था। उन्होने स्वाधीनता की सहायता लेकर दरिद्रता की समस्या को हल करना चाहा था।"

सम्पूर्ण ग्रामदान या भूमि का ग्रामीकरण

आदोलन के प्रारम्भिक काल में विनोबाजी ने कहा था "मै छोटा परिवार नही चाहता, इसलिए बड़े परिवारो की रचना करने जा रहा हूँ। मै सम्पूर्ण ग्राम को एक परिवार मे बदलना चाहता हूँ।" उन्होने यह भी कहा था : "इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए मेरा आदोलन आगे बढ रहा है और सफलता मिलने तक यह आदोलन चलता रहेगा।" इसके बाद १९५३ के मध्य मे राँची मे आयोजित एक कार्यकर्ता-शिविर मे उन्होने बिहार प्रदेश के कार्यकर्ताओ को भूमि-व्यवस्था के अतिम स्वरूप के बारे मे समझाया ·

"हम लोगो की अन्तिम अवस्था ऐसी होगी। भारतभर मे जितनी जमीन है, सब एक साथ मिलाकर आबाद की जायगी, एसा नही। व्यक्ति के हाथ मे जमीन रहेगी, किन्तु ग्राम-पचायत के हाथ मे भूमि की मालकियत रहेगी। प्रत्येक परिवार को ५ एकड के हिसाब से जमीन खेती के लिए मिलेगी और बाकी जमीन सामूहिक रहेगी। मालगुजारी सामूहिक जमीन की फसल से दी जायगी। शिक्षा, चिकित्सा-व्यवस्था आदि का खर्च सामूहिक जमीन से पूरा किया जायगा। इस प्रकार गाँव के सभी सार्वजनिक कार्य सामूहिक जमीन से पूरे किये जायँगे और खाद्योत्पादन के लिए सभी लोगो के पास थोडी-थोडी जमीन

रहेगी। प्रत्येक आठ-दस वर्प पर जमीन का पुनर्वितरण होगा। जिसके घर मे अविक लोग होगे, उसे अविक जमीन दी जायगी और जिसके घर मे कम लोग होगे, उसे कम जमीन दी जायगी। इस अवधि के लिए यही व्यक्ति जमीन का मालिक होगा, अर्थात् इस काल मे इससे जमीन छीनी नही जायगी। हर आदमी यही सोचकर काम करेगा कि यह दायित्व उसका है और जमीन उसकी है। इस प्रकार सामूहिक जमीन भी उन्ही लोगो की है—ऐसा सोचकर लोग उस जमीन पर भी काम करेगे। सव जमीन हम लोगो की है। हमे जरूरत पडने पर और जमीन मिल भी सकेगी और वापस भी ली जा सकेगी—ऐसा मनोभाव रहेगा। यद्यपि पिता-पुत्र के वीच अटूट सम्वन्ध रहता है, तथापि कोई पिता ऐसा नही कहता है कि 'मै अपने पुत्र का मालिक हूँ'। पिता कहता है कि 'मालिक भगवान् है। हम दोनो ही उसके सेवक है'। अर्थात् उसे अपनी सन्तान के प्रति ममता तो है, किन्तु उस पर मालिकाना अविकार नही है। इसी प्रकार जमीन के प्रति ममता तो रहेगी, किन्तु उस पर मालिकाना अविकार नही रहेगा। जमीन की विक्री नही होगी। भला कोई अपने वच्चे को वेचता है ? वच्चे को किसीकी सहायता के लिए दिया जा सकता है। जमीन का मूल्य पैसे से नही चुकाया जा सकता। वह अमूल्य वस्तु है।"

आरम्भ से विनोवाजी के मन मे सम्पूर्ण ग्रामदान की वात थी। किन्तु, उन्होने शुरु से सम्पूर्ण ग्रामदान पर जोर नही दिया, क्योकि महान् विचार प्रकट करना एक वात है और उसे वास्तविकता मे परिणत करना दूसरी वात। आदोलन की प्रगति के साथ-साथ उसके लिए अनुकूल अवस्था की सृष्टि होनी चाहिए। वुदेलखण्ड के यशस्वी नेता दीवान शत्रुघ्न सिंह के सत्प्रयास से उत्तर-प्रदेश के मँगरोठ ग्राम के निवासियो ने विनोवा की इस कल्पना को मूर्त रूप दिया। उन्होने मँगरोठ ग्राम का समग्रदान कर दिया। भारत मे वही पहला सम्पूर्ण ग्रामदान था। इसके वाद विहार मे १३ ग्राम और उडीसा मे २५ ग्राम सम्पूर्ण ग्रामदान के रूप मे मिले। उडीसा मे धीरे-धीरे सम्पूर्ण ग्रामदान की सख्या वढने लगी। विनोवाजी ने कहा था कि उडीसा मे उनके भ्रमण का उद्देश्य होगा 'भूमि-क्राति'। सम्पूर्ण ग्राम के सर्वस्वदान के द्वारा भूमि-क्राति होगी। विनोवाजी के उडीसा-भ्रमण-काल में कोरापुट जिले मे सम्पूर्ण ग्रामदान तेजी से होता रहा। यह वात भूदान-यज्ञ-आदोलन की महती सम्भावनाओ की ओर निर्देश करती है।

सर्वस्वदानी ग्रामो की भूमि-व्यवस्था कैसी होगी और किस प्रकार इन ग्रामो मे पुर्ननिर्माण के काम होगे, उसकी विस्तृत व्याख्या विनोवाजी ने कोरा-पुट जिले के भ्रमण के समय ग्रामवासियो के समक्ष की। उन्होने कहा : "जमीन के मालिक भगवान् है। ग्राम भगवान् की ओर से जमीन के ट्रस्टी होगे। कानून भी किसी व्यक्ति को जमीन के मालिक के रूप मे नही मानेगा। ग्राम को ही जमीन का मालिक माना जायगा। परिवार मे कितने लोग है, यह देखकर प्रत्येक व्यक्ति पर एक एकड के हिसाव से जमीन खेती के लिए दी जायगी। प्रत्येक पाँच या दस वर्षो पर परिवार के सदस्यो की सख्या को देखते हुए जमीन का पुनर्वितरण होगा। ग्राम मे थोडी-सी सामूहिक जमीन रहेगी। इस जमीन की आय से ग्राम की समस्त जमीन की मालगुजारी दी जायगी और ग्राम के सभी उत्थानमूलक कार्य किये जायँगे। कुछ वर्षो के परीक्षण के उपरान्त यदि ग्रामवासी चाहे, तो वे सारी जमीन को सामूहिक रूप दे सकेगे। अव केवल सुविधा के लिए वे लोग अलग-अलग खेती करेगे। यदि किसीके खेत मे वहुत अधिक काम पड जायगा, तो गाँव के सभी लोग मिलकर काम कर दे। यदि कोई व्यक्ति कष्टपीडित होगा या उसकी जमीन मे कम फसल होगी, तो उसे सहायता दी जायगी। कोई किसीको ऋण नही देगा, क्योकि सम्पूर्ण ग्राम एक परिवार के रूप मे रहेगा।

"साथ-ही-साथ कुटीर-उद्योगो की स्थापना की जायगी और ग्राम के स्वावलम्वी होने ओर उसे पैसे की माया से मुक्त करने की चेप्टा की जायगी। पहला काम यह होगा कि सव ग्रामवासी मिलकर यह निश्चय करेगे कि उनके गाम मे वाहर से कपडा नही आयेगा। कपास पैदा करने से लेकर कपडा तैयार करने तक का सारा काम ग्राम मे ही होगा। इसके द्वारा गाँव के सभी लोग काम पायँगे और गाँव की लक्ष्मी गाँव मे ही रहेगी। इसके अतिरिक्त गाँव को जिन वस्तुओ की आवश्यकता होगी, उन्हें गाँव मे ही पैदा करने की व्यवस्था की जायगी। गाँव मे किसीकी भी व्यक्तिगत दूकान नही होगी। ग्राम की ओर से ही एक दूकान रहेगी। वह दूकान ही आवश्यकता के अनुसार वाहरी चीजे खरीदेगी और ग्राम की जरूरतो की पूर्ति के वाद अपने यहाँ उत्पादित वस्तुओ को वाहर वेच देगी।

"गाँव के सभी वच्चे एक-सी शिक्षा पायँगे। शिक्षक सवेरे एक घटा वच्चो

को और शाम को एक घंटा वयस्कों को शिक्षा देंगे। दिन के बाकी घंटों में वे अपना काम करेंगे। भारत की शिक्षण-व्यवस्था में शिल्प तथा ब्रह्मविद्या, दोनों का ही स्थान होना चाहिए। इसमें अपनी योग्यता के अनुसार काम मिलेगा और बुद्धि का ठीक ढंग से विकास होगा। प्रतिदिन शाम को गाँव के सब लोग एक जगह इकट्ठे होंगे और वहाँ गीता, रामायण आदि धर्मग्रन्थों का पाठ होगा तथा ग्रामोन्नति के बारे में विचार-विमर्श किया जायगा। आजकल शराब, बीडी, सिगरेट आदि के सेवन के कारण ग्रामों की अवस्था बहुत खराब हो गयी है। इसलिए सभी ग्रामवासी मिलकर भगवान् को साक्षी रखकर यह निश्चय करेंगे कि वे शराब, बीडी आदि का सेवन नहीं करेंगे। गाँव में जिस व्यक्ति पर कर्ज है, उसे माफ कर देने के लिए या ब्याज छोड देने के लिए महाजन से अनुरोध किया जायगा। भविष्य में यदि किसीको कर्ज की जरूरत पडेगी, तो गाँव की ओर से मिलेगा। सरकार से भी कर्ज लिया जा सकेगा। गाँव में होनेवाले सारे विवाहों की व्यवस्था गाँव की ओर से ही की जायगी—किसी परिवार-विशेष पर बोझ नहीं रहेगा। इसीलिए विवाह के लिए ऋण लेने की कोई जरूरत नहीं रहेगी।

"सामाजिक क्षेत्र में जातिभेद, अस्पृश्यता, स्त्री-पुरुष-भेद, आदि सभी भेद-भाव दूर कर दिये जायँगे। प्रत्येक व्यक्ति को परमेश्वर का पुत्र माना जायगा और उस दृष्टि से सबके समान अधिकार होंगे। सब प्रकार के शिल्प तथा सब तरह के समाजहितकारी कार्यों की सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रतिष्ठा एक-सी मानी जायगी। गाँव की जमीन पर सबका समान अधिकार माना जायगा और आदर्श यह होगा कि सब लोग कुछ देर खेत में काम करें। कारण यह है कि खेती के काम को छोड देने पर मानव-जीवन पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। गाँव के जुलाहे, चमार, कुम्हार, सभी गाँव के लोगों की आवश्यकता के अनुसार काम करेंगे। उसका हिसाब नहीं रखा जायगा। बर-सात के अन्त में जब फसल होगी, तब किसान लोग अपनी-अपनी फसल का कुछ अंश उन शिल्पियों को दे आयँगे। पहले ग्रामों में ऐसा ही होता था। इस प्रकार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आरम्भ 'ग्राम-परिवार' से ही होगा।"

सर्वस्वदानी ग्रामों की भूमि-व्यवस्था से व्यक्तिगत मालकियत तो समाप्त हो जाती है, परन्तु व्यक्तिगत मालकियत की सुविधाएँ ग्रामवासियों को

मिलती रहती है, अर्थात् अलग-अलग वे खेती कर सकते हैं। सपूर्ण ग्रामदान के वारे मे विनोवाजी कहते है कि भूदान-यज्ञ का पहला कदम यह है कि गाँव में कोई भूमिहीन नही रहेगा और उसका अतिम कदम यह होगा कि गाँव मे भूमि का मालिक कोई नही रहेगा।

विनोवाजी कहते है कि सम्पूर्ण ग्रामदान के चार सुपरिणाम है : (१) आर्थिक, (२) सास्कृतिक, (३) नैतिक और (४) आध्यात्मिक। इस सम्वन्ध मे व्याख्या करते हुए वे कहते है :

(१) आर्थिक—"सम्पूर्ण ग्रामदान का पहला सुपरिणाम है—आर्थिक क्राति। व्यक्तिगत स्वामित्व का अत होने से गाँव की सव जमीन एक जगह हो जायगी और इससे गाँव की श्री-वृद्धि होगी। इसके कारण ये है : (क) गॉव मे किस फसल की किस परिमाण मे आवश्यकता है, सको दृष्टि में रखकर खेती की व्यवस्था होगी, (ख) कृपि की उन्नति के लिए पूरी चेष्टा की जायगी, (ग) सरकारी और वाहरी सहायता पा सकना आसान होगा और (घ) व्यक्तिगत रूप से किसीको ऋण लेने की जरूरत नही पडेगी। मोटे तौर पर ,इससे ग्राम-आयोजना मे विशेष सुविधा होगी। इस प्रकार गॉव में आर्थिक क्राति होगी।

(२) सास्कृतिक—"गाँव के एक परिवार के रूप मे रहने से परस्पर प्रेम और सौहार्द्र मे वृद्धि होगी। सुख या दु ख मे अन्य साझीदार होने से सुख वढता है और दु ख घटता है। इसलिए सम्पूर्णदानी ग्रामो के लोगो का सुख वढेगा और दु ख घटेगा। इसके अतिरिक्त इन सम्पूर्णदानी ग्रामो की परिवार-मूलक और व्यक्तिमूलक मनोवृत्ति दूर हो जायगी और ग्रामवासियो के विचार वहुत-कुछ खिलाडियो की तरह हो जायँगे, जिन्हे अपने समूह की सफलता-असफलता की चिन्ता रहती है। खिलाडी अकेले न खेलकर अपने दल के साथ खेलता है और पूरे दल की सफलता पर हर्पित होता है। सामूहिक नृत्य मे नर्तक के साथ भी यही वात रहती है। इसी प्रकार सर्वस्वदानी ग्रामो के लोग एक परिवार के रूप मे सहयोगपूर्वक रहेगे और सुख की वात होने पर विशेप सुख पायँगे और दु ख की वात होने पर कम दु ख अनुभव करेगे।

(३) नैतिक—"ग्रामीकरण के फलस्वरूप ग्रामीणो का नैतिक विकास होगा। झगडा, गाली-गलौज, चोरी, व्यभिचार आदि समाप्त हो जायँगे।

भला कोई अपने घर मे भी चोरी करता है? मनुष्य ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अलग परिवार और अलग सम्पत्ति की सृष्टि की है। इस व्यक्तिगत स्वामित्व-भावना के कारण ही समाज का नैतिक अध पतन हो रहा है। एक भिखारी दो-चार पैसे और एक टुकडा साबुन भी अपने फटे चिथडे मे यत्नपूर्वक बाँधकर रखता है। इसी प्रकार कोई कुछ आने, कोई कुछ रुपये और कोई हजार-हजार रुपये अपनी थैली मे जमा करके बैठा है। लोगो का मन इतना सकीर्ण हो गया है और लोगो ने अपने घर का दायरा अत्यधिक सीमित कर लिया है। उनकी परिवारमूलक धारणा बहुत सकीर्ण हो गयी है। आज सारे ससार के झगडो की जड यही है। जब भूमि या सम्पत्ति की मालकियत की प्रथा समाप्त हो जायगी, तब लोगो का और समाज का नैतिक धरातल ऊँचा उठेगा। इसमे सदेह नही। यही सम्पूर्ण ग्रामदान का सर्वोत्कृष्ट सुपरिणाम है, तब सारा ससार आनन्द मे नाचने लगेगा। आज सारा ससार दु खी है। स्वार्थ-सिद्धि के लिए परस्पर सघर्ष ही दु ख का कारण है। इसके फलस्वरूप हिसा बढ रही है। यदि गाँव की भूमि और सम्पत्ति गाँव की ही हो जाय, तो ससार को नैतिक उन्नति करने का एक मार्ग मिल जायगा।

(४) आध्यात्मिक—"आध्यात्मिक महत्त्व की बात सबसे अत मे कह रहा हूँ, पर इसके कारण इसका गुरुत्व कम नही है। लोग जब बोलते है, तो कहते है : 'यह मेरा घर है', 'वह मेरी जमीन है' आदि। इसी 'मेरा' और 'मेरी' के भाव ने मनुष्य को आसक्ति का दास बना दिया है। जब मनुष्य 'मै' और 'मेरा' के रूप मे सोचना बन्द कर देगा, और यह समझेगा कि ससार मे जो कुछ है, वह हर किसीका है और ऐसा कुछ भी नही है, जो केवल मेरे 'भोग' के लिए है, तब वह शीघ्र ही मुक्ति-लाभ कर लेगा। आज हर किसीका मन बन्धन मे बँधा है, क्योकि 'मै', 'मेरा' से लोग छुटकारा नही पा रहे है। इसी वजह से ऋषि-मुनियो द्वारा बताये गये मुक्ति के मार्ग पर चलने पर भी सुख या मुक्ति नही मिल पा रही है। ऐसा प्राय कहा जाता है कि यदि मनुष्य सर्वस्व त्याग कर दे—घर छोडकर चला जाय, तब 'मै' और 'मेरा' की भावना चली जायगी। किन्तु, ऐसे निषेधात्मक मार्ग से मुक्ति-लाभ नही किया जा सकता। साधारण तौर पर जिसे घर कहा जाता है, उसे हम अपना प्रकृत घर मानना छोड दे, तभी हमारी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। हम इस

वात का दृढ विश्वास होना चाहिए कि सारा गाँव हमारा घर है और जिस घर मे हम रहते है—जिसे हम अपना कहकर सम्बोधित करते है, वह सबके लिए है। 'मै किसीके लिए नही हूँ', और 'कोई मेरे लिए नही है'—इस भ्रान्त धारणा से मुक्ति नही प्राप्त की जा सकती। 'मै सबके लिए' और 'सब मेरे लिए'—ऐसा विचार रखने से ही मुक्ति मिल सकेगी।

"अतीत काल मे मुक्ति-साधना के लिए इसी भाव को ग्रहण करने के बहुत प्रयत्न हुए है कि 'मेरा कुछ नही है'। इसीलिए ससार को छोडकर चले जाने और लोक-ससर्ग से दूर जाकर एकान्तवास करने का झोका इस देश मे रहा है। ऐसा समझा जाता रहा है कि मुक्ति पाने का यही सरलतम उपाय है। किन्तु, मुक्ति-प्राप्ति का ऐसा कोई सीधा रास्ता नही है। मनुष्य सब छोड-कर चला तो जाता है, फिर भी 'लँगोटी' पर उसकी आसक्ति रह ही जाती है। इससे कुछ काम नही होता। इसलिए हमे यह विचार ग्रहण करना पडेगा कि हमारा जो कुछ है, वह सब गाँव का है। यही नही, हम स्वय भी गाँव के है और गाँव हमारा है। इस विश्वास से ही शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर सकना सम्भव होगा।"

प्रेम और आत्मत्याग-भाव का विकास

साधारण तौर पर देखने से ससार स्वार्थी प्रतीत होता है। जिधर भी दृष्टि जाती है, उधर स्वार्थपरता, ईर्ष्या और हिंसा की लीलाएँ दिखाई पडती है। व्यक्ति-व्यक्ति मे, परिवार-परिवार मे, जाति-जाति मे, वर्ग-वर्ग मे, देश-देश मे स्वार्थपूर्ण सघर्ष, परस्पर ईर्ष्या-भाव तथा हिंसा का विकट स्वरूप दिखाई पडता है। ऐसी अवस्था मे, इतने कम समय मे, समस्या की तुलना मे बहुत कम होने पर भी, कैसे इतनी भूमि भूदान-यज्ञ मे प्राप्त हो सकी ?

मनुष्य मे जिस प्रकार लोभ, अहिंसा और ईर्ष्या पायी जाती है, उसी प्रकार उनमे आत्मत्याग का भाव भी विद्यमान रहता है। अपने जीवन मे धीरे-धीरे हिंसा, ईर्ष्या और लोभ को दूर कर अहिंसा और प्रेम को अपनाने का प्रयत्न मनुष्य करता आ रहा है। मनुष्य और पशु के बीच यही अन्तर है। पशु आरम्भ में जैसे थे, वैसे ही अब भी है। किन्तु, हिंसात्मक शक्ति के क्षय एव प्रेम-शक्ति के विकास के द्वारा मनुष्य अपने मे आश्चर्यजनक परिवर्तन ले आया है। इसी

तरह मानव-सभ्यता का स्वाभाविक विकास होता रहा है। अफ्रिका के गहन जंगलो मे मनुष्य का जो नमूना अब भी दिखाई पडता है, अंडमान के गहन जंगलो मे जखाज नामक जाति की जो हिंस्र मूर्ति अब भी दृष्टिगोचर होती है, उन सबमे उपर्युक्त कथन की सचाई का पता चलता है। मानव-सभ्यता के इतिहास मे किसी-किसी मनुष्य ने तो प्रेम और आत्मत्याग-भावना के क्षेत्र मे इतनी अधिक प्रगति की कि उसे 'नर-नारायण', 'ईश्वर का अवतार' आदि सज्ञाओ से विभूषित किया गया। यह विशिष्ट लोगो की बात है।

किन्तु, साधारण क्षेत्र मे प्रेम और अहिंसा को अपनाने के मामले मे मानव-सभ्यता का विकास परिवार तक ही सीमित है। इसीलिए साधारण मनुष्य मे त्याग और प्रेम का विकास सदा पाया तो जाता है, पर वह अपने परिवार और परिजनो तक ही सीमित रहता है। लोग अपने परिवार के लोगो के लिए कितना अधिक त्याग करते है, कितना अधिक दु ख-कष्ट सहने को तैयार रहते है। घर-घर में प्रेम और त्याग की अनुपम मनोवृत्ति देखी जाती है। माता-पिता पुत्र-पुत्री के लिए, सन्तान माता-पिता के लिए, पत्नी पति के लिए, पति पत्नी के लिए जो आत्मत्याग करता है, जो कष्ट सहता है, उसे देखकर स्तब्ध रह जाना पडता है। यदि मनुष्य सम्पूर्ण ग्राम को अपना परिवार समझ ले, यदि मनुष्य गरीब को अपने परिवार का एक सदस्य और गरीब भूमिहीन को अपने परिवार का एक अन्यतम भागीदार समझ ले, तो भूदान-यज्ञ अविलम्ब ही पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेगा। मानव-सभ्यता के इतिहास मे मनुष्य ने जितनी भी संस्थाओ की सृष्टि की है, उनमे परिवाररूपी सस्था सर्वोपरि है। यहाँ मनुष्य ने दूसरे के लिए त्याग करने और दु ख-कष्ट सहने की शिक्षा पायी है। दूसरे मे अपने को विकसित और प्रसारित करने की शिक्षा पायी है। दूसरे को अपने सदृश समझने की शिक्षा पायी है। किंतु, मानव-सभ्यता की प्रगति यही अवरुद्ध हो गयी है, क्योकि मनुष्य ने परिवार मे आत्म-त्याग और आत्म-विकास करने की जो शिक्षा पायी है, उसे अपने परिवार मे, अपने पुत्र-परिजनो तक ही सीमित रखा है—उसे ग्राम या समाज तक फैलने नही दिया है। इसीलिए भूदान-यज्ञ का उद्देश्य मानव-सभ्यता को—प्रथमत भारतीय सभ्यता को उच्च स्तर पर ले जाना है। भूदान-यज्ञ का उद्देश्य है—परिवार की विस्तार-सम्बन्धी धारणा को बदलना, प्रेम और त्याग के क्षेत्र को विस्तृत करना, ग्राम को—

सारे समाज को, अपना परिवार समझना औ रगरीव को—गरीव भूमिहीन को, अपना छठा पुत्र मानना। इसीलिए विनोवाजी ने कहा है। "मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि आप लोग अपनी सन्तान के प्रति जैसा स्नेह-भाव रखते हैं, वैसा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार दूसरो की सन्तान के साथ भी करे।" मनुष्य की आत्मिक शक्ति, मनुष्य के प्रेम और आत्मत्याग की शक्ति अपरिमित है। किन्तु, अभी अपने परिवार-परिजन की सीमा मे ही यह शक्ति सोयी पडी है। इस सुप्त शक्ति को किस प्रकार जगाया जा सकता हे ?

इस सुप्त शक्ति को जगाने के लिए पहले लोकमानस मे विचार-क्राति लाना आवश्यक होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति-वोध के आधार पर ही वर्तमान समाज-व्यवस्था कायम है। अतएव यह विचार-क्राति होगी लोक-मानस से स्वामित्व-भाव को दूर करने से। किस प्रकार यह विचार-क्राति समाज मे आयगी ?

जिस प्रकार आत्मा की शक्ति अपरिमित है, उसी प्रकार विचार या चिन्तन की शक्ति भी अपरिमित है। कोई चिन्तन-धारा किसी व्यक्ति के मन मे इस प्रकार वैठ जाती है कि वह उसके जीवन मे क्राति की सृष्टि कर देती है। ऐसा देखा जाता है कि किसी-किसी मनुष्य की विचारधारा मे इतनी शक्ति रहती है कि वह दूसरे मनुष्यो के जीवन मे, वल्कि सम्पूर्ण समाज के जीवन में आमूल परिवर्तन ला देती है। इसके लिए यह जरूरी है कि विचारधारा सत्य पर आधृत हो। भूदान-यज्ञ मे निहित विचारधारा सत्य पर आधृत है और भारतीय समाज की वर्तमान अवस्था मे जिन वातो की आवश्यकता है, उनके अनुकूल है। इस विषय को थोडा और स्पष्ट रूप मे समझ लिया जाय। साधारण तौर पर धर्म-प्रचार और क्राति (जिसे विनोवाजी "धर्म-चक्र-प्रवर्तन" कहते है) की चेष्टा—दोनो अलग-अलग चीजे है। ऋषि-मुनिगण ने तो सदा ही धर्म की शिक्षा दी है और उसका प्रचार भी किया है। किन्तु, समय की आवश्यकता क्या है, युग की पुकार क्या है—इसे पहचानकर इसके साथ धर्मविचार को सयुक्त करना दूसरी वात है। वही क्राति का मार्ग है। वही 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' की पद्धति है। अर्थात् सत्पुरुष आते है और दिनानुदिन के प्रयोजन के लिए धर्म-प्रचार करते है। ऐसा चिरकाल से हो रहा है, पर इससे व्यापक रूप से कोई हृदय-परिवर्तन नही होता। किन्तु, जव कोई धर्म-विचार युग की माँग के साथ

जुड जाता है, तब हृदय-परिवर्तन होता है। इसीलिए महात्मा गाधी देश को सामुदायिक अहिंसा के पथ पर ले जाने में समर्थ हुए। विरोधी के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना और अहिंसात्मक ढग से सघर्ष करना पुरानी बात है। किन्तु, उस समय युग की माँग थी स्वराज। यदि उस समय वे उसे स्वराज के साथ जोड नही देते, तो उन्हे कितने अनुयायी मिलते? अग्रेज बहुत शक्तिशाली थे और उनकी शस्त्र-शक्ति भी बहुत अधिक थी। हम थे नि शस्त्र। इसलिए अहिंसात्मक पथ से अग्रेजो के साथ युद्ध करना समीचीन था। किन्तु, केवल इससे ही काम नही चलता। देश की परिस्थिति भी अनुकूल थी। इस प्रकार आतरिक धर्म-विचार की शक्ति और परिस्थिति की शक्ति, दोनो को जोडकर वे देश को अहिंसा की शिक्षा देने मे समर्थ हुए। उसी प्रकार भूमिहीन गरीबो को आज भूमि चाहिए। केवल इस देश के ही नही, बल्कि सारी दुनिया के, विशेष-कर एशिया के भूमिहीन गरीबो को भूमि चाहिए। जमीन न मिलने से वे किसी प्रकार भी शात नही रहेंगे—स्थिति यही है। इसके साथ ही आज एक धर्मबोध जाग्रत हो रहा है—भूमि पर सबका समान अधिकार है। क्षुधा-पीडित भूमिहीन पडोसी को भूमि देनी चाहिए। सबको उत्पादन के लिए मेहनत करनी होगी, तभी स्वाभाविक शातिपूर्ण समता आयेगी। उत्पादक के श्रम की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। यदि पाँच सौ वर्ष पूर्व इस धर्म-विचार का प्रचार किया जाता, तो कोई भी इस बात को न सुनता। किन्तु, आज की परिस्थिति इस धर्म-विचार को सुनने और अनुसरण करने के अनुकूल है। इस धर्म-विचार की शक्ति और वर्तमान परिस्थिति की शक्ति एक साथ जुड गयी है। बाहरी परिस्थिति के फलस्वरूप धर्म-विचार सहज ही हृदय पर असर करता है और उससे हृदय-परिवर्तन होता है। साथ ही हृदय-परिवर्तन होने का प्रभाव बाहरी परिस्थिति पर भी पडता है। एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार फल से बीज होता है और बीज से फल।

किन्तु, इस विचारधारा के समाज मे व्यापक रूप से प्रसार के लिए एक और वस्तु की आवश्यकता होती है। इस विचारधारा का प्रवर्तन कौन कर रहा है? केवल उच्च और शुद्ध जीवन ही दूसरे के जीवन को सुधारने और ऊँचा उठाने में समर्थ होता है। यदि ससार में एक भी शुद्ध सत्याग्रही रहता है, तो उसका प्रभाव सारे विश्व पर पडता है और सबका हृदय उसके प्रभाव से द्रवित

हो उठता हे। तव यह जरूरी है कि उसके (सत्याग्रही के) हृदय मे सारे ससार के प्रति प्रेम-भाव रहे। हम लोगो के बीच समय-समय पर ऐमे पुरुपो का आविर्भाव होता है, जिनका एकमात्र काम ओर उद्देश्य ससार का कल्याण होता है, जिनके जीवन मे दूस ो की सुख-सुविधाओ के लिए आत्म-त्याग छोडकर ओर कुछ नही होता, जिनका प्रेम सर्वव्यापी होता है और जो "आत्मौपम्य" विचार से सम्पन्न होते हैं, अर्थात् जो दूसरो के सुख-दु ख को अपना सुख-दु ख मानते है और सर्वत्र समबुद्धिसम्पन्न होते है—मोटे तोर पर जो जन्मजात सत्याग्रही होते है। ऐसे मनुष्य को हम 'महापुरुप', 'महात्मा' आदि नाम देकर अपने अन्तर की श्रद्धा प्रकट करते है। ऐसे मनुष्य के आ ह्वान से, उसके दर्शन से और उसकी वाणी से हमारे हृदय मे निहित त्याग- ृत्ति उद्बुद्ध होती है, हमारी सुप्त आत्मशक्ति जागती है, हमारे अन्तर मे स्थित सकीर्णता का भाव नष्ट होता हे और हमारे अन्तर मे प्रकाश फूट पडता हे। वे जिस चिन्तनधारा को ग्रहण करने के लिए मनुष्य का आ ह्वान करते हैं, वह मनुष्य के जीवन पर शीघ्र ही अपूर्व प्रभाव डाल देती है। उनके त्याग या दु ख-कष्ट अपनाने के आ ह्वान पर हजारो, लाखो मनुप्य त्याग का व्रत ले लेते है और समाज कल्याण के पथ पर अग्रसर होता है ओर समाज मे क्राति आती है। ऐसे एक महामानव हमारे बीच मे थे—महात्मा गाधी। उनके आ ह्वान पर सम्पूर्ण भारत त्याग-मत्र से, दु ख-कष्ट दूर करने के मत्र से उद्बुद्ध हो उठा था। वे चले गये है। आज उनके सर्वश्रेष्ठ अनुगामी आचार्य विनोवा भावे मे अनुरूप विभूति का विकास हो रहा है। इसीलिए उनके द्वारा प्रवर्तित विचार इतने थोडे दिनो के भीतर ही सव श्रेणी और सव वर्ग के लोग ग्रहण करने को आतुर हो उठे है। देश के वालको और वालिकाओ को भी भूदान-यज्ञ के विपय मे जानकारी हो गयी हे। थोडे ही दिनो के भीतर देश के अनेक स्थानो मे उसने क्रातिकारी वातावरण की सृष्टि कर दी है। हमारी विशाल समस्या की तुलना मे वहुत कम होने पर भी थोडे ही दिनो के भीतर लोगो से प्रेमपूर्वक ४० लाख एकड भूमि उपलब्ध की जा सकी हे।

इस विपय को और भी गम्भीर भाव से मनन करने की आवश्यकता है। अभी ऊपर जो महात्मा और महापुरुप की वात कही गयी है, वास्तव मे वे कौन हैं ? आत्मा अनन्तगुणसम्पन्न है। आत्मा मे अनन्तशक्ति भरी है। समय और परिस्थिति के अनुसार समाज मे उत्पन्न समस्या के समाधान के लिए आत्मा मे

एक ऐसे गुण या शक्ति का विकास होने की आवश्यकता पड़ती है, जिसका आविर्भाव पहले नहीं होता। उस समय आत्मा का वैसा ही विकास होता है और मनुष्य के हृदय में उसी शक्ति या गुण का आविर्भाव होता है। इनका अन्त नहीं है। जब भी, जैसा प्रयोजन आयगा, तब आत्मा में तदुपयोगी गुण का विकास होगा और समाज का काम चलता रहेगा। अब तक आत्मा में जितने गुणों या शक्तियों का विकास हुआ है, वही सम्पूर्ण है, और अब किसी नये गुण या शक्ति का विकास नहीं होगा, ऐसा समझना संकीर्णता और अनभिज्ञता का परिचायक है। आत्मा के गुण या शक्ति के इस आविर्भाव को विनोबाजी ने "अवतार" नाम दिया है। जिस युगपुरुष के माध्यम से इस गुण या शक्ति का आविर्भाव और विकास होता है, वह वास्तव में अवतार नहीं है, निमित्तमात्र है। इसीलिए विनोबाजी ने कहा है "अवतार का अर्थ है, मानव के हृदय में शक्ति का आविर्भाव होना। जहाँ सत्यनिष्ठा का आविर्भाव हुआ, वहीं उसने रामचंद्र का रूप ग्रहण किया। जहाँ निष्काम कर्मयोग प्रकट हुआ था, वहाँ उसने श्रीकृष्ण का रूप धारण किया था। बुद्ध के रूप में करुणा मूर्तिमती हुई, इसीलिए हमने बुद्ध को अवतार मान लिया। इन्द्रियों के वशीभूत होकर हम मनुष्य को अवतार मान लेते हैं। केवल कुछ विशेषता इन्द्रियों को दीखनी चाहिए। इसीलिए वह स्वरूप-सृष्टि करती है। वास्तव में राम, कृष्ण या बुद्ध अवतार नहीं हैं, उनके माध्यम से सत्यनिष्ठा, निष्काम कर्मयोग और दया अवतरित हुई थी। जहाँ ऐसी मानवता की शक्ति प्रकट होती है, वहीं अवतार मान लिया जाता है। किन्तु, मनुष्य ने उसमें मूर्ति-पूजा का आरोपण किया। उससे उपासना में सुविधा होती है। किन्तु, मनुष्य का शरीर अवतार नहीं होता—अवतार होता है मानव के हृदय में आविर्भूत भाव। जैसे-जैसे आध्यात्मिक विकास होता गया, वैसे-वैसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ अवतारों का आविर्भाव होता गया। यही समाज-विकास की प्रक्रिया है। अंग्रेजों ने भारत में आकर अपना शासन स्थापित किया। उन लोगों ने एक चमत्कार दिखाया—सम्पूर्ण देश को निःशस्त्र कर दिया। उस समय देश में एक समस्या दिखाई पड़ी। या तो देश चिरकाल तक अंग्रेजों का गुलाम रहे, और नहीं तो ऐसी शक्ति का आविष्कार हो, जिसके द्वारा बिना अस्त्र-संकट का सामना किये देश को मुक्त किया जा सके। परिस्थितिवश जब ऐसी आवश्यकता महसूस की गयी, तब

अहिंसात्मक प्रतिकार और सत्याग्रह का आविष्कार हुआ। महात्मा गाधी उसके निमित्त बने । मैंने कई वार यह वात कही है कि यदि महात्मा गाधी का आविर्भाव न होता, तो उनके स्थान पर अन्य किसीका आविर्भाव होता। किन्तु, इस शक्ति के आविर्भाव से ही ऐसा होता। आवश्यकता थी इस शक्ति के ही आविर्भाव की, क्योकि परिस्थिति और काल की यही माँग थी। लोगो ने देखा कि अहिंसा एक विराट् शक्ति है, जिसकी सहायता से उतनी वडी साम्राज्य-वादी शक्ति का विरोध कर सकना सम्भव हुआ और उसे हारकर चला जाना पडा। इससे एक चमत्कार यह प्रकट हुआ कि अत्याचारी और अत्याचार-प्रताडितो के बीच प्रेमपूर्ण सम्वन्ध स्थापित हुए। अत्याचारी अत्याचारी नही रहा। दोनो ही परस्पर मित्र वन गये। इस प्रकार की शक्ति का आविर्भाव हुआ और उसके द्वारा हमने स्वाधीनता प्राप्त की। स्वाधीनता के लिए अनेक देशो ने अनेक प्रकार से प्रयत्न किये, किन्तु भारत ने यह नया आविष्कार किया। इससे मानव-हृदय मे नवीन शक्ति का आविर्भाव हुआ। स्वाधीनता-प्राप्ति के वाद अव भारत की आर्थिक स्वाधीनता, दरिद्रता-निवारण और समता-स्थापना की समस्या उपस्थित है। इसीलिए आर्थिक क्षेत्र में तदुपयोगी शक्ति के आविष्कार की आवश्यकता आ पडी है और उसी शक्ति का आवि-र्भाव हो रहा है।" इस शक्ति का नाम है 'सर्वोदय'। सर्वोदय की स्थापना के लिए जिस वुनियादी शक्ति की आवश्यकता है, उसका विकास आज सन्त विनोवा के माध्यम से हो रहा है। यहाँ विनोवाजी निमित्त-मात्र है। इसलिए यह कहना ठीक नही होगा कि जो वात अभी तक नही हुई है, वह भविष्य मे कैसे होगी ?

इस विषय की एक अन्य प्रकार से भी व्याख्या की जा सकती है। जव-जव इस प्रकार की आत्मिक शक्ति के आविर्भाव की आवश्यकता होती है, तव-तव भगवान् एक मत्र के रूप मे उसे प्रदान कर देता है। विनोवाजी कहते है कि म का अवतार ही वास्तविक अवतार है। जिस मनुष्य-विशेष के माध्यम से यह म सफल होता है, उसे हम लोग अवतार मान लेते है, किन्तु वास्तव मे वह निमित्तमात्र का ही अवतार होता है।

जव यह समझा गया कि देश के सभी दु खो का मूल पराधीनता है और केवल छोटे-छोटे दु खो को दूर करने से काम नही चलेगा, तव दादाभाई नौरोजी

ने स्वराज्य का मत्र देश के समक्ष उपस्थित किया। तब से इस मत्र की भावना होती आ रही थी। किन्तु, एक बहुत ही शक्तिशाली जाति इस देश पर शासन करती थी। शासकों के हाथ मे शस्त्रास्त्र थे और इस देश को उन लोगो ने नि शस्त्र कर रखा था। इसीलिए महात्मा गाधी ने सामुदायिक अहिंसा के आधार पर "भारत छोडो" मत्र का उच्चारण किया। वह विराट् जन-आदोलन मे परिणत हुआ। सरकार ने उसके दमन के लिए यथासम्भव चेष्टा की। ऐसा लगता था कि आदोलन का दमन हो रहा है, किन्तु वास्तव मे वैसा नही हुआ। मत्र का कभी भी दमन नही होता। उसके पीछे दर्शन रहता है—शक्ति रहती है। वह सूर्य-किरण की भाति सर्वत्र पहुँचता है और सबके हृदय मे स्थान-लाभ करता है। इस मामले मे भी यही हुआ। इस महान् मत्रोच्चारण के पाँच वर्षो के बाद ही अग्रेजो को भारत छोडकर चला जाना पडा। म सफल हुआ और हमने स्वराज प्राप्त किया। एक मत्र की पूर्ति हुई और भगवान् ने हम लोगो को एक दूसरा मत्र प्रदान किया। समाज का काम इसी प्रकार चलता रहता है।

इस प्रकार के मत्र के तत्त्व की व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते है: "परमेश्वर एक परम तत्त्व है। इस तत्त्व से ही मत्र स्फुरित होता है। मत्र से महापुरुष प्रेरणा ग्रहण करते है। महापुरुषो के विचार समाज को चेतना प्रदान करते है। परमेश्वर प्रेरणा का क्षेत्र और मत्र का मूल होता है। मत्र के रूप मे परम तत्त्व प्रकट होता है। एक अवतार का काम पूरा होने पर दूसरा अवतार प्रकट होता है। उससे ससार सब समय तेजपूर्ण रहता है। यह ईश्वर की लीला है। रामचद्र के समय एक मत्र आया था। श्रीकृष्ण के समय दूसरा मत्र आया। बुद्ध के समय तीसरा मत्र आया। इसी प्रकार एक के बाद एक मत्र आते गये और ससार उन्नति करता गया।

"एक मत्र दूसरे मत्र को जन्म देकर चला जाता है। इस प्रकार बीज से फल उत्पन्न होता है और फल से बीज। एक बीज लुप्त हो जाता है, दूसरा बीज अकुरित होता है। इसी प्रकार एक मत्र पूरा होता है, तब अन्य मत्र का आविर्भाव होता है। ससार मे किसी भी वस्तु का नाश नहीं होता, यह विज्ञान की मान्यता है। स्वराज मत्ररूपी अवतार की पूर्ति हो गयी, तब महात्मा गाधी ने एक और मत्र देश को प्रदान किया। उन्होने इस मत्र को पहले से ही तैयार कर रखा था। इसका नाम है 'सर्वोदय'। इस मत्र का बीज स्वराज-

से उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि अपना स्वरूप इतना छोटा नही होता, वह व्यापक है।" आज भूदान-यज्ञ के माध्यम से भारतवासियो को अपने आत्म-ज्ञान का विस्तार करने की शिक्षा दी जा रही है और इसीलिए जहाँ खूब लगन से काम किया जाता है, वहाँ लोग बहुत शीघ्र भूदान-यज्ञ को हृदय से ग्रहण कर लेते हैं। अवश्य ही इसके पीछे महात्मा गाधी की शिक्षा की महान् पृष्ठ-भूमि है। वास्तविक रूप मे भूदान-यज्ञ का आधार महात्मा गाधी द्वारा प्रदत्त शिक्षा ही है।

भारत के आत्मज्ञान-विकास के सम्बन्ध मे विनोबाजी ने और भी कहा है : "किन्तु, मेरा विश्वास है कि हमारे हृदय मे वैसी कुछ खराबी नही है। यदि वैसा होता, तो भूदान-यज्ञ का इतना व्यापक प्रचार न होता। इसी-लिए मै सोचता हूँ कि भारत का हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल है। किन्तु, हमारा आत्मज्ञान सकुचित हो गया है। बच्चो का हृदय स्वच्छ और निर्मल होता है, किन्तु उनमे ज्ञान नही होता। इसीलिए वे दूसरो को कष्ट दे सकते है। एक कुत्ता दूसरे कुत्ते से भोजन छीन लेता है, क्योकि उसका आत्मज्ञान बहुत सकुचित होता है। उसे अपने शरीर का तो ज्ञान रहता है, परन्तु आत्मा का नही। बच्चो की भी यही अवस्था रहती है। केवल खाने की बात बच्चे जानते है, क्योकि उनका हृदय निर्मल तो रहता है, पर आत्मा का ज्ञान उन्हे नही होता। जहाँ आत्मा का ज्ञान उन्हे सिखा दिया जाता है, वहाँ वे बहुत जल्दी समझ जाते है। मैने देखा है कि जिन बच्चो को अपने माता-पिता से आत्मज्ञान की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि दूसरो को चीज देनी चाहिए, वे दूसरो को कुछ देते समय आनन्द का अनुभव करते है। बच्चा जन्म-ग्रहण करने के बाद अपने शरीर तक ही सीमाबद्ध रहता है। शरीर से भी बडी कोई चीज है, यह वह नही सोच पाता, क्योकि उसे आत्मा का ज्ञान नही होता। किन्तु, जभी उसे आत्मज्ञान की शिक्षा दे दी जाती है, तभी वह उसे समझ जाता है। उसे केवल सस्कार की आवश्यकता पडती है। इसी प्रकार भारत का हृदय शुद्ध और निर्मल तो है, किन्तु उसे सस्कार की आवश्यकता है। भारतवासियो को यह समझाने की आवश्यकता है कि 'भाई, तुमने अपने को अपने शरीर तक ही सीमित रखा है, यह गलत है। सम्पूर्ण समाज आत्मा का व्यापक रूप है—अपनी ही सन्तति है।' यह बात समझाने से लोग समझ रहे हैं, ऐसा मेरा अनुभव है।"

भारतवासियों के आत्मज्ञान के सम्बन्ध में विनोबाजी के जिन दो प्रवचनों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमे असामजस्य प्रतीत हो सकता है। वह यह है। विनोबाजी ने एक स्थान पर कहा है "भारत मे वेदान्त का कम प्रचार नही हुआ है। आत्मा सर्वव्यापक है, यह बात तो इस देश के सभी लोग कहते हैं। केवल मनुष्यो मे ही नही, सभी प्राणियो मे एक आत्मा विराजमान है। किन्तु वह शाब्दिक ज्ञान-मात्र है। इसीलिए वह हृदय पर असर नही कर पाता।" किन्तु, अन्यत्र उन्होने कहा है - "हमारा आत्मज्ञान सकुचित हो गया है, किन्तु भारत का हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल है। इसीलिए भूदान-यज्ञ के विचार के माध्यम से जनसाधारण को आत्मज्ञान की शिक्षा देने-मात्र से ही उनके हृदय पर इतनी जल्दी असर हो रहा है।" जरा गम्भीरतापूर्वक सोचने से इस बात का पता चल जायगा कि इनमे असामजस्य नही है। आत्मा सर्वव्यापक है—इसकी शिक्षा देना या इसका ज्ञान होना एक बात है और इस आदर्श का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रयोग करने की प्रक्रिया और कौशल की शिक्षा देना दूसरी बात। माँ यदि अपने बच्चे को यह शिक्षा दे भी कि केवल मनुष्यो मे ही नही, बल्कि प्राणिमात्र में एक ही आत्मा विराजमान है, तब भी शिशु दूसरे प्राणियो को कष्ट देने मे दुविधा का अनुभव नही करेगा। किन्तु माँ यदि बच्चे को यह शिक्षा दे कि अपनी चीज दूसरे को देने के बाद भोजन करना चाहिए, तब वह वैसा ही आचरण करने लगेगा। साधारण तौर पर किसी महान् आध्यात्मिक आदर्श की शिक्षा देने पर मनुष्य उसे बोलना और मन में अनुभव करना तो सीख जायगा, पर हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल रहने पर भी वह उसे जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र मे प्रयुक्त करना सहज ही नही सीख पायेगा। आत्मज्ञान के महान् आदर्श का प्रयोग किस प्रकार जीवन मे किया जाय, इसकी शिक्षा देना ही आत्मज्ञान की शिक्षा देने का वास्तविक अर्थ है। इसीलिए भारत मे वेदान्त का काफी प्रचार होने और भारत का हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल रहने के बावजूद वेदान्त का ज्ञान सात्त्विक ज्ञान ही बना रहा। किन्तु जब भूदान-यज्ञ की विचारधारा के माध्यम से आत्मज्ञान की शिक्षा प्रचारित होने लगी, तब भारत उसे इतनी जल्दी और सहज भाव से अपने व्यावहारिक जीवन में ग्रहण कर रहा है।

क्रान्ति की अभिव्यक्ति के क्रम

तीन क्रमो से 'विप्लव' या 'क्रांति' की अभिव्यक्ति होती है। प्रथम चिन्तन से, द्वितीय वचन से और तृतीय आचरण या कार्य से। तीन पर्यायो से क्रांति की परिणति भी होती है। प्रथमत विशिष्ट या विशेष-विशेष लोगो के जीवन मे, द्वितीयत जन-समुदाय के जीवन मे और अत मे समाज मे दृढता-पूर्वक प्रतिष्ठापना मे। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन और अत मे समाज-परिवर्तन होता है। विनोवाजी ने अपने एक भाषण मे यह बात अनुपम ढग से कही है "जो कोई भी क्राति हो, पहले चिन्तन मे आती है, फिर वह वचन मे प्रकाशित होती है—सकल्प के रूप मे आती है। इसके बाद कार्य-क्षेत्र मे उसका विकास होता है। यह काम भी पहले व्यक्तिगत रहता है, फिर सामूहिक होता हे। इसके वाद उस पर सारे समाज की मुहर लगती है। इसी प्रकार धर्म-विचार पहले किसी व्यक्ति के चित्त मे अकुरित होता है और वाद मे सारे समाज मे स्मृति या विधान के रूप मे स्थायी रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तदुपरान्त उसे रुढ आचार या धर्मनिष्ठा के रूप मे माना जाता है। मै एक उदाहरण दे रहा हूँ। आज चोरी करना अन्याय माना जाता है। सारा समाज और विधान उसके विरुद्ध है। किन्तु, चोरी के विरुद्ध विधान है, इसीलिए लोग चोरी नही करते, ऐसा कहना ठीक नही है। चोरी करना मानवता के विरुद्ध है, इसे मानव की विवेक-बुद्धि ने मान लिया हे। इसीलिए इस भावना ने धर्मस्मृति और कानून, दोनो मे स्थान पा लिया है। आरम्भ मे यह विचारधारा नही थी, किन्तु जैसे-जैसे नीति-विचार वढा, वैसे-वैसे निष्ठा भी वढी। मैने सामाजिक निष्ठा का एक उदाहरण दिया। इसी प्रकार अपनी जरूरत के अतिरिक्त जमीन नही रखनी चाहिए, विशेष सचय करना उचित नही है—अधिक सग्रह करना चोरी करने-जैसा ही पाप है, यह धर्म-विचार हमे ग्रहण करना पडेगा। यह विचार कोई नया नही हे—बहुत पुराना है। महर्षि लोग अपने जीवन मे इसका प्रयोग करते थे। व्यक्तिगत रूप से इस विचार का अपने जीवन मे प्रयोग करनेवाले महात्मा और साधु-सन्त हुए है। किन्तु, जनसाधारण मे चोरी के विरुद्ध जैसा मनोभाव है, सग्रह करने के विरुद्ध वैसा दृढ और तीव्र मनोभाव नही है। वैसे मनोभाव

की अभी सृष्टि करनी होगी। इसीलिए मैने इस आदोलन को 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' नाम दिया है, क्योंकि इसके द्वारा एक विचारधारा को सामाजिक क्षेत्र मे प्रतिष्ठित करना होगा। असग्रह और अपरिग्रह केवल ऋषियो और साधु-सन्यासियो के लिए आचरणीय है, ऐसा ही अब तक माना गया है। किन्तु, यह साधारण लोगो का भी, गृहस्थो का भी, जीवन का मूलाधार होना चाहिए। ऐसा न होने से शोषण का अत नही होगा। इस धर्मविचार को सामाजिक निष्ठा के रूप मे प्रतिष्ठित करना होगा। इसका आरम्भ विचार-क्राति मे और परिणति सामाजिक क्राति में होगी।" इस प्रकार शातिपूर्ण ढग से सद्भावना जाग्रत कर क्राति की सृष्टि करना भूदान-यज्ञ-आदोलन का चरम लक्ष्य है। वे कहते है "मैं न्याय और प्रेम, दोनो को एकत्र करना चाहता हूँ। इसे सूर्य-चन्द्र कह लीजिये। दोनो ही ईश्वर के दो नेत्र है। दोनो चक्षुओ के एक साथ मिलने से ही सम्पूर्ण तेज प्रकट होगा।"

भूदान-यज्ञ का मूल तत्त्व

यही भूदान-यज्ञ का मूलभूत सिद्धान्त है। सर्वोदय-विचार का मूल भी यही है। यह कोई खड-विचार भी नही है। यह जीवन का समग्र महान् सिद्धान्त है और जीवन मे इसके प्रयोग के उपाय है। मोटे तौर पर, वैदिक धर्म का सार इसीमें निहित है और यही सूत्ररूप में 'ईशावास्य' के मत्रो मे सचित है। "ईशावास्यमिद सर्व यत्किञ्च जगत्या जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्।" ससार में जो कुछ है, सब ईश्वरमय है—सब ईश्वर का है। वही एकमात्र स्वामी है। यह समझकर हमे सब कुछ उन्हे अर्पित कर देना चाहिए और जो कुछ उनसे मिले, उसे उनका प्रसाद मानकर, उसीसे सतुष्ट होना चाहिए। यहाँ मेरा कुछ नही है, सब कुछ भगवान् का है—यह भावना जीवन मे प्रतिष्ठित करनी पडेगी। जो व्यक्ति यह समझकर जीवन-यापन करेगा, उसे किसीके धन की अभिलाषा नही रहेगी। ईश्वर को समर्पण, उनसे जो कुछ प्राप्त हो, उसे प्रसाद मानकर ग्रहण करना, ईर्ष्या न करना और धन की लालसा न रखना—यह एक स्वय सम्पूर्ण धर्मविचार है और यही साधना का उपाय है। इसीको सामुदायिक धर्म के रूप में, समाज-निष्ठा के रूप मे, ग्रहण करना होगा। हमारे देश मे अनेक साधु-सन्तो ने

जन्म लिया है। साधुओ ने ध्यान-जप आदि की शिक्षा दी है, किन्तु सामूहिक धर्म क्या है, इसकी उन्होने शिक्षा नही दी। इस सम्बन्ध मे प्रजा-समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायणजी ने जो कहा है, वह यहाँ उल्लेखनीय है। "आप लोग यह प्रश्न कर सकते हैं—'आप जिस विषय को उठा रहे हैं, उसके विषय में तो ऋषि-मुनियो ने बहुत-कुछ किया, किन्तु उससे समाज मे परिवर्तन क्यो नही हुआ?' इसके उत्तर में मैं कहूँगा। उनकी असफलता का कारण यह है कि उनका सिद्धान्त एकागी था। उन लोगो ने केवल व्यक्ति पर मनोयोग दिया था। वे समझते थे कि जो कुछ भी खराबियाँ हैं, वे सब व्यक्ति ने ही है। बुद्ध का निदान यह है कि तृष्णा ही सब दु खो की जड है। एक तरह से यह सत्य है। किन्तु, एक बच्चे का राजा के घर जन्म हो और एक का गरीब के घर में—इसका कारण तो तृष्णा नही है। इसी प्रकार हम समाजवादी समाज के परिवर्तन पर विशेष जोर देते है। ऋषि-मुनि समझते थे कि सब कुछ अत -करण मे ही है और हम ऐसा समझते है कि बाहर ही सब कुछ है। मेरे विचार मे ये दोनो ही विचार एकागी होने के कारण दोषी है। मैं चाहता हूँ कि इन दोनो का समन्वय हो। यदि इनमे से किसी एक को हम छोड दे, तो उत्तम समाज-रचना नही की जा सकेगी। दोनो को ग्रहण करने से ही अच्छे समाज की प्रतिष्ठा सम्भव हो सकती है।"

महात्मा गाधी ने देश को सामुदायिक धर्म की शिक्षा देने का व्रत लिया था। व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन एक और अविभाज्य है, यह समझा-कर उन्होने राजनीतिक क्षेत्र मे सत्य और अहिसा के प्रयोग की शिक्षा दी और अहिसक समाज-रचना के उद्देश्य से देश को तैयार करने के लिए रचनात्मक कार्यो की व्यवस्था की। जीवन के एक क्षेत्र मे प्रतिष्ठित होने पर अहिसा स्वयमेव अन्यान्य क्षेत्रो में प्रसारित हो जाती है। देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक क्षेत्र मे अहिसा का प्रयोग हुआ था। किन्तु, उस समय की परिस्थिति मे वह अहिसा दुर्बलो की—लाचारो की अहिसा थी। सलिए राजनीतिक क्षेत्र मे अहिमा प्रतिष्ठित नही हुई। आज राजनीतिक क्षेत्र मे उसके प्रयोग के लिए समय नही है। देश और काल की परिस्थिति के प्रयोजन को देखते हुए आर्थिक और सामाजिक क्षे ो मे अहिसा का प्रयोग करने का समय आ गया है। गाधीजी की अनुपस्थिति मे उस महान् काम को भगवान् ने विनोबाजी के हाथ मे सौपा है।

अभी प्रश्न यही है कि इस सामुदायिक धर्म की प्रतिष्ठा करने का उपाय क्या है? आज जन-साधारण द्वारा निर्वाचित सरकार स्थापित है। क्या उसके माध्यम से इस महान् उद्देश्य की पूर्ति सम्भव है? पहले ही कहा गया है कि इस धर्म को समाज मे प्रतिष्ठित करने के लिए विचार और आचार की महान् क्रांति की सृष्टि करनी होगी। राजसत्ता विचार-विप्लव या निष्ठा-विप्लव करने मे अक्षम है। राजसत्ता केवल अनुसरण करनेवाली हो सकती है—वह समाज की पथ-प्रदर्शिका नही हो सकती। किसी मौलिक भावधारा की सृष्टि वह नही कर सकती। जब किसी विचार को मनुष्य की विवेक-बुद्धि मान लेती है और उसके अनुसार आचरण होने लगता है, तभी कोई राष्ट्र विधान बनाकर और उस पर अपनी मुहर लगाकर उसे कानून का रूप दे सकता है—साथ ही, दडशक्ति के सहारे उसे सार्वजनिक रूप दे सकता है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी ने कहा है . "विचार-प्रचार तो नेताओ और विचार-प्रवर्तको का काम है। क्रातिकारी विचार जब लोग मान लेते है, तब सरकार को उसके प्रयोग की व्यवस्था करनी पडती है और यदि सरकार ऐसा नही करती है, तो उसे बदल दिया जाता है। 'शून्य' का जो मूल्य है, मै सरकार का वही मूल्य समझता हूँ। जनशक्ति के साथ सरकार की शक्ति मिलने से ही सरकार का मूल्य बढता है। जब विचार प्रचारित हो जाता है, तब उसके अनुकूल राज्य का गठन होता है। ऐसा न होने पर राज्यक्रान्ति हो जाती है। जब मार्क्स ने विचार-प्रवर्तन किया, तब लेनिन के नेतृत्व मे रूस मे क्रान्ति हो गयी। रूसो और वाल्टेयर द्वारा प्रवर्तित विचार-क्रांति ने फ्रास मे राज्यक्रान्ति करा दी। मेरा खयाल है कि हमारी विचार-धारा के आधार पर जनमत सगठित होने मात्र से सरकार उसे मान लेगी। यदि सरकार उसे नही मानेगी, तो उसे समाप्त होना पडेगा और सका मुझे दु ख नही होगा।"

सर्वोदय-प्रेमियों के कर्तव्य

कुछ लोगो ने विनोबाजी से पूछा था कि वे बाहर क्यो रहे और उन्होने राष्ट्र-सचालन का दायित्व क्यो नही ग्रहण किया? उसके उत्तर मे विनोबाजी ने एक सुन्दर उपमा देकर समझाया था कि उनका काम राज्यसत्ता के सहारे पूरा नही हो सकता। राष्ट्र को किस पथ पर चलना चाहिए, वह राष्ट्र को

दिखा देना और वह पथ ठीक कर देना ही उनका काम है। "वैलगाडी मे दो वैल जुते रहते है। मै यदि तीसरा वैल बनकर गाडी मे कधा लगाऊँ, तव क्या गाडी को विशेप सुविधा होगी ? उससे अच्छा तो यह होगा कि जिस रास्ते जाना है, उसीको ठीक कर दूँ। इससे गाडी का सर्वाधिक उपकार कर सकूँगा।" उन्होने राज्यसत्ता को 'दडशक्ति' नाम दिया है। विनोवाजी कहते है "आज हमारी जो सरकार है, उसके हाथ मे हमने 'दडशक्ति' सौप दी है। हिंसा इस 'दडशक्ति' का अश वन गयी है, फिर भी हम उसे हिंसा नही कहना चाहते है। हम उसे हिंसा से पृथक् एक श्रेणी मे रखना चाहते है। हम उसे हिंसाशक्ति से अलग 'दडशक्ति' कहना चाहते है, क्योकि सम्पूर्ण जनगण ने यह शक्ति सरकार के हाथ में सौप दी है। इसीलिए वह हिंसाशक्ति नही, वल्कि दडशक्ति है।"

राष्ट्र-नायकों की करुण अवस्था

विनोवाजी की धारणा है कि देश के कर्णधारो की अहिंसा मे आस्था है। उनका हृदय यह अनुभव करता है कि अहिंसा के अलावा समस्या के समाधान का और कोई मार्ग नही है। किन्तु, जव वे अपनी वुद्धि से चिन्तन करते है, तव वे अपने दायित्व का विवेचन करते हुए ऐसा अनुभव करते है कि अहिंसा पर निर्भर करने का साहस उनमे नही है। वुद्धि के निर्देश पर वे काम करते है। उनकी वुद्धि उन्हे कह देती है: "हम सेनाओ को नही हटा सकते। हम जिस जनता के प्रतिनिधि है, उसमे उतनी शक्ति नही है—विना सैनिक सहायता के चलने की उसमे योग्यता नही है। इसीलिए उसके प्रतिनिधि-स्वरूप हम अपना यह कर्तव्य समझते है कि हमे अपनी सेनाओ का सृजन, वृद्धि और सगठन करना चाहिए।" इस प्रकार उनका हृदय एक वात को मानता है, किन्तु उनकी यथार्थ स्थिति से प्रभावित वुद्धि उल्टी वात वता देती है। हृदय और वुद्धि के परस्पर विरोध की स्थिति मे उन्हे विवश होकर सैन्यवल का आश्रय ग्रहण करना पडता है। उनका हृदय रचनात्मक काम मे विश्वास करता है, किन्तु उनकी वुद्धि यह कहने का साहस नही करती कि चरखा या अन्य ग्राम्य शिल्प युद्ध-यत्र को मजवूत वना सकते है। यह उन लोगो का प्रपच नही है, वल्कि उनकी नितान्त करुण अवस्था है। विनोवाजी ने कहा है: "आत्म-निरी-

क्षण करते हुए मैं कहता हूँ कि जो लोग आज अधिकारी-पदो पर आसीन है, यदि उनके स्थान पर हम होते, तो वे लोग जो कुछ कर रहे है, उससे बहुत भिन्न हम कुछ कर लेते, ऐसी बात नही है। यह स्थान ही ऐसा है। ये जादू के आसन है। इन आसनो पर जो कोई बैठेगा, उस पर एक सकुचित, सीमाबद्ध, अस्वाभाविक और अस्वाधीन सीमा का दृष्टिकोण रखकर सोचने का भार आ पडेगा। जिसे मैंने अस्वाधीन नाम दिया है, उसी सीमाबद्ध स्थान मे असहाय अवस्था में रहकर, ससार स्रोत जिस दिशा मे बह रहा है, उसी दिशा में दृष्टि रखकर सोचने का भार आ पडेगा।" इस अवस्था मे त्राण पाने का उपाय क्या है? विनोबाजी ने कहा है कि देश के कर्णधार ऐसा कहते है कि "हम लोग जो काम कर रहे है, वह आप लोग न करे। इस काम में आप अपने को न उलझाये, बल्कि हम जो अभाव अनुभव कर रहे है, वह यदि आप लोग पूरा कर सकते है, तो करे।" विनोबाजी कहते है "इसी आशा मे वे लोग हमारी ओर देख रहे है। यह हम लोगो को अच्छी तरह समझना होगा और इस दृष्टि से मैं जिसे 'स्वतत्र लोकशक्ति' कहता हूँ, उसके निर्माण मे सबको आत्मार्पण करना पडेगा। वैसा करके ही हम राज्यशक्ति को वास्तविक सहायता पहुँचायेंगे और देश की समुचित सेवा करेंगे।"

दंड-निरपेक्ष जनशक्ति

यह 'स्वतत्र लोकशक्ति' क्या है? यह 'राज्यसत्ता' या 'दडशक्ति' नही है। यह दड-शक्ति से भिन्न है। इसके अतिरिक्त यह हिंसा-विरोधी है। विनोबाजी ने चाडील-सर्वोदय-सम्मेलन मे अपने प्रथम भाषण मे इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार प्रकट किये थे। पहले कहा गया है कि क्राति पहले चिन्तन मे उदित होती है और बाद मे कार्य में या रूढ आचरण मे परिणत होती है। इसके अतिरिक्त क्रातिमूलक आचरण पहले विशेष-विशेष व्यक्ति मे सीमाबद्ध रहता है और अत मे सम्पूर्ण समाज मे समाजनिष्ठा के रूप में प्रतिष्ठित होता है। अतएव क्राति की यह अन्तिम परिणति जब रूढ आचरण और सम्पूर्ण समाज में प्रतिष्ठा के रूप मे होती है, तब वही 'स्वतत्र लोकशक्ति' की अभिव्यक्ति कहलाती है। शाति और प्रेम के मार्ग से ही यह सम्भव है। यह समाज की मनस्तात्त्विक अवस्था-मात्र नहीं है। इसके अतिरिक्त रूढ सामाजिक

निष्ठामूलक आचरण में यह प्रकट होती है। ऐसी अवस्था मे सार्वजनिक रूप से इसका आचरण विधान या कानून पर निर्भर नही करता। शातिपूर्वक विचार-प्रचार करने से लोगो मे एक ऐसी मनोवृत्ति की सृष्टि होगी, जिसके फलस्वरूप कानून हो या नही, लोग विचार-बुद्धि की प्रेरणा से वैसा काम करेंगे—लोग जमीन का बँटवारा कर लेगे। इस प्रसग मे विनोबाजी कहते है : "माता क्या किसी कानून से बाध्य होकर बच्चे को दूध पिलाती है ?" इससे हम अहिंसक क्राति और जनशक्ति का स्वरूप समझ सकते है। हिंसा तो दूर की बात है, दडशक्ति का प्रयोग करने की भी आवश्यकता न रहे, समाज मे ऐसी परिस्थिति पैदा करनी होगी और इसमे सफलता प्राप्त करना सर्वोदय-प्रेमियो का ही काम है।" विनोबाजी कहते है : "यदि हम वैसा कर सके, तब हमे समझना चाहिए कि हमने अपना धर्म पहचान लिया है और तदनुसार आचरण करना सीख लिया है। यदि हम वैसा न कर सके और दडशक्ति के प्रयोग से जितनी सेवा सम्भव है, उतने तक ही अपने को सीमित रखे, तो हमसे विशेष कार्य की पूर्ति की जो आशा की जाती है, उसे हम पूरा नही कर सकेगे। इतना ही नही, हम बोझ-स्वरूप हो जायँगे, ऐसी सम्भावना है।"

समस्या के समाधान में कानून का स्थान

कानून के द्वारा भूमि-समस्या का समाधान करने के बारे मे विनोबाजी कहते है "मुझसे अनेक लोग प्रश्न करते है कि 'सरकार पर आपका प्रभाव है, ऐसा प्रतीत होता है। आप इसके लिए सरकार पर दबाव क्यो नही देते कि बिना मुआवजा के भूमि-वितरण के मार्ग को वह खोल दे। आप अपने प्रभाव का उपयोग इस दिशा मे क्यो नही करते ?' ऐसा प्रश्न अनेक लोगो ने मुझसे किया है। मै उनसे कहना चाहता हूँ कि भाई, कानून-निर्माण के मार्ग मे मै बाधा नही दे रहा हूँ। आप लोग जैसा चाहते है, उसी दिशा मे एक कदम और अग्रसर होने को मुझसे कहते है, तो मै कहता हूँ कि जिस पथ पर म बढ रहा हूँ, यदि इसमे मै पूर्ण सफलता यानी सोलह आने सफलता प्राप्त न कर बारह आने या आठ आने भी सफलता प्राप्त कर सका, तो इससे भी कानून-निर्माण मे मदद मिलेगी। पहली बात तो यह कि मै कानून-निर्माण के मार्ग मे बाधा नही दे रहा हूँ। दूसरी बात यह कि, मै कानून-निर्माण के लिए सुविधा दा

कर रहा हूँ। उसके लिए मैं अनुकूल वातावरण बना रहा हूँ, जिसमें कि कानून सहज ही बन सके। किन्तु, यदि इससे भी एक कदम आगे मैं आपकी ओर अग्रसर होऊँ और यह रटता रहूँ कि 'कानून के बिना यह काम नहीं होगा, कानून बनाना ही होगा' तो मैं स्वधर्मच्युत समझा जाऊंगा। वह मेरा धर्म नहीं है, बल्कि यह विश्वास करना मेरा धर्म है कि बिना कानून के सहारे के ही जनता के हृदय में ऐसी भावधारा की सृष्टि कर सकूंगा, जिसके फलस्वरूप कोई कानून न बनने पर भी लोग भूमि-वितरण कर लेंगे। माता किसी कानून के भय से सन्तान को दूध नहीं पिलाती। मनुष्य के हृदय में ऐसी एक शक्ति है, जिससे उसका जीवन समृद्ध होता है। प्रेम ही मनुष्य के जीवन का एकमात्र आधार है। प्रेम से ही उसका जन्म होता है, प्रेम के वातावरण में ही उसका लालन-पालन होता है और अंत में जब उसे इस संसार से जाना पड़ता है, तब वह एक प्रेमपूर्ण दृष्टि अपने चारों ओर डाल लेता है और यदि उसका प्रेमी उससे मिलने के लिए आया होता है, तो उसे देखकर सानन्द शरीर-त्याग कर इस संसार से चला जाता है। अतएव प्रेम की इस शक्ति को अनुभव करने पर भी उसे अधिक सामाजिक रूप में विकसित करने का साहस न रखकर यदि हम कानून के लिए चिल्लाते रहे, तो जनशक्ति का निर्माण कर राष्ट्र की सहायता करने की जो हमसे आशा की जाती है, वह विफल हो जायगी। इसीलिए मैं 'दंडशक्ति' से अलग 'जनशक्ति' का निर्माण करना चाहता हूँ। उसका निर्माण हमें करना ही होगा। हम 'जनशक्ति' की रचना करना चाहते हैं, वह 'दंडशक्ति' की विरोधिनी होगी, ऐसी बात भी नहीं है। किन्तु, इतना है कि यह शक्ति हिंसा के विरुद्ध होगी। यह जनशक्ति दंडशक्ति से भिन्न होगी।" कानून के सम्बन्ध में उन्होंने और भी कहा है : "कानून एक अलग चीज है। हिंसा और अहिंसा, दोनों से उसका सम्बन्ध है। कानून के पीछे भौतिक या नैतिक शक्ति रहनी चाहिए। मेरे काम के लिए एक ऐसे वातावरण की रचना हो रही है, जिससे सरकार को कानून बनाने में सुविधा होगी। उस नैतिक वातावरण के तैयार न होने पर भी यदि कानून बनाया जायगा, तो उसे अमल में लाने के लिए दंडशक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। यदि हमें अपने घर की समस्याओं के समाधान के लिए सैन्यबल के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है, तो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी क्या दशा होगी, जरा एक बार मनोयोगपूर्वक सोचिये तो।" वे और

भी कहते है • "लोग कानून वनाने की वात उठाते है, किन्तु वे नही जानते कि कानून तो पीछे से आयगा ही। मेरे कार्य से जो वातावरण वनेगा, उसकी सहायता के लिए सरकार को निश्चित रूप से कानून वनाना पडेगा। ऐसा न होने पर यह सरकार समाप्त हो जायगी, दूसरी सरकार आयगी।"

माना, कानून वने और जल्दी वने, किन्तु यदि इस काम मे सर्वोदय-कार्यकर्ता लग जायँगे, तो वे अपना काम न कर दूसरे का काम करनेवाले वन जायँगे। विनोवाजी कहते है : "हम लोगो का धर्म होगा ग्राम-ग्राम का भ्रमण करना और विचार पर विश्वास रखना। हम ऐसा नही कहेंगे : 'अरे, विचार सुनने-सुनाने से कहीं काम होता है ?' विचार अन्तर मे आने से ही काम होगा, क्योकि हमारा काम विचार के द्वारा ही सम्भव होगा।" दड-निरपेक्ष जिस विचारवोध के द्वारा जनशक्ति का काम पूरा होता है, उसे विनोवाजी ने 'विचारशासन' नाम दिया है।

जो लोग सर्वोदय के इस दृष्टिकोण को नही मानते है, उनकी वात मानकर यदि यह सोचे भी कि कानून के विना भूमि-समस्या का समाधान नहीं होगा—कानून वनाना ही पडेगा, तव भी क्या अभी उपयुक्त कानून का निर्माण सम्भव होगा ? पहले पश्चिम वगाल की ही वात लीजिये। पश्चिम वगाल मे जमीदारी-उन्मूलन कानून पास हो चुका है और जमीन का एक निर्दिष्ट अश उसके वर्तमान मालिक के हाथ में छोडकर वाकी जमीन सरकार द्वारा ग्रहण किये जाने का कानून वन चुका है। प० वगाल सरकार का अन्दाज है कि इस कानून के फलस्वरूप ४ लाख एकड आवाद और आवादी-योग्य भूमि भूमिहीनो के वीच वितरण के लिए सरकार के हाथ मे आयगी। किन्तु, इवर भूमि-मालिको ने कानून के कार्यान्वयन के मार्ग में वाधा पहुँचाने के उद्देश्य से निर्दिष्ट 'सीलिंग' से अधिक भूमि अनामी लोगो को हस्तातरित कर दी है। इस तरह के हस्तातरण को वन्द करने के लिए भी सरकार ने कानून वनाया है, फिर भी ऐसे हस्तातरण को वद करना सम्भव नही हुआ है। इस प्रकार इसमे सदेह मालूम होता है कि चार लाख एकड जमीन सरकार के हाथ मे आयगी। सरकार को भी यही आशका है। जो हो, यदि यह मान भी लिया जाय कि चार लाख एकड जमीन सरकार को भूमि-हीनो मे वितरण के लिए मिल जायगी, तो क्या होगा ? वर्तमान जनगणना के अनुसार प० वगाल मे खेती पर निर्भर रहनेवाले लोगो

की सख्या १ करोड साढे ४० लाख (१,४०,४६,०४०) है। इनमें से भूमिहीनो की सख्या ६० लाख से कुछ अधिक हे। इसके अतिरिक्त जिनके पास पाँच बीघा तक भूमि हे, उन्हे भी भूमिहीन ही समझा जाना चाहिए। तव ४ लाख एकड जमीन कितने लोगो मे बाँटी जा सकेगी ? प० वगाल की आवाद और आवादी-योग्य भूमि लगभग १ करोड ४६ लाख एकड है। सावारण तौर पर ऐसा अनुमान है कि जितनी जमीन हे, उसका पष्ठाश प्राप्त होने पर देशभर के भूमिहीनो को थोडी-थोडी जमीन दी जा सकेगी। इस हिसाव से प० वगाल मे सावारणत २५ लाख एकड भूमि चाहिए। इसलिए भूदान-यज्ञ प० वगाल से २५ लाख एकड भूमि की माँग करता है। कानून के बल पर क्या २५ लाख एकड भूमि सरकार के हाथ मे आना सम्भव है ? वर्तमान स्थिति में यह सम्भव नही दीखता। कुछ लोगो का ऐसा खयाल है कि यदि सरकार चाहे तो अभी ही कडा कानून वनाकर २५ लाख एकड भूमि अपने हाथ मे ले मकती है। यदि उनकी वात मान ली जाय, तो भी कम-से-कम ६००) प्रति एकड के हिसाव से मुआवजा देने के लिए भी १५० करोड रुपये की आवश्यकता पडेगी। इतने रुपये दे सकने की अवस्था मे सरकार आज नही है और निकट भविष्य मे भी नही रहेगी। सारे भारतवर्ष मे भूमिहीनो के लिए ५ करोट एकड भूमि की आवश्यकता है, यह पहले ही कहा जा चुका है। इस ५ करोड एकड भूमि की क्षति-पूर्ति दे सकना अभी सरकार के लिए सम्भव नही है। अव प्रश्न यह है कि विना क्षतिपूर्ति दिये अपने हाथ मे इतने वडे परिमाण मे जमीन लेने के लिए सरकार क्या अभी अथवा निकट भविष्य मे भारतीय सविवान मे सशोधन कर सकेगी ? वर्तमान समाज-व्यवस्था व्यक्तिगत सम्पत्ति-वोव के आवार पर प्रतिष्ठित है। जव तक समाज मे यह व्यक्तिगत स्वामित्व का भाव शिथिल नही होगा, तव तक सविधान मे उस आशय का सशोवन सम्भव नही होगा। भूदान-यज्ञ के फलस्वरूप 'भूमि मेरी नही है, सवै भूमि गोपाल की है',—इस विप्लवी विचारधारा का उत्तरोत्तर समाज मे जितना प्रसार हो रहा है, उतना ही सविधान की क्षतिपूर्ति देने सम्वन्धी कठोरता को समाप्त करने के पक्ष मे नैतिक वातावरण का निर्माण हो रहा है। भूदान-यज्ञ के आशिक रूप से भी सफल होने पर समाज मे एक विप्लवी विचारवारा इस व्यापक रूप से जाग्रत होगी कि विना क्षति-पूर्ति के ही भमि-सग्रह करने के लिए कानून का निर्माण

कर सकना अधिक आसान हो जायगा । क्रमश ऐसी परिस्थिति भी उत्पन्न हो सकती है, जिससे इस प्रकार के कानून का निर्माण अनिवार्य हो जाय । एकमात्र भूदान-यज्ञ, अर्थात् सत्य और अहिंसा पर आधृत विचार ही समाज मे ऐसी विचार-क्राति ला सकता है । अन्य किसी भी तरह यह सम्भव नही है । हिंसात्मक उपाय से भूमि छीन लेने के लिए प्रचार या आन्दोलन करने से भय की सृष्टि हो सकती है, किन्तु उससे चिन्तन-क्राति या विचार-क्राति नही आ सकती । कानून वनाने के लिए भय दिखाने या कानून वना देने से विचार-क्राति नही आती । इसीलिए कानून के द्वारा विना क्षतिपूर्ति के भूमि लेकर पुनर्वितरण की व्यवस्था करने के लिए भी भूदान-यज्ञ ही एकमात्र उपाय है, जो कानून के निर्माण के लिए उपयुक्त नैतिक वातावरण की सृष्टि करने मे समर्थ है ।

अतएव भूमि-समस्या के समाधान के लिए कानून और भूदान-यज्ञ की तुलना करने से यह पता चलता है कि

(१) सरकार कानून के बल पर जमीन छीन ले सकती है, किन्तु जमीन लेने की यह पद्धति मनुष्य के हृदय मे प्रेम की सृष्टि नही कर सकती ।

(२) भूदान-यज्ञ के द्वारा हृदय के साथ हृदय का मिलन होता है, किन्तु कानून से वह सम्भव नही है, वल्कि उससे कटुता बढती है ।

(३) भूदान-यज्ञ के द्वारा जनता की शक्ति जागेगी और वह समाज को सर्वात्मक क्राति के पथ पर अग्रसर करेगी । कानून यह शक्ति जगाने मे अक्षम है ।

श्री दादा धर्माधिकारी ने अपनी 'क्राति का अगला कदम' नामक पुस्तक मे कानून की इस अक्षमता के कई सुन्दर उदाहरण पेश किये है : "हम लोगो के सविधान के अनुसार भारत की प्रत्येक स्त्री को उतने ही अधिकार प्राप्त है, जितने विजयालक्ष्मी, राजकुमारी अमृतकौर और सुचेता कृपालानी को, अथवा सरोजिनी देवी को प्राप्त थे । किन्तु हम देखते क्या है ? देश की गृह-लक्ष्मियाँ घर की चौकठ पार कर बाहर नही आ सकती । और, बाहर आने पर भी घूँघट डाले रहती है अथवा बुर्का ओढे रहती है । कानून ने उन्हे अधिकार तो दिये है, पर वह शक्ति नही दे पाया है । अस्पृश्यो की भी वही स्थिति है । कागज-कलम तक ही अस्पृश्यता का अन्त सीमित है, वास्तविक जीवन मे अस्पृश्यता विद्यमान है। कानून मे मादक पदार्थो का सेवन निषिद्ध है, किन्तु मद्यपान चल रहा है ।"

(४) भूदान-यज्ञ समाज मे विचार-क्राति की सृष्टि करेगा। भूदान-यज्ञ का सर्वाधिक क्रातिकारी सुफल होगा स्वामित्व-विसर्जन। कानून के द्वारा जमीन छीनी जा सकने पर भी स्वामित्व-विसर्जन की मनोवृत्ति पैदा कर सकना सम्भव नही है, क्योकि कानून विधायक शक्तिहीन होता है। अधिक-से-अधिक यह कि कानून खराब कामो को रोक सकता है, किन्तु सत्प्रेरणा जाग्रत करने मे वह अक्षम है।

(५) भूदान-यज्ञ में धनी-गरीब का कोई भेद न रखते हुए सबसे जमीन ली जाती है, किन्तु कानून के द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक जमीन-मात्र ही ली जा सकती है।

भूदान-यज्ञ कानून नही चाहता। भूदान-यज्ञ चाहता है धनी लोगो को पडोसी-धर्म की दीक्षा देना, उनके आत्मज्ञान का विकास करना और उनकी आत्मा को परिवार की परिधि से बाहर ले जाना। धनी लोग, अपने परिवार से बाहर जो दरिद्र लोग है, उन्हे अपने परिवार का भागीदार समझना आरम्भ करे। उनके परिवार से बाहर जो भूमिहीन गरीब है, उन्हे वे अपना पुत्र माने और उन्हे उनका हिस्सा दे। माँ जब सन्तान को अपनी गोद मे उठाती है, तो उसे थोडा झुकना पडता है। आज धनी अपनी गरीब भूमिहीन सन्तान को गोद मे उठा ले। इसके लिए उन्हे झुकना पडेगा, अर्थात् अपनी जीवन-यात्रा के मान को उन्हे थोडा गिराना पडेगा। युग-परिवर्तन हो रहा है। धनी लोग युग के सकेत को समझ ले। आज गरीबो का भगवान् जाग गया है। इस युग मे जमीन धनी लोगो के हाथ से गरीबो के हाथ मे जायगी ही। प्रश्न यही है कि किस मार्ग से यह काम होगा? आज यदि प्रेम के मार्ग से, शाति के मार्ग मे धनी लोग अपनी जमीन भूमिहीन गरीबो को अर्पित कर दे ओर माँ सन्तान को स्तनपान कराते समय जो परम आनन्द अनुभव करती है, धनी लोग गरीबो के लिए भूमि देते समय उसी परम आनद का अनुभव करे, तो धनी लोगो के सम्मान और मर्यादा की रक्षा होगी। सिर्फ यही नही, उनका सम्मान और मर्यादा बढेगी और वे समाज के वास्तविक सेवक और नेता हो सकेगे। धनी लोगो के पास विद्या, बुद्धि और विचक्षणता है, किन्तु आज उनका समाजसेवा मे उपयोग नही हो रहा है। उनकी बुद्धि-वृत्ति और हृदय-वृत्ति त्यागपूर्ण हो—पवित्र हो। तभी वे

गणदेवता की अर्चना के श्रेष्ठ अर्घ्य होगे। युग-परिवर्तन होने पर उनके पास अधिक भूमि या सम्पत्ति नही रहेगी। आज जो राजा है, वे काल-प्रवाह के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कल राजा नही रहेगे। तव वे चिरकाल तक जन-मानस मे राजर्षि-स्वरूप विराजमान रहे। इससे उनका और सम्पूर्ण समाज का कल्याण होगा। आज गरीब भूमिहीन धूलि-धूसरित है। धनी लोगो के स्वेच्छया त्याग से गरीव लोग समाज मे सम्मानित स्थान प्राप्त करेगे। समाज मे द्रोहरहित उत्पादक श्रम की मर्यादा पुन प्रतिष्ठित होगी। धनी भी त्याग-धर्म से दीक्षित होकर लोक-हृदय मे सम्मानपूर्ण श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करेगे। यही भूदान-यज्ञ का मुख्य लक्ष्य और उद्देश्य है।

भारत की दरिद्रता का मूल और वर्तमान विश्व-परिस्थिति

समाज मे दरिद्रता क्यो है? समाज मे दरिद्रता, शोषण और आर्थिक विपमता का मूल कहाँ है? उपादानो के आधार, साधन और यत्रो पर उत्पादको का पूर्ण अधिकार और स्वामित्व रहना चाहिए, अन्यथा उत्पादक को उत्पादन-श्रम करने का अवसर खोना पडता है, अथवा उसे अपने श्रम से प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति से वचित रह जाना पडता है। उत्पादन का मौलिक साधन या क्षेत्र भूमि है। जो व्यक्ति अपने हाथ से जमीन आवाद करके फसल का उत्पादन करेगा, जमीन पर उसीका अधिकार रहना चाहिए। जो शिल्पी श्रमिक यत्रो की सहायता से माल-उत्पादन करता है, उसका भी उत्पादन-यत्र पर अधिकार रहना चाहिए। यही वास्तविक और न्याय-सगत नियम है। जव तक इस नियम का ठीक-ठीक पालन हो रहा था, तव तक सव लोग श्रम करते थे और सभी धन पैदा करते थे। कोई शोपित नही था। कोई दरिद्र नही था। और, कोई वहुत अधिक धनी भी नही था। जैसे ही इस नियम मे व्यतिक्रम होना शुरू हुआ, वैसे ही समाज मे शोपण, दरिद्रता और आर्थिक विषमता का सूत्रपात हुआ। अर्थात् उत्पादन का मौलिक साधन भूमि जव तक उत्पादक किसान के हाथ मे थी, तव तक किसान गरीव नही थे। जैसे ही वह अनुत्पादक उपभोक्ता के हाथ मे गयी, वैसे ही उत्पादक किसान असहाय, परमुखापेक्षी और परभाग्योपजीवी हो गये। ऐसी अवस्था मे किसान को शोपण और उत्पीडन के आगे झुकना पडा, और उसे वेकार और भूखा रहना पडा।

तब से वह अपने श्रम से उपार्जित सम्पत्ति का भोग करने से वंचित रहने लगा। केवल कुछ भाग उसे नसीब हुआ। उसके श्रम से उपार्जित सम्पत्ति का अधिकांश भाग धनी मालिकों के अधिकार में जाने लगा। उद्योग-धंधों में भी ऐसी ही अवस्था हुई। जब तक वस्त्र-निर्माण के लिए सूत-उत्पादन का यंत्र चरखा उत्पादक श्रमिक ग्रामीणों के हाथ में था, तब तक शोषण और दरिद्रता नहीं थी। जैसे ही वह चरखा बड़ी मशीन के रूप में अनुत्पादक धनी पूंजीपतियों के हाथ में चला गया, वैसे ही बेकारी, दरिद्रता और शोषण का आरम्भ शुरू हो गया। जब तक वस्त्र-उत्पादन का यंत्र करघा बुनकरों के हाथ में था, तब तक दरिद्रता और शोषण नहीं था, किन्तु जैसे करघा बड़ी मशीन के रूप में अनुत्पादक पूंजीपतियों के हाथ में गया, वैसे ही गाँवों में बेकारी और दरिद्रता का जन्म हुआ। जब तक तेल-उत्पादन का यंत्र घानी ग्रामीण तेली के हाथ में रही, तब तक दरिद्रता नहीं थी, किन्तु जैसे ही वह बड़ी तेल-कल के रूप में धनी कारखानेवालों के पास गयी, वैसे ही गाँव में बेकारी और दरिद्रता बढ़ी। जब तक धान कूटने का यंत्र ढेंकी ग्राम की विधवाओं और छोटे किसानों के पास रहकर उन्हें काम देती रही, तब तक गाँवों में इतना अभाव और असहायावस्था नहीं आयी, परन्तु जैसे ही ढेंकी छोटी-बड़ी चावल कूटने की मशीनों के रूप में अनुत्पादक बनियों और मध्यवित्तों के हाथ में गयी, वैसे ही विधवाओं की आँखों में उत्तप्त अश्रुजल दिखाई पड़ने लगे और गरीब किसानों के हृदय भग्न होने लगे। इसी तरह के और भी अनेक उदाहरण हैं।

हम लोगों के देश की स्थिति क्या है? अतीत काल में भारत की तरह समृद्धिशाली देश संसार में और कहीं नहीं था। भारत की धन-सम्पत्ति की बात सारे संसार में प्रसिद्ध थी। भारत के वैभव के लोभ से बाहर से दल बनाकर लुटेरे आते थे और आक्रमणकारी भी। उस समय देश में प्रायः सभी लोगों के पास जमीन थी। आज जमीन का जैसा असम वितरण है, उसका लेशमात्र भी उस समय नहीं था। उस समय जन-संख्या भी कम थी। किन्तु लोग केवल जमीन पर निर्भर नहीं रहते थे। इस देश में सैकड़ों गृह-उद्योग थे। अधिकांश लोग आधे समय में खेती करते थे और बाकी आधा समय एक या अ क उद्योग-धंधों में लगाते थे। भारत का वस्त्र-उद्योग सर्वाधिक उन्नत था। ढाका की मलमल की ख्याति सारे संसार में थी। वस्त्र के मामले में भारत केवल स्वाव-

लम्बी ही नही था, वल्कि यूरोप आदि सुदूरवर्ती देशो मे प्रचुर परिमाण मे वस्त्र का निर्यात भी करता था। इसके वाद अँग्रेज इस देश मे आये—अँग्रेजो का राज्य कायम हुआ। अँग्रेजो का शासन चलता रहा। अँग्रेजो के द्वारा विज्ञान की उन्नति हुई। अँग्रेजो के द्वारा पहली वार वडे कारखाने का निर्माण हुआ। अँग्रेज अपने देश में वडे कारखानो मे वस्त्रादि तैयार माल का उत्पादन करके भारत मे आयात करते रहे और अपनी राजशक्ति के प्रभाव और दवाव से वडे कारखानो मे तैयार सस्ता माल इस देश में वेचते रहे। भारत के लोग वडे कारखानो में तैयार चिकने-चुपडे और सस्ते माल को ग्रहण करने का लोभ सवरण न कर सके। इस प्रकार भारत में ग्रामोद्योगो का नाश आरम्भ हो गया। मनुष्य के जीवन मे भोजन के वाद दूसरा सवसे महत्त्वपूर्ण स्थान वस्त्र का है। इसलिए खाद्यान्नो के उत्पादन और क्रय-विक्रय के वाद वस्त्र का ही उत्पादन ओर क्रय-विक्रय मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और व्यापक प्रभावकारी हो मकता हे। भारत मे भी यही अवस्था थी। किन्तु, भारत ने इस विस्तृत गृह-उद्योग को खो दिया। साथ-साथ अन्य गृह-उद्योगो का भी नाश हुआ। जिन लोगो के हाथ से उद्योग निकल गये, वे या तो वेकार हो गये और नही तो उनके हाथ मे थोडी जमीन के अतिरिक्त और कुछ नही वचा। निरुपाय व्यक्तियो की वात तो अलग, अल्पवित्त के लोग भी अपनी जमीन की रक्षा न कर सके। पैदावार कम होने लगी, खाद्यान्नो का अभाव होने लगा, अकाल पडने लगा। उद्योग से जीविका अर्जित करनेवाले लोग, और दूसरे लोग भी, क्षुधाशाति के लिए अपनी जमीन वेच देने को वाध्य हुए। महाजन के कर्ज की अदायगी के कारण उनकी जमीन विक जाती—मालिक को मालगुजारी देने के चलते उनकी जमीन विक जाती। इस प्रकार लोगो के हाथ से पहले उद्योग चले गये ओर उसके वाद जमीन भी चली गयी। जमीन पड गयी महाजनो के हाथ मे, मालिको के हाथ मे, जो स्वय खेती नही करते और खेती करना नही जानते। इन्ही लोगो के हाथ मे देश की अधिकाश जमीन एकत्र होने लगी। देश मे लाखो उद्योगहीनो और करोडो भूमिहीनो की सृष्टि हुई। दूसरी ओर, जिन लोगो को गृह-उद्योगो से जीविका प्राप्त होती थी, उन्होने भी अपने उद्योग खो दिये, फलत भूमि पर उत्तरोत्तर भार वढता गया। देश की जनसख्या मे भी वृद्धि होने लगी। ग्रामोद्योगो के नष्ट होने से कार्य-क्षेत्र सकु-

चित हो गये और भूमि पर भार बढने लगा। अंग्रेजी राज के मध्य और अन्तिम काल की यह करुण कहानी है। क्रमश अन्यान्य पश्चिमी देशो मे मशीन-उद्योगो का जन्म और विकास हुआ। ग्रामोद्योगो की लाश पर मशीन-उद्योगो की नींव पडी। ग्रामोद्योगो की तुलना मे मशीन-उद्योग की गति, कार्यक्षमता और उत्पादन-शक्ति अधिक है। पाश्चात्य देश मानवतामूलक अर्थ-व्यवस्था भूल गये। योग्यता-वृद्धि की वासना के वे शिकार हो गये। इसके परिणामस्वरूप वहाँ एक नवीन अर्थनीति और अर्थशास्त्र का निर्माण हुआ, जो प्रतियोगिता-मूलक था। इस प्रकार एक प्रतियोगितामूलक अर्थ-व्यवस्था (Competitive Economy) का जन्म हुआ, क्योकि योग्यता और दक्षता बढाने के लिए प्रतियोगिता अति आवश्यक है। साथ ही प्रतियोगिता के विकास के लिए अबाध, अनियन्त्रित गतिविधि की आवश्यकता होती है। इसलिए उस नवीन अर्थ-व्यवस्था मे अबाध नीति (Laissez Faire) अपनायी गयी। अबाध गति मे प्रतियोगिता चलने के फलस्वरूप एक और नीति को जन्म दिया गया और उसे ग्रहण किया गया। वह नीति थी 'Survival of the fittest' अर्थात् जो सर्वाधिक योग्य होगा, वही जिन्दा रहेगा। जो सर्वाधिक योग्य होगा, उसीको जीवित रहने का, सुख-सम्पत्ति का उपभोग करने का अधिकार है। प्रतियोगिता मे न टिक सकनेवाले के नष्ट होने पर भी उस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नही है। इससे जीवन-स्तर ऊँचा उठाने का झोका आया। जीवन-स्तर ऊँचा उठा उन लोगो का, जो विद्वान्, बुद्धिमान्, योग्य और शक्ति-मान् थे। बाकी सब निम्नस्तर मे पडे रहे या और अधिक निम्नता मे उतर गये। इस अर्थ-व्यवस्था मे उन्हे कोई शिकायत नही है, बल्कि वे कहते है कि ऐसा ही होना चाहिए। ऐसा न होने से काम करने की प्रेरणा कैसे मिलेगी ? काम मे स्फूर्ति कैसे आयगी ? धीरे-धीरे इसका समस्त ससार मे प्रसार हो गया। भारत मे भी यह नवीन अर्थ-विज्ञान और अर्थशास्त्र लाया गया। भारत को इसने दबोच रखा है। भारत मे ग्रामोद्योगो को नष्ट करने का प्रतियोगितामूलक अर्थशास्त्र तैयार किया गया और भारत ने इसे ग्रहण कर अपने पुनरुत्थान का पथ अवरुद्ध कर लिया। इन सबका आगे चलकर यह फल हुआ कि एक शोषक श्रेणी और दूसरी शोषित श्रेणी का प्रादुर्भाव हुआ। शोषण देश तक ही सीमाबद्ध नही रहा। विदेशी लोगो ने भी इस शोषण में योगदान

किया। मालिक-मजदूर के बीच, देश-देश के बीच सघर्ष और विरोव का आरम्भ हुआ।

ग्रामोद्योगमूलक उत्पादन-व्यवस्था में उत्पादक ग्राम मे या उसके आस-पास के ग्राम मे उपयोग के लिए कच्चा सामान पैदा किया जाता है। उसमें उत्पादित वस्तुओ के पारस्परिक विनिमय की प्रवानता रहती है। उसमे अर्थ-व्यवहार का प्रयोजन वहुत कम होता है। दूसरी ओर, केन्द्रित मशीन-उद्योग मे दूरवर्ती क्षेत्रो को या विदेशो को चालान और बिक्री करने के लिए उत्पादन किया जाता है। इसके लिए अर्थ की आवश्यकता पडती है। केन्द्रित उद्योग के लिए आवश्यक मशीनो के उत्पादन और केन्द्रित उद्योग की स्थापना तथा सचालन के लिए विपुल अर्थ की आवश्यकता पडती है। अत अर्थ का आदान-प्रदान केन्द्रित उद्योग-व्यवस्था का अभिन्न अश है। इसलिए केन्द्रित उद्योग-व्यवस्था के साथ पैसे का अर्थशास्त्र, (Money Economy) उठ खडा हुआ। अतएव अर्थलोभ क्रमश समाज पर छा गया। समाज ने मानवता, एव मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवाली वस्तुओ की अपेक्षा अर्थ को अधिक महत्त्व देना सीखा। केन्द्रित उद्योग मे उत्पादन के लिए कच्चा माल और उत्पादित वस्तुओ की बिक्री के लिए व्यापक क्षेत्र चाहिए। इसलिए विभिन्न जातियो और देशो के बीच प्रतियोगिता और सघर्ष होने लगा। परिणामस्वरूप युद्ध होने लगे। पहले व्यक्तिगत, वशगत और समुदायगत आधिपत्य की इच्छा ही राज्य-प्रतिष्ठापना, राज्य-अधिकार, और राज्य-विस्तार का कारण होती थी। हाँ, मध्ययुग मे धर्मोन्माद युद्ध छिडने या राज्य-विस्तार का कारण होता था। देश की अर्थ-व्यवस्था के साथ उसका कोई सम्वन्ध नही रहता था। अव उसमे आमूल परिवर्तन हुआ। 'दूसरे देश को कच्चे माल के उत्पादन का क्षेत्र वनाना चाहिए', दूसरे देश को अपने देश के वडे कारखानो मे उत्पादित माल की बिक्री के लिए वाजार वनाना चाहिए', इन भावनाओ ने दूसरे देशो को अपने अधीन रखने या दूसरे देशो पर आधिपत्य जमाने की लालसा पैदा की। यही युद्ध छिडने का प्रधान कारण वन गया। इसके अतिरिक्त पहले एक राज्य का राजा या पराक्रमी व्यक्ति जव दूसरे राज्य पर आक्रमण करता था या विजय प्राप्त करता था, तव वहाँ अपना राज कायम करता था। इस विजय से विजयी राजा के देश के जन-सावारण का कोई विशेष स्वार्थ सिद्ध

नही होता था। पराजित देश की जनता के स्वार्थों को भी इससे कुछ विशेष क्षति नही पहुँचती थी। आज इसके ठीक विपरीत वात है। आजकल युद्ध छिडने या राज्य-अधिकार का प्रधान कारण आर्थिक है। एक देश दूसरे देश का आर्थिक शोषण करेगा। इसीलिए अव दो राज्यो के वीच युद्ध छिडने मे दोनो राज्यो के जन-साधारण के स्वार्थ का प्रश्न भी निहित रहता है। अतएव एक देश के जनसाधारण का स्वार्थ दूसरे देश के जन-साधारण के स्वार्थ के विरुद्ध हो जाता है। उन्नत विज्ञान ने जिस प्रकार उत्पादन-यत्रो की शक्ति और दक्षता वढायी, उसी प्रकार सहारक अस्त्रो की भी शक्ति वढायी। उत्तरोत्तर अधिकाधिक उन्नत और शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रो का आविष्कार होने लगा। इस प्रकार विज्ञान आज ऐटम वम, हाइड्रोजन वम और राकेट तक पहुँच गया है। आज सहारक अस्त्रो पर नियत्रण की क्षमता मनुष्य मे नही है। वे अस्त्र अत्यधिक हिंसा के स्तर पर आ पहुँचे है। सम्पूर्ण मानव जाति को समाप्त कर देने के लिए उद्यत है। इसके अलावा यदि आज युद्ध छिडे, तो दो देशो तक ही वह सीमित नही रहेगा, क्योकि आर्थिक क्षेत्र मे गुटो की सृष्टि हो गयी है। अभी युद्ध छिडने से जो अवस्था उत्पन्न हो सकती है, उसका एक चित्र विनोवाजी ने विजयवाडा के अपने प्रवचन के क्रम मे विनोदपूर्वक प्रस्तुत किया है। उन्होने कहा "प्राचीन काल मे कुश्ती होती थी। उसके वाद युद्ध का युग आया। पलासी के युद्ध मे एक छोटे मैदान के एक ओर भारतीय सेना और दूसरी ओर अँग्रेजी सेना खडी हुई। उस युद्ध मे जनता को भी कुछ क्षति पहुँची थी, पर एक सीमा के भीतर। उससे स्त्रियो, वालको, वृद्धो, रोगियो या अन्य किसी गैर-सैनिक को कोई क्षति नही पहुँची। किन्तु, आज एक देश के दूसरे देश के विरुद्ध खडे होने पर भीषण युद्ध होता है। यदि कल घोषणा हो जाय कि रूस और अमेरिका के वीच युद्ध छिड गया है, तो रूस के पक्षवाले भी दस-वीस देश खडे हो जायँगे और अमेरिका के पक्ष के भी दस-वीस देश। फलत एक भीषण युद्ध छिड जायगा। तव इस पक्ष के पुरुषो का उस पक्ष के पुरुषो से युद्ध होगा। इधर की स्त्रियो के साथ उधर की स्त्रियो का विवाद उठ खडा होगा। यहाँ के वैलो का वहाँ के वैलो से युद्ध होगा और यहाँ के गधो की वहाँ के गधो से लडाई होगी। यहाँ के पेडो का वहाँ के पेडो से झगडा होगा। यहाँ की मिलो का वहाँ की मिलो से झगडा होगा और यदि वम गिराया गया,

तो गवो, घोडो, मिलो, स्त्रियो, सवका विनाश होगा।" ऐसी अवस्था मे सारी मनुष्य जाति आज विनाश के मुख मे पडी है। फलत जो लोग हिंसा पर विश्वास करते है और यह समझकर कि हिंसा से ससार की समस्याओ का समाधान होगा, अस्त्र-शस्त्र वढा रहे है, उनकी अवस्था आज दूसरी है। विनोवाजी कहते है . "अव वे विचलित हो गये है। हिंसा के द्वारा समस्या का समाधान होगा या नही, यह वे नही समझ पा रहे है।" वुल्गानिन भारत का भ्रमण करके गये है। उस समय यदि कोई उन्हे 'मार्शल वुल्गानिन' कहता था, तो उन्हे खुशी नही होती थी। वे 'मार्शल' तो है, पर 'मार्शल' पुकारा जाना उन्हे अच्छा क्यो नही लगता था ? विनोवाजी कहते है "मार्शल पुकारे जाने से उन्हे लज्जा का वोध होता है, यह एक वहुत ही लाभदायक वात है। ससार मे सवसे अधिक हिंसा-शक्ति जिनके हाथ मे है, वे आज शाति चाहते है।" तदुपरान्त वुल्गानिन इग्लैण्ड गये। वहाँ उन्होने जो सव वातें कही, उनके सम्वन्ध मे विनोवाजी कहते है "उन्होने जो कुछ कहा है, उसका अर्थ यही है कि हिंसा म उन्हे विश्वास नही है। आज वे ऐसी स्थिति मे पहुँचे है कि सर्वोत्तम अस्त्रो के द्वारा भी वे विश्व की समस्याओ का समाधान नही कर सकते। इसीलिए वे शाति चाहते है। किन्तु, अहिंसा के द्वारा समस्या का समाधान हो सकता है, यह विश्वास उनमे पैदा नही हुआ है। ऐसी है इग्लैण्ड-यूरोप के नेताओ की स्थिति। हिंसा मे पहले उन्हे जितनी श्रद्धा थी, आज उतनी श्रद्धा नही है। अहिंसा के द्वारा समस्या का समाधान हो सकता है, ऐसी अनुभूति, ऐसा दर्शन, ऐसी कल्पना उनमे नही है। और, वे अस्त्र-शस्त्र मे वृद्धि करते जा रहे है। एक प्रवाह है, जिसमे वे पडे हुए है। किन्तु, उन्हे यह विश्वास नही है कि वे इसे पार करने मे समर्थ होगे।"

भारत की स्थिति क्या है ? विनोवाजी कहते है : "आज पाकिस्तान अमेरिका के वल पर वलवान् वना है और देखता है कि अन्य देशो की स्थिति क्या है ? हमारे देश के लोग भी सशकित हो पार्लियामेण्ट मे प्रश्न कर रहे है 'भारत क्या इसके लिए तैयार है ?' पडित नेहरू आश्वासन देकर कहते है कि 'हाँ, तैयार है।' किन्तु, वे साथ-साथ यह भी कहते है कि पचवर्षीय योजना भी हमारा मोरचा है। इस योजना मे भी शक्ति निहित है। यदि वह सफल होगी, तो उससे शक्ति प्राप्त होगी। फिर भी, इस वारे मे कोई सन्देह नही है कि

देश की जनता, नेता और जनता के प्रतिबिम्बस्वरूप जनता के प्रतिनिधि, सभी आज सशंक और चकित हैं। उन्हें सैनिक शक्ति पर भरोसा है। यदि कल विश्वयुद्ध शुरू हो, तो वे योजना का काम छोड देंगे। यदि पाकिस्तान बुद्धिहीन की तरह अस्त्र-शस्त्र में वृद्धि करता रहेगा, तो हम ऐसी स्थिति में पडे हैं कि हमें भी अपने अस्त्र-शस्त्र बढाने होंगे। यह एक दुष्ट चक्र(Vicious circle)है। इसके कारण निरपेक्ष भाव से अन्य कुछ शुरू करने की शक्ति (Initiative) हम लोगों के हाथ में नहीं है। यदि आसपास का देश हिंसा पर निर्भर करने की मूर्खता करेगा, तो हमें भी वैसा ही करना होगा। आज संसार जिस चक्र में पडा है, उससे मुक्ति पाने का उपाय क्या है ? क्या अमेरिका और रूस इस बारे में नहीं सोचेंगे ? यदि युद्ध शुरू हो जायगा, तो अपनी योजनाओं के साथ-साथ हम भी नष्ट हो जायँगे। मानव-समाज नष्ट हो जायगा। तब योजनाएँ कहाँ रहेंगी ? मनुष्य को तंग करने की शक्ति हिंसा से ही उत्पन्न हुई है।" इस संकट से परित्राण पाने का उपाय क्या है ? विनोबाजी का खयाल है कि आज संसार ऐसी स्थिति में है कि उसे अहिंसा अपनानी पडेगी अन्यथा सर्वनाश (Total Destruction) स्वीकार करना पडेगा। इसीलिए वे विश्वयुद्ध की सम्भावना से उत्फुल्ल होते हैं। वे विश्वयुद्ध का स्वागत करते हैं। वे विश्वयुद्ध को सम्बोधित करते हुए कहते हैं : "तुम शीघ्र आओ। तुम जितनी जल्दी आओगे, उतनी ही जल्दी अहिंसा भी आयगी।" वे सोचते हैं कि इस प्रकार बार-बार विश्वयुद्ध होने से लोगों की आँखें खुलेंगी और वे चिन्तन करना आरम्भ करेंगे।

इस संकटपूर्ण स्थिति में भारत क्या कर सकता है ? भारत के हाथ में कोई भौतिक शक्ति नहीं है। भारत के पास सैनिक शक्ति भी नहीं है और आर्थिक शक्ति भी नहीं। किन्तु, भारत के पास नैतिक शक्ति है। इसीलिए सारा संसार आज आशा कर रहा है कि भारत कोई ऐसी योजना बनायेगा, जो सारे संसार को मार्ग दिखायेगी। विनोबाजी कहते हैं : "दो हजार वर्ष बाद हमें अपने देश का निर्माण करने का सुयोग प्राप्त हुआ है। भूदान-यज्ञ का काम चल रहा है, किन्तु उससे अभी ऐसा परिणाम नहीं निकल सका है कि लोग चमत्कृत हो जायँ। अभी तक कुल ४०-५० लाख एकड भूमि प्राप्त हुई है और केवल ५ लाख लोगों ने दान दिया है। किन्तु, यह देखने के लिए

ससारभर के लोग आ रहे है। वे हमारे साथ रहते है, जगलो मे भी घूमते है। इसे देखने के लिए यूरोप-अमेरिका के लोग भी क्यो आते है ? ससार के अनेक देशो मे तो भूमि-वितरण हो चुका है। तव इसमे देखने की क्या चीज है ? यहाँ भूमि-वितरण के लिए एक ऐसे उपाय का सहारा लिया गया है, जिसके द्वारा आज सकट में पड़ा हुआ ससार मुक्ति पाने का मार्ग पा सकेगा। यही आशा लेकर विभिन्न देशो के लोग इसे देखने आते है।" ससार आज जिस सकट मे पडा है, उसकी नीव पहले भारत मे ही डाली गयी थी। इग्लैण्ड के मशीन-उद्योग ने भारत के ग्रामोद्योग को नष्ट करके मानव के विनाश का वीज भारत में वोया था। आज ऐसा सुयोग उपस्थित हुआ है कि भारत ही उस विपवृक्ष को समूल नष्ट कर देने का उपाय ससार को वता सकता है। वह उपाय हे अहिंसात्मक अर्थ-व्यवस्था या मानवात्मक अर्थ-व्यवहार की पुन प्रतिष्ठा। प्रतियोगितामूलक व्यवस्था का परित्याग करना होगा। मनुष्य और मानवता को सर्वोपरि मानना पडेगा। सभी मनुष्यो का समान कल्याण-साधन ही आदर्श वनाना पडेगा। परिवार मे जो त्यागमूलक और कल्याणमूलक व्यवस्था मानव-समाज ने तैयार की है, उसे सारे समाज के जीवन मे प्रसारित करना होगा। इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्र (Modern Economics) को मानना ही पडेगा, ऐसी वाध्यता नही रहेगी। विनोवाजी कहते है "मनुष्य ने गणित-शास्त्र की रचना नही की। वह नियामक शास्त्र है। किन्तु, अर्थशास्त्र के साथ ऐसी वात नही है, क्योकि मनुष्य ने उसका निर्माण किया है । इसलिए वह मनुष्य के सिर पर चढकर नही रह सकता। गणित-शास्त्र को मानना ही पडता है, किन्तु अर्थशास्त्र वैसा नही है। हम अर्थशास्त्र की रचना कर सकते हे।" इसलिए वे कहते है . "विभिन्न देशो के अर्थशास्त्र विभिन्न प्रकार के होगे।" जिस देश की जैसी स्थिति होगी, उसके अनुसार ही उस देश की अर्थ-व्यवस्था की रचना करनी होगी। एक देश की अर्थ-व्यवस्था विभिन्न स्थितिवाले देशो मे हू-ब-हू लागू करना उचित नही है। इस सम्बन्ध में विनोवाजी कहते है "इसका कारण यह है कि आज वहाँ जो यत्र चल रहे है, वे कल वहाँ नही चलेंगे। भारत मे आज जो यत्र चल रहे है, वे कल नहीं चलेगे। आज जो यन्त्र अन्य देशो मे चल रहे है, वे आज ही यहाँ की स्थिति के अनुकूल नही भी हो सकते है।" विनोवाजी ने यत्रो को तीन श्रेणियो में वॉटा

है*—यथा, (क) संहारक यंत्र । यह सब प्रकार से परित्याज्य है । (ख) समय-साधक यंत्र—जैसे रेलगाडी, विमान आदि । ये यंत्र ग्राह्य हैं । (ग) उत्पादक यंत्र—किसी स्थान या देश-विशेष की स्थिति के अनुसार उत्पादक यंत्र पूरक या कल्याणकारी हो सकता है । अन्य देश, स्थान या स्थिति के अनुसार वह यंत्र क्षतिकारक भी हो सकता है । इसीलिए विभिन्न देशो मे विभिन्न स्थितियो के अनुसार विभिन्न अर्थ-व्यवस्था और अर्थशास्त्र की रचना करना आवश्यक है। आज अमेरिका ओर रूस मे जो यंत्र चल रहे है, वे भारत मे नही चलेंगे। अमेरिका और रूस की समस्या यह है कि किस प्रकार कम मनुष्य-शक्ति खर्च करके यंत्रशक्ति के सहारे प्राकृतिक साधनो और सम्पत्ति का अधिकाधिक विकास किया जा सकता है। दूसरी ओर, भारत की समस्या यह है कि किस प्रकार अपरिमित मनुष्य-शक्ति को काम मे लगाया जाय। यहाँ केवल उत्पादन-वृद्धि पर ध्यान देने से करोडो लोगो का नाश हो जायगा। मनुष्यो के लिए पर्याप्त काम की व्यवस्था करना इस देश की मुख्य समस्या है। इस देश मे कुछ लोगो के जीवन-स्तर को उच्चतम बिन्दु तक पहुँचाने की समस्या नही है। किस प्रकार करोडो लोग 'मनुष्य' की भाँति जीवित रह सकते है, यही समस्या है।

भारत की भूमि और उस पर जन-संख्या का दबाव

भारत की जन-संख्या मोटे तौर पर ३६ करोड है और भारत की भूमि का क्षेत्रफल लगभग ८१ करोड एकड है। अतएव एक व्यक्ति पर २। एकड जमीन पडती है।

राष्ट्र-व्यवस्था की दृष्टि से भारत विभिन्न श्रेणी के राज्यो को मिलाकर ३३ राजनीतिक विभागो मे विभक्त है। किन्तु, राज्य-पुनर्गठन-आयोग की सिफारिशो और तत्सम्बन्धी सरकार के निर्णय के अनुसार जो कानून बनने जा रहा है, उसके लेखे भारत मे १५ राज्य और कुछ केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र होगे। जो भी हो, भारत ६ अचलो (Zone) मे विभक्त किया जायगा, यथा (१) उत्तरी भारत, (२) पूर्वी भारत, (३) दक्षिणी भारत, (४) पश्चिमी भारत, (५) मध्य भारत और (६) उत्तर-पश्चिमी भारत। (१) उत्तरी

---

* 'सर्वोदय सूत्र' प्रकरण में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

भारत केवल उत्तर प्रदेश से गठित है। उसकी भूमि का क्षेत्रफल ७२६ लाख एकड और जनसख्या ६३२ लाख है। अर्थात् उत्तर भारत मे एक व्यक्ति पर १ १५ एकड जमीन पडती है। (२) पूर्वी भारत विहार, उडीसा, पश्चिम वगाल, आसाम, मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम और चन्दननगर से गठित है। उसकी भूमि का क्षेत्रफल १,६७५ लाख एकड है और जनसख्या ९०१ लाख है। अर्थात् वहाँ एक व्यक्ति पर १·८६ एकड भूमि पडती है। (३) दक्षिणी भारत मद्रास, आध्र, मैसूर, त्रिवाकुर-कोचीन और कुर्ग से गठित है। उसकी भूमि का क्षेत्रफल १,०७५ लाख एकड और जनसख्या ७५६ लाख है। अर्थात् दक्षिण भारत मे एक व्यक्ति पर १ ४२ एकड जमीन पडती है। (४) पश्चिमी भारत वम्वई, सौराष्ट्र और कच्छ को मिलाकर वना है। वहाँ की भूमि का क्षेत्रफल है ९५७ लाख एकड और जनसख्या ४०७ लाख। अर्थात् पश्चिम भारत मे एक व्यक्ति पर २ ३५ एकड जमीन पडती है। (५) मध्य भारत में मध्यप्रदेश, मध्यभारत, हैदरावाद, भोपाल और विन्ध्यप्रदेश पडते है। वहाँ की भूमि का क्षेत्रफल १,८५२ लाख एकड है और जनसख्या ५२३ लाख है। अर्थात् मध्य भारत मे प्रतिव्यक्ति ३ ५४ एकड जमीन पडती है। (६) उत्तर-पश्चिमी भारत मे पडते है राजस्थान, पजाव, पटियाला, पूर्वी पजाव, जम्मू-कश्मीर, अजमेर, दिल्ली, विलासपुर और हिमाचल प्रदेश। वहाँ कुल १,२२६ लाख एकड भूमि है और जनसख्या ३५० लाख है। अर्थात् उत्तर-पश्चिमी भारत मे एक व्यक्ति पर ३ ५९ एकड भूमि पडती है। अतएव यह प्रकट होता है कि किसी-किसी अचल में प्रतिव्यक्ति जितनी भूमि है, वह अन्यान्य अचलो की तुलना मे कही अधिक है। उत्तरी भारत मे एक व्यक्ति पर १ १५ एकड भूमि पडती है, परन्तु मध्य भारत मे ३ ५४ एकड, जो कि तीनगुनी है। इसे देखते हुए यह वात सोची जा सकती है कि जमीन की दृष्टि से मध्यभारत की अवस्था उत्तरी भारत से अच्छी है। किन्तु, वास्तविकता यह नही है। मध्यभारत मे ३ ५४ एकड भूमि से जैसा जीवन-यापन हो सकता है, उत्तरी भारत मे १ १५ एकड जमीन से उससे अच्छा जीवन-यापन सम्भव है। इसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि केवल भूमि होना ही पर्याप्त नही है। भूमि ऐसी होनी चाहिए, जो काम के लायक हो। अर्थात् व्यवहार-योग्य भूमि (Usable) होनी चाहिए। भूमि-वैशिष्ट्य के कारण

वह व्यवहार-जन्य हो सकती है और अव्यवहार्य भी हो सकती है। भूमि-विशिष्टता की दृष्टि से भूमि प्रधानत चार भागो मे विभक्त की जाती है, यथा (१) पर्वत, (२) पहाड, (३) मालभूमि और (४) समतल भूमि। समुद्र-तट से ७ हजार फुट या अधिक ऊँची जमीन को पर्वत कहा जाता है। उससे कम ऊँची पहाडी भूमि को पहाड कहा जाता है। भारत मे पर्वतीय भूमि का ६५ प्रतिशत अश और पहाडी भूमि का ७५ प्रतिशत अश अव्यवहार्य है। एक हजार से तीन हजार फुट तक ऊँची भूमि को मालभूमि कहा जाता है। मालभूमि का २५ प्रतिशत भाग व्यवहार-योग्य नही है। समतल भूमि का ५ प्रतिशत भाग व्यवहार-योग्य नही है। भारत की पर्वतीय आदि चार प्रकार की भूमि और व्यवहार-योग्य भूमि का राज्यवार और अन्य विभागवार हिसाब परिशिष्ट (क) मे दिया गया है। उससे यह समझ मे आ जायगा कि गठन-वैशिष्ट्य के कारण पर्वतीय पहाडी आदि अव्यवहार्य भूमि को छोडकर भारत मे कुल व्यवहार-योग्य भूमि ५,०४८ लाख एकड है और वह प्रतिव्यक्ति १४० एकड पडती है।

यहाँ एक बात समझ लेना आवश्यक है। व्यवहार्य भूमि का जो हिसाब दिया गया है, वह भूमि-गठन की दृष्टि से व्यवहार मे लायी जा सकनेवाली भूमि का है। अर्थात् जो भूमि इतनी ऊँची नही है या जिसका गठन-वैशिष्ट्य ऐसा नही है कि उसका व्यवहार मनुष्य न कर सके। किन्तु, गठन की दृष्टि से व्यवहार्य होने से ही भूमि खेती के योग्य होगी, ऐसी बात नही है। भूमि के कृषि-योग्य होने के लिए दो अन्य बातो की भी आवश्यकता होती है। (१) भूमि के ऊपर मिट्टी की परत होनी चाहिए और (२) खेती के लिए पर्याप्त वर्षा होनी चाहिए। गठन की दृष्टि मे व्यवहार्य भूमि मे ऐसे अनेक विस्तीर्ण भूमिखड है, जो पत्थर के अतिरिक्त और कुछ नही है अथवा उन पर मिट्टी की परत इतनी पतली है कि वे खेती के काम मे नही आते। यथेष्ट परिमाण में मिट्टी की परत रहने पर भी यह जानना आवश्यक है कि मिट्टी किस प्रकार की है, क्योकि मिट्टी के प्राकृतिक भेद का भूमि की उत्पादन-शक्ति से बहुत गहरा सम्बन्ध रहता है। (१) चार प्रकार की मिट्टियो मे नदी की बाढ से लायी गयी मिट्टी (Alluvial Soil) सर्वोत्तम है। उत्तर प्रदेश के सम्पूर्ण गगावर्ती समतल क्षेत्र मे, पश्चिम बगाल मे सर्वत्र, पजाब मे प्राय सर्वत्र और उडीसा तथा आसाम के कुछ क्षेत्रो मे यह मिट्टी उपलब्ध है। दक्षिण भारत के तटवर्ती अचल, विशेषकर नदियो के

मुहानो के पास नदीवाली मिट्टी का क्षेत्र है। इस मिट्टीवाले अचलो के बीच-बीच मे नमकीन और क्षारयुक्त भूमि है। उत्तर प्रदेश मे ऐसी जमीन ऊसर कही जाती है। उत्तर प्रदेश, वम्बई, दक्षिणी और उत्तरी विहार के कुछ भागो मे यह मिट्टी पायी जाती है। पश्चिम वगाल के समुद्रतटवर्ती सुदरवन और उसके आसपास के स्थानो मे जमीन कुछ-कुछ नमकीन है। नदीवाली मिट्टी में फास्फरिक एसिड, नाइट्रोजन और ह्यूमस कम रहता है, किन्तु पोटाश और चूना पर्याप्त मात्रा में रहता है। (२) काली मिट्टी। यह लसीली भी होती है और कीचडवाली भी। काली मिट्टी कपास की खेती के लिए वहुत उपयोगी होती है। वम्बई और सौराष्ट्र के अधिकाश भाग, मध्यप्रदेश के पश्चिमी भाग, मध्यभारत, हैदरावाद और मद्रास के त्रिनलवेली जिला, रामनायपुरम् जिला आदि स्थानो मे काली मिट्टी है। यह मिट्टी वडी उपजाऊ होती है। यह मिट्टी विशेष रूप से आर्थिक फसलो (Commercial Crops) के लिए वडी उपयोगी होती है। (३) लाल मिट्टी। भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे इस मिट्टी की उर्वरा-शक्ति विभिन्न स्तर की है। कही इसकी उर्वराशक्ति मध्यम है और कही खूब कम है। मद्रास, मणिपुर, दक्षिण-पूर्व वम्वई और पूर्व हैदरावाद के विस्तृत अचल में यह लाल मिट्टी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग से छोटा नागपुर और उडीसा तक इस मिट्टी का क्षेत्र है। सथाल परगना के अधिकाश स्थानो और पश्चिमी वगाल के वीरभूम जिले मे लाल मिट्टी है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर, झाँसी, हमीरपुर जिले, मध्यभारत के उत्तरी भाग, अरावली पर्वतमाला ओर राजस्थान के पूर्वी भाग भी लाल मिट्टी के क्षेत्र हैं। (४) ककरीली मिट्टी (Laterite and Lateritic Soils)। दक्षिणी क्षेत्र, मध्यभारत और मध्यप्रदेश के पहाडी क्षेत्र, राजमहल और पूर्वी-घाट श्रेणी, उडीसा, वम्वई, मालावार और आसाम के कुछ क्षेत्रो की मिट्टी ककरीली है। इस मिट्टी की उर्वराशक्ति वहुत कम है।

इन चार प्रमुख प्रकार की मिट्टियो के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की मिट्टी होती है, जैसे—(१) सूखी मिट्टी या Arid Soil। जहाँ वर्षा वहुत कम होती है, वहाँ इस प्रकार की मिट्टी पायी जाती है। जैसे, अजमेर, पूर्वी राजस्थान आदि। (२) जलवाली मिट्टी। तिरुवाकुर के कुछ स्थानो में, पश्चिम वगाल, उडीसा और मद्रास के कुछ भागो में जलवाली मिट्टी उपलब्ध

है। (३) पहाडी मिट्टी। पहाडी मिट्टी वालू और कीचडभरी लाल मिट्टी (Red Loam) होती हे। पश्चिम वगाल, पजाव और आसाम के पहाडी क्षेत्रो की मिट्टी इसी प्रकार की है।

मिट्टी जिस किमी भी श्रेणी की और कितनी भी उर्वराशक्तिसम्पन्न क्यो न हो, यदि पर्याप्त वर्पा न हो, तो उसमे किमी भी फसल का उत्पादन सम्भव नही होगा। भारत में कही वहुत अविक वर्पा होती हे और कही वहुत कम। कुछ स्थानो मे अल्पकाल मे ही वहुत अविक वर्पा हो जाती है। भारत मे सावारणत वर्पभर मे कितनी वर्पा होती हे, यह जानने के लिए कौतूहल हो मकता हे। भारत मे सावारणत जितने परिमाण मे वर्पा होती है, यदि वह भारत की ८१ करोड एकड भूमि मे मर्वत्र समानभाव से वरसे, तो भारत की प्रत्येक इच भूमि मे वर्प मे ४२ इच वर्पा हो। इस हिसाव से भारत की एक एकड भूमि मे सालभर मे जितने परिमाण मे वर्पा होती, वह वजन करने से एक लाख मन से भी अविक ठहरती। उसमे ८१ करोड से ुणा करने से भारत की कुल सालाना वृप्टि का परिमाण प्राप्त हो जायगा। वजन का वह परिमाण कितना अविक होगा, यह महज ही समझा जा सकता है। भारत मे जिस परिमाण मे वर्पा होती हे, उसका यदि ममान भाव से वितरण होता, तो देश मे अभी जिस परिमाण मे खाद्यान्न और अन्यान्य फसल पैदा होती है, उससे कई गुनी अविक फसल पैदा होती। किन्तु दुर्भाग्यवश भारत मे कही वहुत अविक वर्पा होती है और कही वहुत कम। ये दोनो ही वाते खेती के लिए हानिकारक है। उदाहरणस्वरूप आसाम के खसी पहाडी क्षेत्र मे स्थित चेरापूंजी नामक स्थान मे वर्प मे ४२५ इच वर्पा होती हे, जो ससार मे सवमे अविक हे। दूसरी ओर, राजपूताना के पश्चिमी जिलो मे, जैमे गगानगर, वीकानेर, चुरु आदि के अधिकाश स्थानो मे वर्पभर मे केवल ११ इच वर्पा होती है और इम कारण से ये अचल मरुभूमि मे परिणत हो गये है। इमके अतिरिक्त कुछ स्थानो मे एक साथ ही वहुत अविक वर्पा होने के कारण भूमि-क्षरण होता हे और मिट्टी की उर्वराशक्तिवाले तत्त्व वहकर चले जाते है। वार्षिक वृप्टि के परिमाण की दृप्टि से भारत पाँच भागो मे वाँटा जाता हे (१) वे स्थान, जहाँ वर्पभर मे कुल ७५ इच से अविक वर्पा होती है, (२) वे स्थान, जहाँ सालभर मे ५० से ७५ इच तक वर्पा होती है, (३) वे स्थान, जहाँ ३० से ५० इच

तक वर्षा होती है, (४) वे स्थान, जहाँ १५ से ३० इंच तक वर्षा होती है और (५) वे स्थान, जहाँ १५ इच से कम वर्षा होती है ।

भारत की एक तिहाई भूमि मे साल मे ५० इच से अधिक वर्षा होती है। कभी-कभी कुछ गडबडी होने पर भी साधारण तौर पर खेती के लिए इन स्थानो मे वर्षा हो जाती है। देश के दूसरे एक तिहाई भाग मे ३० इच से लेकर ५० इच तक वर्षा होती है। खेती के लिए वर्षा का यह परिमाण पर्याप्त है, किन्तु वर्षा की अनियमितता के कारण बीच-बीच मे फसल को क्षति पहुँचती है और सूखा पड जाता है। बाकी एक तिहाई भूमि मे ३० च से कम वर्षा होती है। जिन सब स्थानो मे १५ इच से कम वर्षा होती है, वे अर्द्धमरुभूमि जैसे है। वहाँ मनुष्य बहुत कम बसते है। १५ इच से ३० इच तक वर्षावाले स्थानो मे अन्न-कष्ट लगा ही रहता है। वैसे क्षेत्रो मे देश की एक चौथाई आबादी है। अत वैसे क्षेत्र देश के लिए विषम समस्या बन गये है।

पहले कहा गया है कि केवल भूमि का होना ही पर्याप्त नही है। भूमि के खेती-योग्य होने के लिए सतोषजनक मिट्टी की परत और पर्याप्त वर्षा, इन दोनो का होना आवश्यक है। इसलिए भारत की कुल व्यवहार-योग्य भूमि ५,०४४ लाख एकड होने पर भी खेती-योग्य भूमि का परिमाण मोटे-तौर पर केवल ३,४९२ लाख एकड रह जाता है। अर्थात् भारत मे व्यवहार-योग्य भूमि प्रतिव्यक्ति १ ४० एकड रहने पर भी खेती-योग्य भूमि ९७ एकड पडती है। भारत की खेती-योग्य भूमि है तो ३,४९२ लाख एकड, परन्तु १९५२ ईसवी के हिसाब के अनुसार २,८६६ एकड भूमि मे खेती होती है। किन्तु, भारत की कुल ८,१२५ लाख एकड जमीन मे से ६,२३४ लाख एकड जमीन के तथ्यादि के कागजात प्राप्त हुए है, जिसका अचलवार विवरण परिशिष्ट (ख) मे दिया गया है। इसके अतिरिक्त जिस २,८६६ लाख एकड भूमि मे खेती होती है, उसका विवरण भी दिया गया है। भारत के विभिन्न अचलो की जन-सख्या पर तुलनात्मक विचार करने से प्रकट होता है कि जिन अचलो की भूमि उर्वरा है और वर्षा भी प्रचुरमात्रा मे होती है, वहाँ मनुष्यो की आबादी घनी है, उदाहरण के लिए गगा नदी की निचली समतल भूमिवाले क्षेत्र (Lower Gangetic Plains) पर विचार किया जाय। इस क्षेत्र की मिट्टी भारत की सभी उर्वरा मिट्टियो मे अन्यतम है। यहाँ वर्षा भी

न वहुत अधिक होती है और न वहुत कम। उत्तरी वगाल के तीन जिलो को छोडकर सम्पूर्ण पश्चिमी वगाल, छोटा नागपुर को छोडकर वाकी विहार और उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग के वलिया, गोरखपुर आदि आठ जिले भी इस क्षेत्र मे है। इन क्षेत्रो की आवादी ७०० लाख है। प्रति वर्गमील की आवादी ८३२ है। भूमि का क्षेत्रफल ५३८ लाख एकड है, अर्थात् प्रतिव्यक्ति ७७ एकड जमीन पडती है। व्यवहार-योग्य भूमि का परिमाण ५३२ लाख एकड है, अर्थात् प्रतिव्यक्ति ७३ एकड व्यवहार-योग्य जमीन पडती है। खेती-योग्य भूमि का क्षेत्रफल ३५६ लाख एकड है यानी एक व्यक्ति पर खेती के योग्य ·५१ एकड जमीन पडती है। सम्पूर्ण भारत के साथ तुलना करने पर यह प्रकट होगा कि इस क्षेत्र मे भूमि पर जनसख्या का कितना अधिक दवाव है। भारत मे प्रति वर्गमील जनसख्या २८२ है और प्रतिव्यक्ति भूमि का क्षेत्रफल २ २५, व्यवहार-योग्य भूमि १ ४० और खेती-योग्य भूमि ९७ एकड पडती है। यह तो घनी आवादीवाले क्षेत्रो की स्थिति का उदाहरण है। भारत के जिन क्षेत्रो मे मध्यम श्रेणी की आवादी है, जिसे जन-गणना की रिपोर्ट मे Medium density region कहा जाता है, उन क्षेत्रो की अवस्था पर विचार करने से यह प्रकट होगा कि वहाँ भी भूमि पर जनसख्या का भार कम नही है, वल्कि घनी आवादीवाले क्षेत्रो से भी अधिक है। गगावर्ती अचल के वाहर ऊपर की ओर समतल क्षेत्र है। अर्थात् पूर्वी पजाव, पटियाला, दिल्ली आदि दक्षिण दाक्षिणात्य, उत्तर दाक्षिणात्य और गुजरात-काठियावाड, ये सव मध्यम आवादी के क्षेत्र है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल २,३९३ लाख एकड और आवादी ९७४ लाख है, अर्थात् प्रति वर्गमील २ ६० व्यक्तियो की आवादी है। इस क्षेत्र मे प्रतिव्यक्ति २ ४६ एकड जमीन पडती है। व्यवहार्य और खेती-योग्य भूमि का परिमाण प्रतिव्यक्ति क्रमश १ ७४ एकड और १ २२ एकड पडता है। इस क्षेत्र की कुल भूमि का ५० प्रतिशत भाग और व्यवहार-योग्य भूमि का ७० प्रतिशत भाग खेती के उपयुक्त है। सम्पूर्ण भारत मे कुल जमीन का केवल ३५ प्रतिशत भाग और व्यवहार-योग्य भूमि का ५६ प्रतिशत भाग खेती के उपयुक्त है। अर्थात् सम्पूर्ण भारत की तुलना मे इस क्षेत्र मे अपेक्षाकृत अधिक अश भूमि मे खेती की जाती है। अन्यथा इस क्षेत्र की जमीन वहुत अच्छी नही है। वर्षा भी अपेक्षाकृत कम होती है। वर्षा की अनियमितता के कारण अच्छी

तरह खेती भी नही होती। फिर भी सारे भारत की तुलना मे इस क्षेत्र मे कुल भूमि या व्यवहार-योग्य भूमि के इतने अधिक भाग मे खेती होती कैसे है ? प्रतिव्यक्ति इतनी अधिक खेती-योग्य जमीन हुई कैसे ? इसका कारण यह है कि इस क्षेत्र मे जन-सख्या क्रमश वढ रही है। वर्षा के कम और अनियमित होने के कारण खेती करने मे वाधा पहुँचती है और फसल की पैदावार घटती है। इसीलिए लोग खराव जमीन को भी यथासम्भव अधिक परिमाण मे खेती-योग्य जमीन मे परिणत करते है, जिसमे कि कुछ जमीन परती रह जाने और बीच-बीच मे फसल नष्ट होने पर भी अधिक जमीन रहने के कारण किसी प्रकार काम चल जाय। सारे भारत मे २२ प्रतिशत भूमि मे जोताई होती है, किन्तु यहाँ २६ प्रतिशत भाग मे जोताई होती है। इससे भी यह प्रकट होता है कि इस क्षेत्र मे पर्याप्त अनुपजाऊ भूमि (Sub-marginal lands) मे खेती होती है। इसीलिए इतनी अधिक भूमि परती रखनी पडती है। भारत की आवादी की एक और विशेषता के वारे मे यहाँ विचार करने की आवश्यकता है। भारत के जिन क्षेत्रो मे आवादी कम है, उन्हे Low density region कहा जाता है। इन क्षेत्रो की आवादी ७९२ लाख है और प्रति वर्गमील १२९ व्यक्तियो की आवादी है। भूमि की वनावट और वर्षा की स्थिति के कारण, खेती करने मे सुविधा न होने के कारण, इन क्षेत्रो मे इतनी कम आवादी है। किन्तु इन क्षेत्रो मे देश की सर्वाधिक खनिज सम्पत्ति है। यह सम्पत्ति आर्थिक है और वहुत मूल्यवान् है। जव इस खनिज सम्पत्ति का अच्छी तरह व्यवहार होगा, और इसके द्वारा अनेक उद्योगो का विकास होगा, तव इन क्षेत्रो की आवादी घनी हो जायगी, इसमे सन्देह नही है।

अव यहाँ ससार के साथ भारत की स्थिति की तुलना की जाती है। ससारभर मे कुल ३,२५१ करोड एकड भूमि है, अर्थात् भारत की कुल भूमि की ४० गुनी है। सारे ससार की आवादी २४० करोड है और एक व्यक्ति पर १३ ५४ एकड जमीन पडती है, अर्थात् भारत मे एक व्यक्ति पर जो २ २५ एकड भूमि पडती है, उससे ६ गुनी अधिक। ससार मे प्रतिव्यक्ति ३ ५१ एकड खेती-योग्य भूमि (Agriculturable area) है और इस खेती-योग्य भूमि मे से १ २६ एकड भूमि फसल-योग्य (Arable land) है, अर्थात् जोती जानेवाली जमीन समेत वह भूमि, जिसमे फसल पैदा की जाती है।

ससार के जमीन-सम्वन्धी विवरण मे खेती-योग्य भूमि (Agriculturable land) का अर्थ होता है जोती जानेवाली जमीन के साथ-साथ फसली जमीन। इसके अतिरिक्त स्थायी चरागाह ओर घासवाली जमीन (Permanent meadow and pasture) भी इसमे शामिल हे। भारत मे "Permanent meadow and pasture" नाम की कोई भूमि की अलग श्रेणी नही है। इस प्रकार की यदि कोई जमीन है भी, तो वह फसली जमीन के अतर्गत मान ली गयी है। इसका अर्थ यह हे कि ससार की कुल जमीन का चतुर्थांश खेती-योग्य है और खेती-योग्य जमीन के प्राय तृतीयाश मे फसल पैदा की जाती है। वाकी ो तृतीयाश भूमि Permanent meadow and pasture के रूप मे रखी गयी हे। दूसरी ओर भारत की भूमि के पाच हिस्सो मे से दो हिस्सो मे खेती होती हे और खेती-योग्य प्राय सारी भूमि मे फसल पैदा की जाती हे। Permanent meadow and pasture अलग से नही हैं। ऐसा होने का कारण क्या है? ससार की तुलना मे भारत की अधिकाश भूमि कृषि के उपयुक्त है। दूसरी ओर ससार की तुलना मे भारत के लोग अपेक्षाकृत कम जमीन मे निवास करते हैं। इसीलिए उन्हे विवश होकर अनुपजाऊ जमीन मे भी खेती करनी पडती है। इसीलिए यहाँ की अधिकाश जमीन मे खेती होती है और Permanent meadow and pasture के रूप मे कोई जमीन रखना सम्भव नही है।

भूमि की वनावट के कारण जो भूमि अव्यवहार्य मानकर छाँट देनी पडती हे, वह कुल भूमि के अनुपात मे भारत मे ससार की तुलना में प्राय वरावर ठहरती है, जैसे ससार मे भूमि के १२ प्रतिशत भाग मे पर्वत, १४ प्रतिशत भाग मे पहाड, ३३ प्रतिशत भाग मे मालभूमि और ४१ प्रतिशत भाग मे समतल भूमि है—भारत मे ११ प्रतिशत भाग मे पर्वत, १८ प्रतिशत भाग मे पहाड, २८ प्रतिशत भाग मे मालभूमि और ४३ प्रतिशत भाग मे समतल भूमि हे। किन्तु, इस दृष्टि से यूरोप की भूमि काफी अच्छी है। अन्यान्य महादेशो की तुलना मे यूरोप मे अपेक्षाकृत वहुत कम भूमि अव्यवहार्य है। इसके अतिरिक्त यूरोप मे पर्याप्त वर्षावाली भूमि का अनुपात भी सवसे अधिक है। यूरोप मे प्रचुर मात्रा मे वर्षा होती है और वह निर्भर योग्य होती है, अर्थात् अनावृष्टि या अतिवृष्टि नही होती। इसीलिए ठीक मौके पर वर्षा का अभाव

नही। भरण-पोपण के लिए वे परिवार के उपार्जन करनेवाले व्यक्ति, जैसे—पिता, पति या भाई आदि पर निर्भर करते है। जन-गणना के विवरण मे उन्हे अनुपार्जनकारी पोषित (Non-earning dependants) कहा गया है। भारत मे उनकी कुल सख्या २,३४३ लाख अर्थात् कुल जन-सख्या का ६० १ प्रतिशत भाग है। बच्चे आदि इस श्रेणी में पडते है। (२) दूसरी श्रेणी है उपार्जनकारी पोपितो (Earning dependants) की। वे लोग जो कुछ कमाते है, वह उनके अपने भरण-पोषण के लिए ही यथेष्ट नही होता। इस श्रेणी मे प्रधानत वे लोग आते है, जो अपनी खेती, उद्योग या व्यवसाय के काम मे भाग लेते है और वाहर से कुछ आमदनी नही करते। किन्तु, वह आय उनके भरण-पोपण के लिए पर्याप्त नही होती। भारत मे वैसे लोगो की सख्या ३७९ लाख अर्थात् कुल जनसख्या का १० ६ प्रतिशत भाग है। (३) वाकी सब लोग स्वावलम्वी (Self supporting) है। वे लोग अपने भरण-पोपण के लिए पर्याप्त उपार्जन कर लेते है। केवल इतना ही नही, उनके द्वारा उपार्जित धन से उन पर निर्भर अनुपार्जनकारी लोगो का भी भरण-पोपण हो जाता है। उनकी सख्या १०४४ लाख अर्थात् कुल जन-सख्या का २९ ३ प्रतिशत भाग है। उनके उपार्जनकारी पोपितो की सख्या २१५ लाख और अनुपार्जनकारी पोपितो की सख्या १,००१ लाख है। अतएव पोषित वर्ग समेत उनकी सख्या १,६७३ लाख अर्थात् जनसख्या का ४६ ९ प्रतिशत भाग है।

भारत मे जो १,०४४ लाख स्वावलम्वी व्यक्ति है, वे दो श्रेणियो में वाँटे जाते है (१) जो लोग एकमात्र या प्रधानत खेती पर निर्भर करते है, उनकी सख्या ७१० लाख है। स्वावलम्वी व्यक्तियो मे इनका अनुपात ६८ १ प्रतिशत है। (२) जो लोग खेती पर निर्भर नही करते, उनकी सख्या ३३४ लाख अर्थात् ३१ ९ प्रतिशत भाग है।

जो लोग खेती पर निर्भर करते है, वे चार श्रेणियो में वाँटे जाते है (१) जो लोग पूर्णरूप से या प्रधानत अपनी जमीन मे खेती करते है। उनकी सख्या ४५७ लाख (कृपि पर निर्भरशील व्यक्तियो का ६४ ४ प्रतिशत भाग और स्वावलम्वी व्यक्तियो का ४३ ८ प्रतिशत भाग) है। उनके अनुपार्जनकारी पोपितो (Non-earning dependants) की सख्या १८९ लाख और

उपार्जनकारी पोपितो की सख्या ३९ लाख है। अतएव पोपित वर्ग समेत उनकी सख्या ३१६ लाख अर्थात् कुल जनसख्या का ८८ प्रतिशत भाग है। (२) जो लोग जिस जमीन मे खेती करते है, उसका थोडा या अधिकाश भाग उनका अपना नही है, वे लोग। जैसे, अस्थायी प्रजा, वर्गादार आदि। उनकी सख्या ८८ लाख है (खेती पर निर्भर व्यक्तियो की सख्या का १२ ३ प्रतिशत भाग और स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का ८ ४ प्रतिशत भाग)। (३) खेतिहर-मजदूर १४९ लाख (खेती पर निर्भर व्यक्तियो की सख्या का १६ प्रतिशत भाग एव स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का १ ६ प्रतिशत भाग) है। उनके अनुपार्जनकारी पोपितो की सख्या २४७ लाख और उपार्जनकारी पोपितो की सख्या ५२ लाख है। अतएव पोपित वर्ग सहित उनकी कुल सख्या ४४८ लाख है अर्थात् कुल जनसख्या का १२ ६ प्रतिशत भाग है। (४) जो लोग अपनी जमीन मे स्वय खेती नही करते और अन्यान्य खेती-योग्य जमीन की मालगुजारी पाते है। उनकी सख्या १६ लाख है (खेती पर निर्भर व्यक्तियो की सख्या का २ ३ प्रतिशत भाग और स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का १ ६ प्रतिशत भाग)। उनके अनुपार्जनकारी पोपितो की सख्या ३३ लाख और उपार्जनकारी पोपितो की सख्या ४ लाख है। अतएव पोपित-वर्ग सहित उनकी सख्या ५३ लाख, अर्थात् कुल जनसख्या का १ ५ प्रतिशत भाग है। इस प्रकार पोपित-वर्ग समेत खेती पर निर्भर लोगो की सख्या कुल २,४९१ लाख, अर्थात् कुल जनसख्या का ६९ ८ प्रतिशत भाग है।

खेती पर निर्भर न करनेवाले जो ३३४ लाख स्वावलम्बी व्यक्ति है, उनमें (१) दूसरो से काम करानेवाले व्यक्तियो, अर्थात् नियोजको (Employers) की सख्या ११ लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवी लोगो की सख्या का ३ ३ प्रतिशत भाग तथा कुल स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का १ १ प्रतिशत भाग) है। (२) जो लोग दूसरो के यहाँ नोकरी न कर स्वय ही स्वाधीन रूप से काम करते है, (नियोजको को छोडकर Self employed persons other than the employers), उनकी सख्या १६५ लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवी लोगो की सख्या का ४९ ४ प्रतिशत भाग तथा कुल स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का १५ ७ प्रतिशत भाग) है। (३) जो लोग दूसरो के यहाँ नियुक्त होकर काम करते है (Employers), उनकी सख्या

१४८ लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवियो की सख्या का ४४ ३ प्रतिशत भाग और कुल स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का १४ २ प्रतिशत भाग) है। (४) गैर-कृषि जमीन का भाडा पानेवाले, पेन्शन पानेवाले और अन्यान्य विविध वृत्तिवाले लोगो की सख्या १० लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवी लोगो की सख्या का ३ प्रतिशत भाग और कुल स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का ९ प्रतिशत भाग) है।

गैर-कृषिजीवी स्वावलम्बी व्यक्तियो मे कितने लोग क्या काम करते है, उसका विवरण नीचे दिया जाता है :

(१) चाय, काफी आदि की खेती, भेड, भैस आदि का पालन (प्रधान जीविका) एव मछली-उत्पादन तथा वन-सम्बन्धी कार्य आदि प्राथमिक उद्योगो (खेती ओर खान का काम छोडकर) मे नियुक्त लोगो की सख्या २४ लाख (७ ४ प्रतिशत) है। (२) खानो मे ५ ७ लाख (१ ८ प्रतिशत) लोग नियुक्त है। (३) चावल, आटा आदि की तैयारी, वस्त्र-उद्योग और चमडा-उद्योग मे ५५ १ लाख (१७ प्रतिशत) लोग लगे है। (४) धातु की वस्तुओ के उत्पादन और रासायनिक पदार्थो की तैयारी मे १२ ४ लाख (३ ८ प्रतिशत) लोग है। (५) अन्यान्य उत्पादन-उद्योगो मे २४ ३ लाख (७ ५ प्रतिशत) व्यक्ति नियुक्त है। (६) घर, सडक, पुल, रेलमार्ग, तार और टेलीफोन लाइन आदि के निर्माण-कार्य मे १५ ९ लाख (४ ९ प्रतिशत) लोग लगे है। (७) वाणिज्य मे ५९ लाख (१८ २ प्रतिशत) व्यक्ति है। (८) परिवहन-कार्य मे १९ लाख (५ ९ प्रतिशत) व्यक्ति जीविका पाते है। (९) स्वास्थ्य, शिक्षा और शासन-कार्य मे ३२ ९ लाख (१२ २ प्रतिशत) लोग नियुक्त है। (१०) शेष अन्य कामो मे ७४ ४ लाख (२३ ३ प्रतिशत) व्यक्ति लगे है। इनमे से (क) १,४२४ हजार लोग घरेलू नौकरी मे, (ख) ५६५ हजार व्यक्ति कपडे आदि धोने के काम मे, (ग) ५११ हजार व्यक्ति नाई के काम मे, (घ) ३६९ हजार व्यक्ति धर्मसम्बन्धी, दातव्य और जन-कल्याण के काम मे, (ङ) २३० हजार व्यक्ति कानून-पेशे मे, (च) २१४ हजार व्यक्ति आमोद-प्रमोद (चित्त-विनोद के काम) मे, (छ) ४५८ हजार व्यक्ति होटल, रेस्तराँ आदि मे, (ज) ३९ हजार व्यक्ति ललितकला, साहित्य और समाचार-पत्रो में लगे है। अर्थात् इन कामो मे कुल ३,८१० हजार व्यक्ति

नियुक्त है। इसके अतिरिक्त इस श्रेणी मे ऐसे अनेक लोग है, जो अपने को स्वावलम्वी तो वतलाते है, परन्तु क्या काम करते है, इसका विवरण नही देते।

कुल ३३४ लाख गैर-कृपिजीवी स्वावलम्वी लोगो पर ६७३ लाख अनुपार्जनकारी पोपितो और ६९ लाख उपार्जनकारी पोपितो का भार है। अतएव पोपित वर्ग समेत गैर-कृपिजीवियो की कुल सख्या १,०७६ लाख अर्थात् भारत की कुल जनसख्या का १० २ प्रतिशत है।

यहाँ एक ऐसे विपय पर विचार किया जा रहा है, जिसकी जानकारी भूदान-यज्ञ के लिए विशेप रूप से आवश्यक है। वह विपय है—वैसे लोगो की सख्या भारत मे कितनी है, जो खेती का काम तो करते है, पर है भूमिहीन। ऊपर उल्लिखित कृपि पर निर्भरशील व्यक्तियो की दूसरी श्रेणी मे जो लोग पूर्णत दूमरो की जमीन जोतते है, वे भूमिहीन है। तीसरी श्रेणी के लोग अर्थात् खेतिहर मजदूर पूर्णत भूमिहीन नही हो सकते। ऐसे कुछ खेतिहर मजदूर है, जिनके पास सामान्य परिमाण मे भूमि है। किन्तु, उनकी प्रधान जीविका खेती-मजदूरी है। दूसरी ओर, जिनकी जीविका प्रधानत गैर-कृपिगत कामो से, अर्थात् उद्योग, व्यवसाय आदि मे चलती है, वे भी सहायक धधे के रूप मे खेती का काम करते है। भारत के भूमिहीन किसान प्राय उक्त तीन प्रकार के है। उनकी कुल सख्या २१२ लाख है। जनगणना मे सगृहीत तथ्यो के आधार पर उनके उपार्जनकारी और अनुपार्जनकारी पोपितो की सख्या ५३२ लाख ठहरायी जा सकती है। इस प्रकार पोपित वर्ग समेत उनकी सख्या ७४४ लाख अर्थात् भारत की कुल जनमख्या का २० ६ प्रतिशत भाग है। जो लोग अपने हाथ से खेती करना चाहते है, उन्हे कुछ-न-कुछ जमीन मिलना उचित है। वैसा न होने पर भी इन ७४४ लाख लोगो को भूमि देनी होगी, यह भूदान-यज्ञ की न्यूनतम माँग है। भारत के कृपिजीवी श्रेणी-समूह और भूमिहीन कृपको का राज्यवार और विभागवार विवरण परिशिप्ट (ख) मे दिया गया है।

जीविका के मामले मे ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशो से तुलना करने पर भारत की स्थिति स्पष्ट हो जायगी। किन्तु, इन देशो के आँकडे इस रूप से सगृहीत और प्रकाशित होते है कि उनकी भारत के आँकडो से अत्यन्त सूक्ष्म-भाव से तुलना नही की जा सकती। तव मोटे तौर पर दो विपयो के वारे में

तुलनात्मक विचार करने की चेष्टा की जा रही है। प्रथमत स्वावलम्वी और पोपित व्यक्तियो के सम्वन्ध मे, और द्वितीयत विभिन्न श्रेणियो के उत्पादन-मूलक कार्यों मे नियुक्त लोगो के सम्वन्ध मे। (१) भारत मे प्रति हजार स्वावलम्वी व्यक्तियो (Self supporting persons) पर कुल २,५०४ पोषितो का भार है। अमेरिका मे एक हजार स्वावलम्वी व्यक्तियो पर १,५४७ पोपित व्यक्तियो का और व्रिटेन मे एक हजार स्वावलम्वी व्यक्तियो पर केवल १,२०७ पोपित व्यक्तियो का भार पडता है। इससे भारत की वेकारी की स्थिति स्पष्ट होती है। (२) प्रति हजार स्वावलम्वी व्यक्तियो मे से (क) ७०६ व्यक्ति कृषि, पशु-पालन, वन और मछली-उद्योगो मे भारत मे लगे है, जव कि अमेरिका और व्रिटेन मे इन उद्योगो मे क्रमश १२८ और ५० व्यक्ति प्रतिहजार लगे है, (ख) १५३ व्यक्ति भारत मे खनिज उत्पादन और वाणिज्य के काम मे लगे है, जव कि अमेरिका और व्रिटेन मे यह सख्या क्रमश ४५६ और ५५५ है, एव (ग) १४१ व्यक्ति भारत मे अन्यान्य कामो मे लगे है, जब कि अमेरिका ओर ब्रिटेन मे यह सख्या क्रमश ४१६ और ३९५ ठहरती है। इन सख्याओ से जो बात प्रकट होती है, वह यह है—(क) प्रथम कार्य है खाद्य-उत्पादन का। भारत मे एक हजार व्यक्तियो मे से ७५६ व्यक्ति खाद्योत्पादन मे लगे है और अपने उपयुक्त खाद्यान्नो के उत्पादन के अतिरिक्त केवल २९४ लोगो के उपयुक्त खाद्यान्न पैदा कर पाते है, जव कि अमेरिका मे प्रतिहजार व्यक्तियो मे से केवल १२८ व्यक्ति खाद्य-उत्पादन के काम मे लगे हैं और अपनी जरूरत के अलावा इतना अधिक उत्पादन कर लेते है कि देश के बाकी ८७२ व्यक्तियो की जरूरत पूरी होने के वाद भी पर्याप्त मात्रा में अनाज विदेशो को भेजने के लिए वच जाता है। व्रिटेन मे प्रतिहजार केवल ५० व्यक्ति खेती का काम करते है। यद्यपि इस देश मे विदेशो से खाद्यान्नो का आयात भारी परिमाण मे होता है, फिर भी हजार मे केवल ५० व्यक्ति ही खेती क`, यह कम विस्मय की बात नही है। इसके अतिरिक्त इससे यह भी प्रकट होता है कि भारत मे उद्योगो का पर्याप्त विस्तार न होने के कारण भूमि आदि खाद्योत्पादन के क्षेत्र मे लोगो की वडी भीड है। फलत खाद्य-उत्पादन का परिमाण भी वहुत अधिक नही वढ पाता है। यद्यपि भारत की कृषि-प्रणाली में पर्याप्त उन्नति होना शेप है, फिर भी उत्पादन के कार्य म

नियुक्त प्रतिव्यक्ति पर अभी बहुत कम उत्पादन होता है। इससे प्रकट होता है कि भारत मे बहुत-सी निकृष्ट भूमि मे भी खाद्योत्पादन किया जा रहा है। (ख) दूसरा काम उद्योग-वाणिज्य का है। अन्य दो देशो की तुलना मे भारत की औद्योगिक अवस्था कितनी शोचनीय है, यह इससे प्रकट होता है। (ग) तीसरा स्थान अन्य विविध सम्पत्तिमूलक और कल्याणमूलक कार्यों का है। भारत मे इन सब कामो मे इतने कम लोग लगे है कि अन्य दो देशो की तुलना मे भारत की दरिद्रता स्पष्ट रूप से समझ मे आ जाती है।

इस प्रसग में भारत और अन्य देशो की राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति वार्पिक आय कितनी है, यह जानने का कौतूहल हो सकता है। इस सम्बन्ध मे जितने आँकडे प्राप्त हुए है, वे नीचे दिये जाते है

देश	वार्पिक राष्ट्रीय आय (करोड रुपयो मे)	प्रतिव्यक्ति वार्पिक आय (पयो मे)
भारत (१९५३-५४)	१,०६,०००	२८३
पाकिस्तान ('४९)	१,६७१	२२३
बर्मा ('५२)	—	११८
लका ('५३)	—	५१४
जापान ('४२)	—	८२०
फिलीपाइन्स ('५०)	—	७८७
न्यूजीलैण्ड ('५३)	—	४,७२७
आस्ट्रेलिया ('५२)	—	४,२०७
ब्रिटेन ('५३)	१९,६२५	३,८५८
अमेरिका ('५३)	—	९,१९६
कनाडा ('५३)	—	५,६८८
फ्रास ('५२)	—	२,३२१
इटली ('५३)	—	१,४५३
नारवे ('५०)	—	२,३६९
स्वीडेन ('५३)	—	४,७७२
नीदरलैण्ड ('५३)	—	२,३३६

डेनमार्क ('५३)	—	३,५७२
स्विट्जरलैण्ड ('५३)	—	४,६८४

जहाँ अमेरिका और ब्रिटेन मे प्रतिव्यक्ति की वार्षिक आय क्रमश ९,१९६ और ३,८५८ रुपये है, वहाँ भारत मे प्रतिव्यक्ति की वार्षिक आय केवल २८३ रुपये है। भारत की भाँति तीव्र और भारी अर्थ-वैषम्य ससार मे कम है, यह बात सभी लोग जानते है। भारत की साधारण जनता कितनी गरीब है, इससे इसका सहज ही अन्दाज लग जाता है।

दरिद्र को भूमि चाहिए

कहा जाता है कि गाँव के अधिकाश गरीब आलसी और कर्मविमुख है। उनके बीच गृह-उद्योग का प्रचार करने के प्रयत्न विफल साबित हुए है। यह कथन ठीक नही है। तब क्या यह पूर्णत असत्य है ? नही, ऐसा भी नही है। बात यह है कि पहले ग्रामोद्योग पाने पर वे उसे सच्चे मन से ग्रहण नही करते। किन्तु, उन्हे जमीन दीजिये, वे पागल की तरह दौडे आयँगे, क्योकि वे पहले जमीन चाहते है। पहले भूमि-समस्या के हल होने पर अन्य सभी कामो की चेष्टाएँ सफल होगी, अन्यथा कोई सफल नही होगी। गरीबो को कुछ आलस्य आ गया है, यह सत्य है। किन्तु, इसके लिए वे जिम्मेदार नही है। अनिवार्य रूप से बहुत दिनो तक कर्महीन रहने के कारण कर्मविमुखता आलस्य के रूप मे परिणत हो जाती है। ग्रामीण दरिद्रो की भी यही स्थिति है। खेती करने से उनका आलस्य जाता रहेगा, किन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि उनके पास अपनी जमीन हो।

बेकारी की समस्या और उसका स्वरूप

जनगणना के विवरण मे १५ से ५५ वर्ष तक के लोगो को कार्यक्षम माना गया है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार सारे भारत मे इस उम्र के लोगो की सख्या २१ करोड २० लाख है। किन्तु, दरिद्रता के कारण इस देश में एक ओर १० वर्ष के बालक और दूसरी ओर ६५ वर्ष के वृद्ध को भी काम करना पडता है। इस हिसाब से भारत मे कार्यक्षम लोगो की सख्या २४ करोड ठहरती है। इनमे से साधारण तौर पर १४ करोड लोगो को काम मिल पाता

है। वाकी दस करोड लोगो को वेकार रहना पडता है। इन १४ करोड लोगो को भी पूरा काम नही मिल पाता। इनमे से १० करोड व्यक्ति खेती का काम करते है। जो लोग खेती का काम करते है, उनमे से अधिकाश को ६ महीने काम करना पडता है और वाकी ६ महीने वे वेकार वैठे रहते है। कारीगरो की सख्या ग्रामीण आवादी का दस प्रतिशत है। काम के अभाव मे उन्हे भी साल मे ६ महीने वैठे रहना पडता है। इस प्रकार हमारे देश मे वेकारी की समस्या कितनी विषम है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। किसानो मे से ७५ प्रतिशत के पास ५ एकड से कम जमीन है और उनकी वार्षिक आय वहुत कम है। रिजर्व वैक की जॉच-पडताल से पता चला है कि जिन किसानो के पास जमीन है, उनमे से आधे लोगो की वार्षिक आय तीन सौ रुपये से भी कम है और खेती का खर्च काटने के वाद यह रकम ६० रुपये या इससे भी कम हो जाती है। भूमि-सस्कार या कृषि की उन्नति के लिए वे सालभर मे २२ रुपये से ५२ रुपये तक भी खर्च करने मे समर्थ नही है।* ग्रामीण कारीगरो की भी वार्षिक आय वहुत कम है। ७५ प्रतिशत लोग खेती और गृह-उद्योग के कामो मे लगे है। उनकी यह दुरवस्था है। इस प्रकार इस देश मे वेकारी की समस्या जितनी वडी है, उतनी ही भयानक दरिद्रता की स्थिति उन लोगो की भी है, जो वेकार नही है।

प्राय सभी ग्रामोद्योगो के नष्ट होने के वाद भी जो दो-चार ग्रामोद्योग किसी प्रकार मरणासन्न स्थिति मे वचे हुए थे, स्वाधीनता-प्राप्ति के वाद उन्हे भी नष्ट करने के लिए स्वय देश के लोग ही उतारू है। उदाहरण के तौर पर ढेकी से चावल कूटने या गेहूँ पीसने की वात का उल्लेख किया जा सकता है। स्वाधीनता-प्राप्ति के वाद गॉवो के सम्पन्न लोग ग्राम-ग्राम मे हास्किग मशीन वैठाकर चावल तैयार करनेवाले हस्तचालित यन्त्रो का नाश कर रहे है। पश्चिम वगाल के ग्रामो मे गत वर्ष तक चावल तैयार करनेवाली कम-से-कम ३६ सौ हास्किग मशीने वैठायी गयी है। यदि एक मशीन प्रतिदिन ३० मन धान कूटे और वर्ष मे कम-से-कम तीन सौ दिन चले, तो भी इस हिसाव से वर्षभर मे कम-से-कम ढाई करोड रुपये, जो गरीव निस्सहाय लोगो के हाथ मे जाते, उससे

---

* श्री अण्णासाहव सहस्रवुद्धे के 'आयोजना और आर्थिक कार्यक्रम' शीर्षक निवन्ध से ये आँकडे लिये गये हैं।

वे वचित कर दिये गये है । देश की अन्यान्य धन सम्पत्ति भी अल्पसख्यक धनी पूँजीपतियो के हाथ मे जमा हो गयी है ।

पश्चिमी देशो से जो अर्थशास्त्र इस देश मे आया है, उसके कुप्रभाव ने सभी स्तर के लोगो की मनोवृत्ति को कलुपित कर दिया है। उसके कारण लोग स्वार्थी बन गये है । सस्तेपन के लोभ ने समाज को अव पतित कर दिया है। मनुष्य ने मानवता के कर्तव्यो की उपेक्षा करना सीख लिया है। शहर तो ग्रामो का शोपण करते ही हैं । ग्रामीण लोगो की दु ख-दुर्दशा की ओर शहरी लोग लेशमात्र भी दृष्टिपात नही करते। ग्रामो मे भी पडोसियो के मध्य जो पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिता थी, वह भी आज नष्ट हो गयी है। ग्रामो मे अव भी जो थोडे-से ग्रामोद्योग मृतप्राय अवस्था मे वच रहे हैं, उनके पारस्परिक सम्बन्धो पर ध्यान दीजिये । जो व्यक्ति घानी के तेल का उत्पादन करता हैं, वह जुलाहे का वुना हुआ कपडा नही खरीदता, वल्कि मिल का सस्ता कपडा खरीदता है। जुलाहा भी तेली से घानी का तेल न खरीदकर मशीन मे तैयार सस्ता तेल खरीदता है। जुलाहा ग्राम की गरीव विधवा के हाथो से तैयार किया गया चावल या आटा न ख ीदकर हास्किग मशीन मे तैयार अपेक्षाकृत सस्ता चावल या आटा खरीदता है। दूसरी ओर, विधवा भी जुलाहे का तैयार किया हुआ कपडा नही खरीदती—वह मशीन से तैयार ए कपड का व्यवहार करती है। तेली कुम्हार का तैयार किया हुआ मिट्टी का वर्तन न खरीदकर अल्युमिनियम के वर्तनो का व्यवहार करता है । दूसरी ओर, कुम्हार भी तेली द्वारा प्रस्तुत घानी के तेल का व्यवहार न करके मशीन मे तेयार तेल खरीदता हे । इस प्रकार के वहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं । तेली जुलाहे को, जुलाहा तेली को, हाथ से चावल कूटनेवाली तेली को, तेली हाथ से चावल कूटनेवाली को, कुम्हार तेली को और तेली कुम्हार को, इस प्रकार सव एक-दूसरे को मार रहे हे । ऐसा लगता है, मानो उन्होने एक 'पारस्परिक मारक-सघ' स्थापित कर लिया है और एक-दूसरे को मारने के लिए प्रयत्नशील हैं। सिर्फ यही नही, वे आत्मघात भी कर रहे है । जुलाहा अपने द्वारा तैयार कपडे को दूसरो के हाथ वेचेगा, किन्तु स्वय मिल का सस्ता कपडा खरीदकर पहनेगा। सूत कातनेवाला अपना कता सूत वेच देगा और अपने व्यवहार के लिए मिल का सस्ता कपडा ख ीदने के लिए सचेष्ट रहेगा ।

इन सब बातो का फल यह है कि आज बेकारी और गरीबी अपनी चरमसीमा पर पहुँच गयी है। गरीबी और असहायावस्था ग्रामो की साधारण स्थिति बन गयी है और जनसाधारण की क्रय-क्षमता मे कमी से अकालो का पडना स्वाभाविक-सा बन गया है।

आजकल समाचारपत्रो मे और लोगो के मुँह मे बेकारी की समस्या की चर्चा प्राय सुनने को मिलती है। उन लोगो के आलोच्य वे बेकार लोग कौन हैं ? जिन भूख-प्यास से मरणोन्मुख करोडो दरिद्र भूमिहीनो और कारीगरो की बात ऊपर कही गयी है, वे उनमे नही है। इनकी आलोचना का विषय है—शिक्षित या अर्धशिक्षित बेकार। उनकी बेकारी समाप्त करनी होगी। उनकी बेकारी देश के लिए एक समस्या है, इसमे सन्देह नही। किन्तु, देश की बेकारी-समस्या को दृष्टिगत रखते हुए केवल उन्हीकी बात को देश अथवा ससार के समक्ष उठाना भ्रांतिमूलक है। देश की आर्थिक उन्नति की सरकारी अथवा गैर-सरकारी आयोजनाओ मे उन कोटि-कोटि भूमिहीन गरीबो को स्थान नही मिलता। यदि स्थान मिलता भी है, तो सर्वथा गौण रूप मे। इस प्रकार जो देश की सबसे जरूरी समस्या है, वह आज शिक्षित समाज या सरकार की दृष्टि मे नही आती, यह विधि का परिहास ही तो है। विनोबाजी ने इसीलिए दु खी होकर कहा है "यदि सर्वात्मक आयोजना सम्भव न हो और यदि आशिक आयोजना ही तैयार होनी हो, तो इन कोटि-कोटि दरिद्रो को उसमे सर्वप्रथम स्थान मिलना चाहिए।" इसका कारण क्या है ? वे देश मे सबसे निम्न स्तर मे है, वे सबसे अधिक गरीब है, सबसे अधिक असहाय और निराधार है। यहाँ मै उदारचेता मार्क्स की एक उक्ति का उल्लेख करना चाहूँगा। उन्होने जिस किसी काल या जिस किसी देश को लक्ष्य कर यह बात क्यो न कही हो, परन्तु आज भी मरणासन्न भूमिहीन दरिद्रो का चित्र इसमे स्पष्ट हो उठता है : "The forest of uplifted arms demanding work becomes ever thicker, while the arms themselves become ever thinner" अर्थात् जीविकोपार्जन के लिए काम की माँग करनेवाले प्रसारित हाथो का वन निरतर घना होता जा रहा है, जब कि ये प्रसारित हाथ दिन-दिन क्षीणतर होते जा रहे है। इसलिए आज उनके कल्याण की व्यवस्था के क्रम मे कसौटी पर हर चीज की जाँच होनी चाहिए। इस प्रसग मे महात्मा

गाधी का एक बहुमूल्य कथन मानस-पट पर आता है : "I will give you a talisman Whenever you are in doubt .. apply the following test Recall the face of the poorest and the weakest man whom you may have seen and ask yourself, if the step you contemplate is going to be of any use to him Will he gain something by it ? Will it restore him to a control over his own life and destiny ? In other words, will it lead to Swaraj for the hungry and spiritually starving millions ?"— "मैं आपको एक मत्रपूत कवच दूंगा । जव कभी किसी विपय में मन्देह हो, तभी इसकी परीक्षा कीजिये । अपने देखे हुए किसी सर्वाधिक दरिद्र, सर्वाधिक असहाय व्यक्ति का चेहरा अपने मानस-पट पर लाइये और अपने-आपसे प्रश्न कीजिये कि आप जो कुछ करने जा रहे है, उससे उसका कुछ उपकार होगा या नही ? इसमे उसे क्या लाभ पहुँचेगा ? इससे वह अपनी जीवन-यात्रा और लक्ष्य-प्राप्ति मे क्या सहायता पायगा ? अर्थात् क्या इससे करोडो भूखे और आध्यात्मिकता से वचित लोगो का स्वराज आ सकेगा ?"

इस दृष्टि से भूदान-आदोलन उत्कृष्टतम व्यवस्था है, इसमे सन्देह नही है ।

गरीबी की समस्या के समाधान के उपाय

प्रश्न है कि यह दरिद्रता, शोपण और असह्य धन-वैषम्य किस प्रकार दूर होगा ? इसका उत्कृष्ट मार्ग क्या है ? इसका उत्कृष्ट मार्ग यही है कि जिन-जिन कारणो से गरीबी और शोपण की सृष्टि हुई है, उन्हे समाप्त कर दिया जाय। साराश यह कि उत्पादन के मौलिक सावन भूमि को अनुत्पादक धनी लोगो के हाथ से लेकर गरीब भूमिहीनो के हाथ मे दे दिया जाय—भूमि का उचित बँटवारा हो। इसके अतिरिक्त सामान तैयार करने के यत्र ग्रामीण कारीगरो को लौटा दिये जायँ। अनेक लोग सोचते है कि दूसरे काम देकर भी गरीबी की समस्या समाप्त की जा सकती है। वहुत-से लोगो की धारणा है कि मशीन-

वाले उद्योगों की सहायता से गरीबी और बेकारी की समस्या दूर हो सकती है। किन्तु, थोड़ी गम्भीरता के साथ विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सम्भव नहीं है। इस समय इस देश में जो बड़े कारखाने स्थापित हैं, वे पिछले सौ वर्षों में हैं, किन्तु इन सौ वर्षों में ये केवल २५ लाख व्यक्तियों को काम दे सके हैं। इंग्लैण्ड बड़े कल-कारखानों के सहारे धनी बना है, यह सही है। परन्तु, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अपने इन कारखानों में तैयार माल की बिक्री के लिए उसे अपने से ५ गुना बड़े क्षेत्र को अपने अधीन रखना पड़ा था। तभी वह कच्चा माल पा सका था और तैयार माल की खपत कर सका था। क्या आज ऐसा सम्भव है? भारत को यदि अपने बड़े कल-कारखानों की सहायता से गरीबी और बेकारी की समस्या का समाधान करना हो, तो उसे खरीदारों की खोज में मंगल आदि ग्रहों में जाना पड़ेगा। इस युग में संसार में कहीं भी उसे अपना माल बेचने का स्थान या अवसर नहीं मिलेगा। अमेरिका में भूमि-वितरण करने से वहाँ के प्रत्येक निवासी को १२ ६४ एकड़ जमीन मिलेगी। इसके अतिरिक्त वहाँ अपरिमित प्राकृतिक साधन हैं। रूस में एक व्यक्ति पर ३० ४६ एकड़ जमीन पड़ती है। आस्ट्रेलिया भारत की तुलना में बड़ा देश है, किन्तु उसकी जनसंख्या अब भी एक करोड़ से ऊपर नहीं पहुँची है। भारत में प्रतिव्यक्ति भूमि का परिमाण केवल २ २५ एकड़ है। जहाँ अमेरिका में प्रतिव्यक्ति कृषि-योग्य भूमि ७ ४१ एकड़ और रूस में ४ ४८ एकड़ है, वहाँ भारत में प्रतिव्यक्ति कृषि-योग्य भूमि केवल ९७ एकड़ है। जमीन को छोड़कर जीविकोपार्जन का और कोई विशेष उपाय भी भारतीय ग्रामों में नहीं है। भारत प्रयत्न करने पर भी अपने निवासियों का जीवन-स्तर अमेरिका या इंग्लैण्ड के मुकाबले में लाने में समर्थ नहीं होगा। भारत ठीक मार्ग पर चलकर ही अपनी गरीबी और बेकारी दूर कर सबके उचित जीवन-यापन की व्यवस्था कर सकेगा। दूसरी ओर, यदि भारत अमेरिका या इंग्लैण्ड का पदानुसरण कर आगे बढ़ेगा, तो वह और कुछ धन-कुबेरों की सृष्टि करने में भले ही समर्थ हो जाय, जनसाधारण की गरीबी और बेकारी दूर करने में किसी भी प्रकार सक्षम नहीं होगा, बल्कि उत्तरोत्तर वह अथाह जलराशि में डूबता जायगा। विनोबाजी ने कहा है "मैंने तो आयोजना-आयोग को यह बात बतला दी है कि यदि आप लोग देश के सभी लोगों के लिए आयोजना तैयार

करने मे समर्थ न हो, और केवल आशिक आयोजना तैयार करे, तो उसे गरीबो के लिए बनाये। इस प्रसग मे मै राजाजी का उदाहरण देना चाहता हूँ। राजाजी-जैसे प्रवीण राजनीतिज्ञ यदि नही होते, ो मद्रास की क्या स्थिति होती, जरा मोचने की वात है। उन्होने ग ीवो के दष्टिकोण को समझकर नियत्रण की व्यवस्था समाप्त कर दी। उनका सवसे वडा काम यही है कि वे अव वुनकरो की समस्या हाथ मे लेकर उनके हित के लिए विशेष उत्कठित है। मैने आयोजना-आयोग को यह बात वतला दी है कि यदि वडे कल-कारखानो की सहायता से सभी लोगो की वेका ी की समस्या हल हो जाय, तो म अपना चरखा जला दूंगा। परन्तु, मै जानता हू कि ग्रामोद्योगो के सिवा और किसी भी उपाय से इस समस्या का समाधान सम्भव नही होगा।" वे आगे कहते है: "लोग कहते है कि जमीन कहाँ से दूंगा ? वे दूसरे काम देने की वात कहते है। इस वात का कोई महत्त्व नही है। दूसरा काम देनेवाले आप कौन है ? माँ की गोद से सन्तान को छीनकर दूसरा कौन काम है, जो आप से दे ? ग्रामोद्योग भी तो उनके पास से छीन लिये गये है और छीने जा रहे है। आपने वुनकरो का काम छीन लिया—अव उन्हे कौन काम ? भूमि की माँग तो वुनियादी माँग है। भूमि पचभूतो मे अन्यतम है। उसे देने से आप इनकार नही कर सकते।" भारत को अपनी स्थिति और सामर्थ्य का विवेचन करने के वाद ही काम करना होगा। केवल जमीन का उचित पुनर्वितरण होने से ही ग्रामीणो का काम नही चलेगा। ग्राम-परिवार को मोटे तौर पर ५ एकड जमीन मिलने से ही स्वच्छद भाव से जीवन-यात्रा नही चल सके ी। कल-कारखानो के द्वारा जितने लोगो को काम मिलने की आगा सरकार ने की थी, उतने लोगो को काम नही मिल सका। अभी भी यह सम्भव नही हो रहा है और भविष्य मे यह सम्भव होगा, ऐसा भी नही जान पडता। अतएव अन्य किसी उपजीविका की व्यवस्था करनी हो ी। एकमा ग्रामोद्योगो से ही यह सम्भव हो सकेगा। वर्तमान स्थिति मे जो-जो उद्योग गृह-उद्योग के रूप मे चलाये जा सकते है, उनकी ही व्यवस्था उनके लिए करनी होगी। भोजन, वस्त्र ओर निवास की व्यवस्था के लिए जिन चीजो का उत्पादन ग्रामो मे हो सकता है, उनके उत्पादन की व्यवस्था गृह-उद्योगो के द्वारा करनी होगी। इसके अतिरिक्त जो कच्ची वस्तुएँ गाँव मे उत्पन्न होती है और जिनसे वने तैयार

माल की ग्राम-वासियो को आवश्यकता पडती है, उन सवकी ग्रामोद्योगो के द्वारा ही उत्पादन की व्यवस्था करनी होगी। आज वैज्ञानिको की दृष्टि विकार-ग्रस्त है। वह वडे उद्योगो की उन्नति की ओर लगी है। इस देश का कोई वैज्ञानिक, अन्य वाते तो जाने दीजिये, क्या केवल इतनी-सी वात के लिए भी सचेप्ट हे कि ढेकी मे 'वाल-वियरिंग' या अन्य कोई ऐसी वस्तु लगाकर उसका काम सहज और कम परिश्रम का वना दे। आज वैज्ञानिको को ग्रामोद्योगो के य ो की उन्नति के लिए अनिवार्य रूप से ध्यान देना होगा। हिंसा के साथ विज्ञान का अवैध सयोग हो गया है, इसीलिए ससार विनाश की ओर वढ रहा है। विज्ञान यदि जगत् का वास्तव मे कल्याण करना चाहता है, तो उसे अहिंसा को अपनाना पडेगा। ग्राम-उद्योग से उत्पन्न खाद्य-पदार्थ, वस्त्र आदि का मूल्य मिल मे उत्पादित वस्तुओ मे अधिक होने पर भी सभी दृष्टियो से अथवा सारे देश के कल्याण को देखते हुए शहर-वासियो को उन्हीको अपनाना पडेगा। ग्राम को गरीव और वेकार रखकर मिल मे उत्पादित सस्ता माल काम मे लाने से काम नही चलेगा। शहर ग्रामो का शोषण करने के लिए नही, वल्कि उनकी सेवा करने के लिए ही रहेगे।

सत्ता-विभाजन

किन्तु, इस सकल्प को सार्थक करने का उपाय क्या हे? अर्थात्, ग्राम की अर्थ-व्यवस्था मे ग्रामोद्योगो को उनका यथायोग्य स्थान पुन दिलाने का क्या उपाय है? जन-साधारण द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो की सरकार अभी प्रतिष्ठित हे। यदि सरकार दडशक्ति की सहायता से ग्राम-उद्योगो की पुन-प्रतिष्ठा करे, तो अच्छी वात हे। किन्तु, यह कैसे सम्भव होगा? भूमि-समस्या के समाधान के लिए 'जनशक्ति' के निर्माण के विषय मे पहले विचार किया जा चुका है। यदि समय पर हम उसकी उपलब्धि कर सके, तव दडनिरपेक्ष-भाव मे किस प्रकार गृह-उद्योगो की प्रतिष्ठापना सम्भव होगी, यह वात सहज ही समझ मे आ जायगी। गृह-उद्योगो की स्थापना के क्षेत्र मे भी समाज मे विचार जाग्रत कर इस सम्वन्ध मे समाजनिष्ठा की प्रतिष्ठा करनी होगी। सर्वोदय-सेवको का यही काम होगा। खादी आदि रचनात्मक कार्यक्रमो का अनुसरण कर वे इसी

विचारधारा को जाग्रत करने की चेष्टा करते आ रहे है। किन्तु, आज यह अनुभव किया जा रहा है कि भूदान-यज्ञ पूर्ण होने पर इन रचनात्मक कार्यक्रमो को सफल बना सकना सहजसाध्य होगा। समाज मे व्यापक रूप से विचारबोध जाग्रत होने पर उस विचार-बुद्धि से प्रेरित होकर काम करने की प्रवृत्ति को विनोबाजी ने 'विचार-शासन' कहा है। जनशक्ति को कार्यान्वित करने के लिए विचार-शासन प्रधान उपाय है। गृह-उद्योगो के क्षेत्र मे भी यही बात है। किन्तु, गृह-उद्योगो के प्रतिष्ठापन के मामले मे केवल विचार-शासन के द्वारा ही पूरी सफलता नही मिलेगी। मान लीजिये कि किसी एक ग्राम या अचल ने विचार-बुद्धि से प्रेरित होकर केवल घानी के तेल का व्यवहार करने की बात सोची और ग्राम की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए ग्राम मे पर्याप्त सख्या मे घानी चलानी चाही, किन्तु ग्राम में बाहर से मशीन से तैयार तेल का आना बन्द नही हुआ, तो गॉव का सकल्प सफल नही हो सकेगा। अतएव ग्राम को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि कौन चीज ग्राम मे आयेगी, कौन नही, इसका निर्णय वह स्वय करे। अपने सिद्धान्त के अनुसार कुछ वस्तुओ का ग्राम मे प्रवेश उसे निषिद्ध करना पडेगा। अत जनशक्ति को कार्यकारी बनाने के लिए दूसरा उपाय है—सत्ता-विभाजन। जब तक सारी शक्तियाँ एक जगह केन्द्रीभूत रहेगी और ग्राम-ग्राम मे शक्तियो का विकेन्द्रीकरण नही होगा, तब तक वास्तविक 'ग्राम-राज' की स्थापना सम्भव नही होगी। इसीलिए विनोबाजी कहते है "विचार-शासन और सत्ता-विभाजन, जनशक्ति के यही दो हथियार है। इसलिए हम यह चाहते है कि यदि कोई ग्राम ऐसा सोचे कि यहाँ बाहर का माल नही आयगा, तो उसे ऐसा करने का अधिकार प्राप्त रहे। यदि किसी ग्राम या अचल के निवासी यह तय करे कि उस अचल मे जो धान पैदा होगा, उसे कूटने के लिए चावल मशीन में नही भेजा जायगा और मशीन का कूटा हुआ चावल उस अचल मे नही आयगा, तो ग्राम को वैसा करने का अधिकार रहे और उस अधिकार का प्रयोग करने की उसमे क्षमता रहे।" यदि सरकार यह मान ले, तो यह अहिंसा के पक्ष मे अनुकूल साबित होगा। किन्तु, यदि वह ऐसा न करे, तब क्या उपाय है ? इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते है "सरकार यदि इसे स्वीकार न करे, तो हम जनसाधारण के पास जाकर कहेगे कि यह स्वराज असली स्वराज नही है। उस क्षेत्र मे हम प्रयत्नशील रहेगे

और सरकार के विरोधी रहने के बावजूद हम उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए तैयार होंगे।" विनोबाजी आगे कहते हैं "जब हम सत्ता-विभाजन की बात कहते हैं, तब शासनाधिकारी कहते हैं कि इस प्रकार एक बड़े राष्ट्र के भीतर छोटे-छोटे राष्ट्रों का रहना ठीक नहीं होगा। उनसे मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब तक शक्ति का विभाजन नहीं होगा—सत्ता का विभाजन नहीं होगा, तब तक सैन्य-बल का प्रयोग अनिवार्य रहेगा—यह वे समझ लें। इसी-लिए तो आज सेना के बिना काम नहीं चल पाता है और चलेगा भी नहीं। अतः चिरकाल के लिए यह निश्चय कर लीजिये कि सैन्य-बल से काम चलाया जायगा और सेना सदा सुसज्जित रखी जायगी। साथ ही यह बात भी कभी नहीं कहियेगा कि एक-न-एक दिन हम सैन्य-बल की आवश्यकता से मुक्त होना चाहते हैं। यदि किसी भी दिन सेना को छोड़ देना चाहते हैं, तो जैसा परमेश्वर ने किया है, वैसा ही कीजिये। परमेश्वर ने बुद्धि का विभाजन कर दिया है। प्रत्येक प्राणी को उसने बुद्धि दी है—बिच्छू को भी, साँप को भी, बाघ को भी और मनुष्य को भी। कम-बेशी सबको उसने बुद्धि दी है और यह कह दिया है कि तुम अपने-अपने जीवन के कार्य अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार करो। इसीलिए संसार इतने उत्तम ढंग से चल रहा है कि परमेश्वर विश्राम कर रहा है और इतना विश्राम कर रहा है कि लोगों को यह सन्देह भी हो जाता है कि परमेश्वर है अथवा नहीं? हमारे राष्ट्र को भी इस भाव से चलना चाहिए कि यह शंका उत्पन्न हो जाय कि राष्ट्रशक्ति शेष है भी या नहीं? लोग जब ऐसा कहेंगे कि भारत में राष्ट्रशक्ति नहीं प्रतीत होती है, तब यह समझा जाना चाहिए कि हमारा राज्य-शासन अहिंसक है। इसीलिए हम ग्रामराज की बात कहते हैं और इसीलिए हम चाहते हैं कि ग्रामों को ही नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त हो अर्थात् ग्रामवासी नियंत्रण का अधिकार अपने हाथ में लें। जनशक्ति के सम्बन्ध में यह भी एक बात उठी है कि ग्रामवासी अपने पाँवों पर खड़े होकर यदि यह निश्चय करें कि अमुक माल का हम उत्पादन करेंगे और वे सरकार से यह माँग करें कि अमुक माल हमारे यहाँ नहीं आने दिया जाय और यदि सरकार उसका आयात बन्द न कर पाये, चाहते हुए भी बन्द न कर पाये, तो उसका विरोध करने का साहस जुटाना होगा।"

भूदान-यज्ञ—प्रेम का मार्ग

अन्य देशो में हिंसा के मार्ग से धनी और निर्धन की विषमता दूर की गयी है। भूदान-यज्ञ द्वारा प्रेम के मार्ग से यह विषमता दूर की जायगी। धनी लोगो का धनीपन और गरीबो की गरीबी दूर की जाय—यही भगवान् के प्रेम की रीति है। इस प्रसग मे विनोबाजी ने कहा है "भगवान् सबको समान बनाना चाहते है। यह उनका प्रेम है—द्वेष नही। मैं जो काम करता हूँ, वह भगवान् का काम है। मैं बडो का अहकार दूर करना चाहता हूँ और छोटो को ऊँचा उठाना चाहता हूँ। बडो से जमीन लेकर भूमिहीन गरीबो को आजीविका के लिए देना चाहता हूँ। इसका मतलब यह नही लगाया जाना चाहिए कि बडो के साथ मेरी शत्रुता है। मै तो उनकी सम्मान-वृद्धि करना चाहता हूँ। उनके पास से जमीन लेकर उन्हे गरीबो का पवित्र प्रेम दिलवाना चाहता हूँ। समाज मे विषमता रहने के कारण धनी और निर्धन, दोनो का अनिष्ट हो रहा है और सब मिलाकर देश की क्षति हो रही है। अन्य देशो मे इस विषमता को दूर करने के लिए धनी लोगो की हत्या की गयी है। रूस में हजारो धनिको की हत्या की गयी और तेलगाना मे सैकडो धनिको की हत्या की गयी। मैं भारत मे बिना हत्या या खून-खराबी के यह काम पूरा करना चाहता हूँ। मेरा काम प्रेम के मार्ग से होगा। भगवान् की यही इच्छा है कि सुख और दु ख का हम आपस मे बँटवारा कर लें। यदि सब लोग अपने-अपने स्वार्थ की चिन्ता करेंगे और अपने पडोसी के साथ सद्व्यवहार नहीं करेंगे. तो ग्राम ग्राम नही, श्मशान हो जायगा, जगल हो जायगा।

भूमि-समस्या के समाधान मे अहिंसा के मार्ग का विचार

भलीभाँति समझाने से मनुष्य विचार को ग्रहण कर सकेगा और जब वह उसे ग्रहण कर लेगा, तब तदनुकूल आचरण करेगा। यह विश्वास ही अहिंसा का आधार है। मनुष्य पशु नही है। पशु को विचार समझाने से वह नही समझता। मनुष्य और पशु के बीच यही तो अन्तर है। पशु को भगवान् ने स्वाधीन विचार-शक्ति नहीं दी है। मनुष्य को उसने विचार-शक्ति दी है। पशु को भगवान् ने जितनी बुद्धि और चेतना दी है, तदनुसार ही वह आचरण करेगा—चाहे वह अच्छा हो या बुरा। किन्तु, मनुष्य को भगवान् ने अपरि-

मित विचार-शक्ति दी है। इस विचार-शक्ति में ही आत्मज्ञान की शक्ति भी निहित है। मनुष्य अपने आत्मज्ञान को अनन्तगुण-सम्पन्न बना सकता है। अपने को अपने शरीर तक ही सीमित मानना आत्मज्ञान की सर्वाधिक सकुचित अवस्था है। सारे ससार को, सारी सृष्टि को अपना ही विस्तार मानना आत्म-ज्ञान की पूर्ण विकसित अवस्था है। आत्मज्ञान जितना ही विकसित होगा, हृदय में उतना ही प्रेम का विकास होगा और जीवन उतना ही प्रेममय होगा। इस प्रेम की शक्ति से ही हृदय-परिवर्तन सम्भव होता है। हमारा जीवन जितना ही प्रेममय होगा, आत्मज्ञान का विकास भी उतना ही सहज होगा। इसीलिए प्रेम को जीवन का मूलतत्त्व कहा जाता है। आत्मज्ञान और प्रेम-भाव का विकास ही भूदान-यज्ञ का मूल तत्त्व है।

"क्या अहिंसा के मार्ग से भूमि-समस्या का समाधान सम्भव है?" विनोबाजी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है "यदि यह सत्य हो कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में ईश्वर विराजमान है और हमारी श्वास-प्रश्वास क्रिया का नियमन वही करता है, और सारी प्रेरणा वही देता है, तो मेरा विश्वास है कि सबका हृदय-परिवर्तन कर सकना निश्चय ही सम्भव होगा। यदि कालात्मा तैयार हो और वह परिवर्तन करना चाहे, तो परिवर्तन अवश्य होगा। मनुष्य चाहे अथवा न चाहे, जब वह प्रवाह में पड जाता है, तब उसकी तैरने की शक्ति किसी काम नहीं आती—उस समय प्रवाह की शक्ति ही कार्यकारी होती है। उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में परिवर्तन लाने के लिए काल-प्रवाह सहायक के रूप में कार्यशील होता है। आज तो सबकी भूमि उत्तप्त है। इस उत्तप्त भूमि को दो बूँद प्रेम-जल से सींचने का काम यदि भगवान् मेरे द्वारा करा लेना चाहते हैं, तो मैं आनन्द के साथ वह काम करूँगा।" इस प्रसग में वे और भी कहते हैं "लोग पूछते हैं कि प्रेम के रास्ते, अहिंसा के रास्ते सफलता मिल सकेगी क्या? जिनका सारा जीवन परिवार और परिजनों के स्नेह और प्रीति के बीच बीतता है, वे प्रेम की शक्ति में कैसे सन्देह करने लगते हैं, इसी पर मुझे आश्चर्य होता है। हमारा जीवन ही तो प्रेममय है। जिस प्रकार सत्य जीवन का मूल-तत्त्व है, उसी प्रकार प्रेम भी जीवन का मूलतत्त्व है। असली बात यही है कि दुर्जन कोई नहीं है। जिन्हें हम दुर्जन कहते हैं, वे दुर्जनता के प्रवाह में तीव्र गति से प्रवाहित होते रहते हैं और इसीलिए उनमें भी परिवर्तन लाया जा सकता

है। सद्‌गुण आत्मा मे रहता है—इसीलिए वह परिवर्तनशील हे। सत्य एव प्रकाश भावरूपी है और असत्य एव अन्धकार अभावरूपी। प्रकाश के समक्ष अन्धकार नही टिक सकता।"

भूदान-यज्ञ मे अब तक चालीस लाख एकड से अधिक भूमि मिल सकी है। समस्या की तुलना मे कम होने पर भी भूमिवालो ने इतने थोडे समय में नि स्वार्थ भाव से इतने अधिक परिमाण मे भूमि प्रेम-सहित भूदान-यज्ञ मे दी है, यह एक अप्रत्याशित बात है। ससार मे या इस देश मे भूमिदान कोई नयी चीज नही है, प्राचीनकाल से लोग भूमिदान करते आ रहे है। किन्तु, इतने दिनो तक लोगो ने जो भूमिदान किया हे, वह इस मनोभाव से कि भूमि उनकी है अर्थात् भूमि के मालिक वे ही है। और, वह भूमिदान किया गया हे मन्दिर, मस्जिद या किसी दातव्य प्रतिष्ठान को। 'भूमि भगवान् की है। भूमि सबकी है। भूमि व्यक्तिगत सम्पत्ति है—इस विचार को त्याग कर भूमिहीनो के लिए भूमिदान करना कर्तव्य है। दरिद्र भूमिहीनो को उनका अधिकार लोटाना कर्तव्य है।'—इस आवेदन पर भूमिहीनो के लिए भूमिदान का ससार मे यह पहला उदाहरण है। इतने थोडे समय मे ऐसे क्रातिकारी दान मे इतनी भूमि एकत्र होने से अहिसा के मार्ग से सफलता-प्राप्ति का इशारा मिलता है। अहिसा की क्रिया, प्रेम की क्रिया लोक-चक्षु के अन्तराल मे रहती है और अपूर्व सफलता के साथ जब वह प्रकाश मे आती हे, तब ससार चमत्कृत हो उठता है। उडीसा मे सम्पूर्ण ग्राम-दान का जो अपूर्व दृश्य देखने मे आया है और उसके द्वारा भूमि-क्राति का द्वार जिस प्रकार खुला है, उससे अहिसात्मक पद्धति की महती सम्भावनाएँ प्रकट होती है। आज भी जो भूदान-यज्ञ चल रहा हे, वह अप्रत्याशित होने पर भी मनुष्य के गणित की ही क्रिया है। अभी तक भगवान् के गणित की क्रिया सामने नही आयी है। वे अदृश्य क्रिया कर रहे है। उनकी क्रिया जब प्रकाश मे आयगी, तब भूदान-यज्ञ की अपूर्व सफलता से ससार चौक पडेगा।

हिंसात्मक मार्ग का विचार

भूमि-समस्या के समाधान तथा आर्थिक समता-स्थापना के लिए हिसा का आश्रय ग्रहण करने की बात जो लोग सोचते है, उनके मन मे यह बात है कि मनुष्य आज जैसा है, सदा वैसा ही रहेगा। किन्तु, इससे पूर्व जो विचार किया

गया है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि इस कथन का कोई आधार नही है। मनुष्य विचारशील प्राणी है। सद्विचार समझाने से वह समझेगा और आज नही, तो कल वह तदनुसार आचरण करेगा। मनुष्य पशु नही है। अतएव हिंसा का आश्रय लेने की कोई आवश्यकता नही है। किन्तु, तब भी यदि हिंसा का पथ ग्रहण किया जाय, तब क्या उससे समस्या का समाधान सम्भव होगा? यदि यह भी मान लिया जाय कि हिंसात्मक मार्ग से धनिको से जमीन छीनकर गरीबो को दी जा सकती है, तब भी उससे केवल भूमि या लक्ष्मी मिलेगी, प्रेम नही मिल सकेगा—हृदय-परिवर्तन नही हो सकेगा। विचार-क्रांति नही आयगी। हृदय-परिवर्तन या विचार-क्रांति के बिना जहाँ भूमि धनी लोगो के हाथ से छीनी जायगी, वहाँ प्रति-विप्लव या हिंसात्मक प्रतिक्रिया की सम्भावना शेष रह जायगी। इसके अतिरिक्त हिंसा के द्वारा किसी समस्या का समाधान करने से एक समस्या के स्थान पर अन्य अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती है। उससे समस्या का वास्तविक समाधान नही होता, बल्कि समस्या और भी जटिल बन जाती है। हिंसा की निष्फलता की बात समझाते हुए विनोबाजी कहते है परशुराम पृथ्वी से क्षत्रियो को निर्मूल कर देने के लिए चले, किन्तु उस चेष्टा मे वे स्वय क्षत्रिय बन गये। इससे हिंसा की निष्फलता का सकेत मिलता है। और भी एक दृष्टि से परशुराम के उपाख्यान मे हिंसा की विफलता का सकेत मिलता है। परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियो से हीन किया था। एक बार सभी क्षत्रियो की हत्या कर देने के बाद दूसरी बार हत्या करने की आवश्यकता क्यो पड़ेगी? इसका अर्थ यह है कि एक बार भी पृथ्वी क्षत्रियो से हीन नही हुई या नही हो सकती है। इससे हिंसा की निष्फलता प्रकट होती है। हिंसा के मार्ग से समस्या का समाधान सफल हो अथवा नही, आज की स्थिति मे इस देश मे भूमि-स्वामियो के हाथ से छीनकर भूमिहीनो को स्थायी रूप मे भूमि प्राप्त करा सकना सम्भव है क्या? तेलगाना मे जमीन्दारो-मालगुजारो के हाथ से जमीन बलपूर्वक छीनकर गरीब किसानो को दी गयी थी, किन्तु वही जमीन पुन उनके हाथ से छीनकर भू-स्वामियो को दे दी गयी है और इस प्रकार उन्हे काफी क्षति पहुँची। जब तक सुदृढ सरकार का अस्तित्व रहेगा, तब तक हिंसा के मार्ग से जमीन छीनकर स्थायी भाव से रख सकना सम्भव नही होगा। इसीलिए विनोबाजी ने कम्युनिस्टो के लिए

कहा है : वे लोग यदि अपने मार्ग से गरीबो को भूमि दिलाना चाहते है, तो वे छोटी-छाटी हत्या, हिंसा, अग्निकाण्ड आदि को छोडकर पूर्ण रूप से युद्ध (Total war) के लिए प्रयत्नशील हो। इस युद्ध मे यदि देश कम्युनिस्टो के अधीन हो जायगा, तो उनका उद्देश्य सिद्ध हो जायगा। अन्यथा, जगह-जगह हत्या, अग्निकाण्ड आदि के द्वारा सामयिक रूप से कुछ कार्य सिद्ध होने पर भी निकट भविष्य मे ही अपेक्षाकृत अधिक बर्बादी के साथ उनके हाथ से जमीन चली जायगी, इसमे सन्देह नही है। समय, अवस्था, इतिहास और सुदृढ सस्कृति किसी देश मे विप्लव या क्राति की रूपरेखा को नियमित और नियन्त्रित करती है। रूस मे तत्कालीन अवस्था मे जिस प्रकार जिस ग से विप्लव का सघटन हुआ, वैसा ही भारत मे भी होगा—ऐसी बात नही है। काल, अवस्था, इतिहास और सस्कृति यहाँ विपरीत दिशा मे सकेत करती है। भारत की क्राति भारतीय ढग पर सगठित होगी। विनोबा इस विषय मे कहते है "विप्लव (क्राति) का अर्थ समाजवादियो से अधिक मै समझता हूँ। क्राति की प्रकृति देश और काल के अनुसार परिवर्तित होती है। मार्क्स ने जैसा लिखा है, वैसे ही सभी देशो मे और सब समय क्राति होना सम्भव नही है। भारत की क्राति भारत के अपने मार्ग से होगी। भारतीय सस्कृति का अध्ययन कर मै स सिद्धात पर पहुँचा हूँ कि अन्यान्य देश अनेक मामलो मे भारत से शिक्षा ग्रहण कर सकते है। मै जिस क्राति के लिए सचेष्ट हूँ, वह भारतीय सस्कृति के अनुकूल है। यह किसी साँचे मे ढली हुई उग्रपन्थी क्राति नही है। इस चिन्तन-धारा को अच्छी तरह ग्रहण कर हमारे कार्यकर्ता भूदान-यज्ञ के काम मे अपने को लगाये—मै यही चाहता हूँ।" समाज के एक व्यक्ति के लिए अन्य किसी व्यक्ति को समाप्त कर दिया जाय, यह कदापि उचित नही है—भारतीय सस्कृति यही कहती है। इसी सस्कृति के आधार पर भारत मे क्राति आयेगी।

साधारण तौर पर ऐसा समझा जाता है कि मार्क्स के 'डायलेक्टिकल मेटेरियलिज्म' के सिद्धान्त को स्वीकार कर साम्यवाद के सिद्धान्त और क्राति की सृष्टि करने के लिए हिंसा का आश्रय अनिवार्य रूप से ग्रहण करना पडता है। किन्तु विनोबाजी ऐसा नही मानते। इस सम्बन्ध मे उन्होने जो कुछ कहा है, उससे अनेक लोगो की आँखे खुल जायँगी, इसमे सन्देह नही। उन्होने कहा है "डायलेक्टिकल मेटेरियलिज्म (Dialectical Materialism) को मै

'वैतर्किक वस्तुवाद' नाम देता हूँ। 'भौतिकवादी' नाम उपयुक्त नहीं है। भौतिकवादी उसे कहते हैं, जो केवल खाने-पीने और आमोद-प्रमोद करने को ही जीवन का सार समझता है। वितर्कवाद (Dialectics) केवल एक विचार-पद्धति है। उससे क्रांति के सिद्धान्त का उद्भव हो सकता है—उपक्रांति का सिद्धान्त भी उत्पन्न हो सकता है। खट्टे नींबू के पेड़ में यदि मीठे फल की कलम लगा दी जाय, तो उससे खट्टा-मीठा फल उत्पन्न होगा। थिसिस, ऐण्टिथिसिस और सिन्थिसिस (Thesis, Antithesis, Synthesis)—ये ऐसी ही क्रियाएँ हैं। इस सिद्धान्त से क्रांति के पक्ष में कैसे उत्साह मिलेगा और धनी लोगों की क्यों हत्या की जाय ी, यह मैं समझ नहीं पाता।

"प्रत्येक वस्तु में गुण और दोष, दोनों ही विद्यमान हैं। दोषपूर्ण वस्तु पर गुणवाली वस्तु का आक्रमण होने से एक तीस ी वस्तु उत्पन्न होती है, जिसमें उन दोनों के दोष दूर हो जाते हैं और ोनों के ही ुण उसमें आ जाते हैं। आज समाज में यह विचार चालू है कि हर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार पैसे मिलने चाहिए। इसमें एक गुण यह है कि इससे काम करने में उत्साह मिलता है। किन्तु, इसमें एक बुराई भी है और वह यह कि इससे दुर्बलों का सर्वनाश हो जायगा। इसीलिए इस विचार के विरोध में समता का विचार खड़ा किया जाता है। किन्तु, इसमें भी एक यह दोष है कि आलसी लोगों को बढ़ावा मिलता है। सब धन एक व्यक्ति के हाथ में जमा करने की जो क्रिया चल रही है, उसकी प्रतिक्रियास्वरूप आत्यन्तिक समता की बात उठी है। किन्तु, इसमें भी दोष है। इसीलिए इसका फल यह होगा कि एक तीसरे विचार का उदय होगा, जिसमें इन दोनों के ही ग्राह्य अंग तो रहेंगे, त्याज्य अंश नहीं। इसके बाद यदि इस नये विचार में भी दोष रह जायगा, तो उसके विरोध में एक अन्य विचार-धारा खड़ी हो जायगी। तब फिर यही प्रक्रिया शुरू होगी। इस प्रकार वितर्कवाद एक विचार-प्रणाली मात्र है। इससे किसी विशिष्ट आचार-प्रणाली का उद्भव होगा, ऐसी बात नहीं है—यद्यपि मार्क्स ने ऐसा कहा है। उनके विचार में साम्यवाद का सिद्धान्त वितर्कवाद की विचार-प्रणाली से ही उद्भूत हुआ है और इस विचार-प्रणाली से केवल साम्यवाद ही उत्पन्न हो सकता है, और कुछ नहीं। किन्तु, एक विचार-प्रणाली से एक विशिष्ट सिद्धान्त का जन्म अनिवार्य है, यह बात मैं नहीं मानता।"

अपहरण (Expropriation) के द्वारा रूस आदि देशो मे क्राति आयी है। किन्तु, भारत की क्राति अपरिग्रह (Non-possession) की दीक्षा ग्रहण करने से आयगी। इस सम्वन्ध मे वोलते हुए विनोवाजी ने जिस गम्भीर तत्त्व की व्याख्या की है, वह यह है · "मै जिस विचार-धारा को चलाना चाहता हूँ, उसके विरोध मे आज समाज मे जो विचार प्रचलित है, उसको अपहरण कहते हैं। जो लोग 'अपहरण' के विचार मे विश्वास करते है, उनकी यह धारणा है कि व्यक्ति का अस्तित्व समाज के लिए है और समाज के स्वार्थ के लिए व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण करना दोष नही है, वल्कि व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण करने मे जो वाधा देना चाहते है, उनकी चिन्तन-धारा भ्रान्त है। आज इस विचार की ओर ससार के कई देश आकृष्ट है। इसके विरोव मे मैने 'अपरिग्रह' का विचार खडा किया है। साधारण तौर पर ऐसा समझा जाता है कि अपरिग्रह गाधी, विनोवा आदि जैसे सन्यासियो के लिए है और जनसाधारण के लिए अपरिग्रह नही है, लोभ है। सन्यास को श्रेष्ठ आदर्श-स्वरूप माना जाता है। किन्तु गार्हस्थ्य-जीवन मे भी अपरिग्रह का आचरण किया जाता है। धर्म-विचार को इस प्रकार खण्डित करने से उसका फल भी केवल सकुचित परिमाण मे मिलता है। इसका फल यही निकलता है कि निर्लोभी लोभी के विरुद्ध खडा होने पर स्वय लोभी वन जाता है। परशुराम क्षत्रियत्व दूर करने जाकर स्वय क्षत्रिय वन गये—यह दृष्टात तो हम लोगो के पास ही है। जिसका विरोध करना है, उसके शास्त्र को यदि हम मानेगे, तो उसके स्थूल रूप को तो नष्ट करने मे सक्षम होगे, परन्तु उसके सूक्ष्म रूप को हम अमर वनाकर रख देगे। आज दुनिया मे लोभ और परिग्रह का राज्य चल रहा है। परिग्रह के आसपास ऐसे कानून खडे किये गये हैं, जिनसे परिग्रह अन्याय है, ऐसा अनुभव नही होता। चोरी को हम अपराध मानते है, किन्तु जो व्यक्ति सग्रह करके चोरी की प्रवृत्ति की सृष्टि करता है, उसके काम को हम चोरी नही मानते। उपनिषद् के एक उपाख्यान मे राजा कहता है कि 'मेरे राज्य मे कोई चोर नही है—कृपण भी नही है।' कृपण ही चोर की सृष्टि करता है। चोर को हम जेल भेज देते है और चोर के जन्मदाता को मुक्त रखते है और वह प्रतिष्ठा प्राप्त कर गद्दी पर आसीन रहता है। यह कैसा विचार ?

गीता में भी ऐसे व्यक्ति को चोर कहा गया है, किन्तु आज तो हमने गीता को सन्यासियों का ग्रन्थ मानकर त्याग दिया है।"

भूमि का प्रश्न अभी तक क्यों नहीं उठा ?

जमीन का मालिक कह सकता है कि दूसरे लोग अपने सचित अर्थ—व्यवसाय-वाणिज्य, उद्योग-धधे, धन-घर, बैंक आदि—में लगे रहकर लाभ उठा रहे है। उसी प्रकार मै अपने सचित अर्थ, भूमि में लगा हूं। इसमे मैंने क्या दोष किया ? सभी भूमि-स्वामियों ने अन्यायपूर्ण ढग से ही भूमि अर्जित की है, ऐसा नही है। यह प्रश्न भी यहाँ नही आता। न्यायपूर्वक हो या अन्यायपूर्वक, जो भूमि उसके हाथ मे आयी है, वह भूमि उनकी नही है—वह भगवान् की है। उस भूमि पर सबका समान अधिकार है। किन्तु, कई युग बीत गये, इतने दिनो तक यह प्रश्न उठा क्यो नही ? ऐसा होने पर तो वे इस तरह भूमि-सग्रह नही करते। जब तक लोक-सख्या कम थी और भूमि अधिक थी, तब तक यह प्रश्न उठाने की आवश्यकता नही समझी गयी और यह प्रश्न नही उठा। आज लोगो की सख्या अधिक है और जमीन कम है। गरीबी से सारा समाज आक्रात हो गया है। इसीलिए यह प्रश्न उठ रहा है। स्थिति के कारण यह बुनियादी सत्यबोध समाज में जाग्रत हुआ है। अमेरिका मे यह प्रश्न नही उठा। आस्ट्रेलिया में भी यह प्रश्न नहीं उठा। वह इसीलिए कि इसकी आवश्यकता वहाँ नही है। इग्लैण्ड में भी अभी यह प्रश्न नही उठा है, किन्तु इसका कारण दूसरा है। वहाँ भूमि के अभाव के कारण उत्पन्न गरीबी को अन्य उपायो से दूर करने का सुयोग आया था। किन्तु, भारत मे आज इस सत्य को स्वीकार करने और उसे कार्य-रूप में परिणत करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय नही है। इसीलिए आज यह प्रश्न बहुत आवश्यक है।

'दान' शब्द पर आपत्ति

गरीबो के प्रति दया-भाव रखना, उनका उपकार करना पुण्य कर्म माना जाता है। साधारणत लोग पुण्य कर्म से क्या समझते है ? जो काम मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यो मे स्थान नही रखता और जिसे मनुष्य दया-परवश होकर दूसरे के उपकार के लिए करता है—ऐसा कोई काम करने से

पुण्य अर्जित होता है, ऐसा माना जाता है। इसमे यह मनोभाव निहित है कि गरीबी और दु ख कष्ट के लिए धनी लोग बिलकुल उत्तरदायी नहीं है और गरीबी समाप्त करने की उन पर कोई जिम्मेदारी नही है। इसका अर्थ यह हुआ कि धनियो से कुछ पाने का गरीबो को अधिकार नहीं है। किन्तु, वस्तुत अमीरी और गरीबी, दोनो का ही जन्म शोषण से हुआ है। कोई व्यक्ति दूसरे की स्वाभाविक आजीविका का अधिकार छीन लेता है, इसीसे वह धनी हो जाता है और दूसरा गरीब। इसलिए गरीबो के अधिकारपूर्ण दावे से धनिको से जमीन लेनी होगी। धनी से दान देने के लिए कहना और गरीब को उसे ग्रहण कराना धनी लोगो की कृपा ग्रहण करने के अतिरिक्त और कुछ नही है। इससे गरीबो की अप्रतिष्ठा ही होती है। यह तो भिक्षा के आधार पर धनी वर्तमान समाज की रीति है। इसीलिए महाभारत का 'दरिद्रान् भर कौन्तेय', ईसाई मतवालो की 'चैरिटी' (Charity) अथवा मुसलमानो का 'जकात' गरीब अभावग्रस्त लोगो के लिए आशा का कोई सदेश नही देता, क्योकि भिक्षा से प्राप्त होनेवाला यह अन्न ऊपर से आता है। समाज के निम्न स्तर मे जो दुर्दशाग्रस्त है, उनका हाथ फैलाना किसी दिन समाप्त नही होता है। इसके पीछे उत्पीडन-यत्र चुपचाप काम कर जाता है। इसीलिए 'भूदान-यज्ञ' मे 'दान' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की जा सकती है। 'भूदान-यज्ञ' तो भूमिहीन गरीबो के अधिकार के दावे पर भूमि देने का आह्वान है। तब यहाँ 'दान' शब्द का प्रयोग क्यो किया गया है ? यज्ञ, दान और तप—ये तीन शब्द भारत के सास्कृतिक क्षेत्र मे महान् स्थान रखते है। इनके प्रयोग से भारतीयो को बडे काम करने मे जितनी प्रेरणा मिलती है, उतनी प्रेरणा अन्य किसी शब्द के प्रयोग से नही मिलती। इसीलिए विभिन्न कालो मे इन शब्दो के अर्थ का विस्तार हुआ है। गीता मे 'यज्ञ' शब्द का 'परोपकार' या 'नि स्वार्थ सेवा' के अर्थ में प्रयोग हुआ है और इस प्रकार इसके अर्थ का विस्तार हुआ है। इसे 'शब्द-क्राति' कहा जाता है। महात्मा गाधी ने भी वर्ण-व्यवस्था, ट्रस्टीशिप आदि शब्दो का अभिनव अर्थों में प्रयोग करके इन शब्दो के भावार्थ मे क्राति ला दी है। इसी प्रकार शास्त्रज्ञ विनोबाजी ने 'दान' शब्द का परित्याग न करके उसका 'भूदान-यज्ञ' मे क्रातिकारी अर्थ मे प्रयोग किया है। शकराचार्य ने कहा है. "दान सविभाग"। दान का अर्थ है सम्यक् वितरण या सगत वितरण। इसी अर्थ मे

'भूदान-यज्ञ' में 'दान' शब्द का प्रयोग हुआ है। दान का अर्थ यही है कि अपने पास जो कुछ है, उसका उचित विभाजन किया जाय। इस प्रकार जो दाता दान देते हैं, उनका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। 'दान' का जो प्रचलित अर्थ 'स्मृति' मे लिखा है, वह है "स्वस्वत्वध्वंसपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्त्यनुकूलत्याग दानम्" अर्थात् अपना स्वत्व नष्ट करके दूसरे के स्वत्व की सृष्टि के लिए देने को दान कहते हैं। 'दान' के इस प्रचलित अर्थ मे इसका व्यवहार नही हुआ है। विनोबाजी कहते हैं कि दान का जो प्रचलित अर्थ है, वह दान के वास्तविक अर्थ का विकृत अर्थमात्र है। दान का वास्तविक अर्थ है समविभाग। वे कहते हैं "मै भिक्षा-स्वरूप दान नही चाहता। दान शब्द का अर्थ लोगो ने विकृत कर दिया है, जिस प्रकार धर्म, विज्ञान, त्याग, नीति इत्यादि शब्दो के अर्थ विकृत किये गये है।" इस अर्थ मे गरीबो के अधिकार के आधार पर धनी लोगो से भूमि माँगने का भाव है। भूमि भगवान् का दान है और उत्पादन का मौलिक साधन है, इस बात को छोड देने पर भी एक अन्य दृष्टि मे भूदान-यज्ञ में 'दान' शब्द का उक्त अर्थ अत्यन्त उपयोगी साबित हुआ है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। किसी मनुष्य ने जो कुछ पाया है, या जो कुछ पाने मे वह समर्थ हुआ है, उसमें सारे समाज का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे सहयोग है। इसलिए मनुष्य समाज का ऋणी है और समाज प्रत्येक मनुष्य से उसका हिस्सा पाने का अधिकारी है। अतएव इस दृष्टि से 'दान' शब्द का यह अर्थ सहज ही उपलब्ध होता है। इसलिए 'भूदान-यज्ञ' के द्वारा धनी लोगो के पास विनोबा की भिक्षा का सदेश-मात्र पहुँचाया जा रहा है, ऐसा समझनेवाले भ्रान्ति मे है।

भूदान-यज्ञ का 'दान' शब्द अपने प्रचलित अर्थ मे प्रयुक्त न होकर एक और भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, ऐसा विनोबाजी ने समझाया है। इस सम्बन्ध में उन्होने कहा है "भूदान-यज्ञ का 'दान' शब्द किसी-किसी व्यक्ति को खटकता है। कुछ बन्धुओ ने एक नवीन विवाह-विधि की रचना की है। जब वे इस विधि की रचना करने बैठे, तब 'कन्यादान' शब्द उन्हे खटका। गाय-भैस की तरह कन्या का दान कैसे किया जाय? मूल विवाह-विधि मे 'कन्यादान' शब्द है ही नहीं। वहाँ 'सम्प्रदान' अर्थबोधक शब्द है। उसका अर्थमात्र 'दिया गया' है। इसको दान किया गया, उसका दान किया गया—ऐसा अर्थ नहीं है। जिस वस्तु पर आज मेरा स्वामित्व है, उस पर आज से तुम्हारा स्वामित्व

हुआ—ऐसा भाव उसमे नही है। 'दिया गया' केवल इतना कहने से कोई गौणत्व प्रकट नही होता। इसलिए इस नयी विवाह-विधि मे 'कन्या-सम्प्रदान' शब्द का व्यवहार किया गया हे। जहाँ 'सम्प्रदान' है, वहाँ 'अपादान' आ ही जाता है।

"भूदान-यज्ञ मे इसी प्रकार की कल्पना है। जमीन के मालिक उसके स्वामी नही है। वे कन्या के पिता की ही भाँति प्रतिपालक-मात्र है। सुपात्र देखकर उन्हे यह जमीन सम्प्रदान करनी होगी। ऐसे सुपात्रो की खोज भी करनी होगी। इस मामले मे स्वामित्व की कल्पना कही नही हे।"

'भूदान-यज्ञ' मे 'यज्ञ' शब्द का अर्थ और उद्देश्य

पुस्तक के प्रारम्भ मे 'यज्ञ' शब्द का व्युत्पत्ति से उत्पन्न अर्थ दिया गया है। वह अर्थ है 'यजति पूजयति इत्यर्थ' अर्थात् पूजा। किन्तु गीता मे 'यज्ञ' शब्द का अर्थ-विकास हुआ है। विनोबाजी ने अपने 'गीता-प्रवचन' मे 'यज्ञ' शब्द के अर्थ की बडी सुन्दर व्याख्या की है। वह व्याख्या सक्षेप मे इस प्रकार हे हम तीन सस्थाओ को साथ लेकर जन्म ग्रहण करते है। (१) यह विशाल ब्रह्माण्ड या अपार सृष्टि, जिसका हम एक अग है। (२) जिस समाज मे हमने जन्म लिया है, वह समाज। वह समाज माता-पिता, भाई-वहन, पडोसी आदि से गठित है। (३) देह, मन और वुद्धि का सगठन। अपनी दैनिक जीवन-यात्रा मे हम अपने आसपास की सृष्टि का व्यवहार करते है। इसके फलस्वरूप सृष्टि की जो क्षति होती है, उसकी पूर्ति करना यज्ञ का पहला अर्थ या उद्देश्य है—जैसे, हजारो वर्षो तक खेती करने के फलस्वरूप भूमि की जो उर्वरा-शक्ति घटती है, उसकी पूर्ति करना। यज्ञ का दूसरा अर्थ है—सृष्टि का प्रयोग करने के फलस्वरूप जो गदगी जमा हो जाती है, उसका शुद्धीकरण—यथा, कुएँ के व्यवहार के कारण आसपास जो गदगी जम जाती है, उसको साफ करना। तीसरा अर्थ है—कोई प्रत्यक्ष कार्य करना, जैसे कपास का उत्पादन कर, सूत कातकर, वस्त्र वुनना और वस्त्रोत्पादन की वृद्धि करना या नया वस्त्र तैयार करना। समाज मे माता-पिता, पडोसी, गुरु, मित्र आदि की सेवा के कारण हम पुष्ट होते है। उनकी सेवा करने तथा समाज के उस ऋण को अदा करने की प्रक्रिया को 'दान' कहा जाता है। मन, वुद्धि या इन्द्रिययुक्त शरीर

की जो क्षति प्रतिदिन होती रहती है और उसके फलस्वरूप जो विकार या दोष उत्पन्न होता है, उसकी शुद्धि करने को 'तप' कहा जाता है। किन्तु, दान, यज्ञ और तप को इस प्रकार अलग-अलग करके देखने की आवश्यकता नही है, क्योंकि वास्तव मे इनके बीच कोई पार्थक्य नही है। ये सभी मिलकर एक दिव्य सस्था के रूप मे परिणत हो गये हैं। समाज और शरीर सृष्टि मे ही समाविष्ट है। इसलिए यज्ञ का व्यापकतर अर्थ यह है कि समाज के सम्बन्ध मे जो दान-प्रक्रिया होती है, वह भी यज्ञ है, और शरीर के सम्बन्ध मे जो तप-क्रिया की जाती है, वह भी यज्ञ है।

विनोबाजी ने भूमि-दान के आधार पर जिस क्रातिकारी आदोलन का प्रवर्तन किया है, उसके द्वारा यज्ञ के इन तीनो उद्देश्यो की पूर्ति होती है। इसीलिए इस आदोलन को 'भूदान-यज्ञ' नाम दिया गया है। इससे क्षयपूर्ति, शुद्धीकरण और सगठन, ये तीनो ही उद्देश्य पूरे होते हैं।

(१) क्षय-पूर्ति—विकट भूमि-व्यवस्था और कुटीर-उद्योगो का विनाश होने के कारण गरीबी, बेकारी, अशिक्षा आदि उत्पन्न होने से समाज की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति भूदान-यज्ञ मे भूमि के समतापूर्ण वितरण और ग्रामीकरण, कुटीर-उद्योगो की प्रतिष्ठा और बुनियादी शिक्षा आदि की व्यवस्था मे हो रही है। केवल कुछ लोगो के हाथ मे रहने के कारण भूमि का सद्व्यवहार न होने तथा भूमि के खराब एव अव्यवहृत स्थिति मे पडे रहने के कारण सृष्टि की जो क्षति हुई है, वह भी भूदान-यज्ञ के द्वारा पूरी की जा रही है।

(२) शुद्धीकरण—भूदान-यज्ञ दाताओ के हृदय मे त्याग और प्रेम-भाव का आविर्भाव कर उनकी चित्तशुद्धि करता है। गरीब लोग परनिर्भरशीलता छोडकर स्वावलम्बी बन रहे हैं। व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना की समाप्ति के द्वारा सम्पूर्ण लोकमानस शुद्ध हो रहा है।

(३) सगठन—भूदान-यज्ञ की चरम परिणति साम्ययोगी समाज की स्थापना के रूप मे होगी। वह महानतम सगठन होगा।

इस प्रकार भूदान-यज्ञ के माध्यम से महान् 'यज्ञ' का अनुष्ठान हो रहा है।

तप

तप के सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते हैं "प्राचीन ऋषियो ने और गीता ने तीन चीजो की व्यवस्था की है—यज्ञ, दान और तप। भूदान-यज्ञ के द्वारा

मैंने यज्ञ और दान का आह्वान किया है। किन्तु, यदि हम तप न करे, तो दान और यज्ञ सिद्ध नही होगा। ये तीनो एक सम्पूर्ण वस्तु है—अविभाज्य है। कार्यकर्ता तप करेगे। दान और यज्ञ सर्वसाधारण करेगें। इसीलिए हमे तप की चरम साधना करनी होगी।"

प्रजासूय-यज्ञ

समाज मे परम्परा के कारण कितने ही प्राचीन महान् शब्द प्रचलित है, जिनके प्रति समाज के लोगो की श्रद्धा बनी हुई है। उन शब्दो का परित्याग न कर समाज के वर्तमान प्रयोजन के अनुसार उनका नवीन अर्थ लगाकर और उन्हे विकसित रूप प्रदान कर उनमे नवजीवन का सचार करना अहिसात्मक प्रयोग की एक उत्कृष्ट प्रक्रिया है। यह क्रिया इतने सुन्दर ढग से होनी चाहिए कि लोगो को यह पता ही न चले कि पुराने शब्दो मे नवीन अर्थ भरा जा रहा है। भारतीय परम्परा मे जो समन्वय स्थापित किया गया है, वह भी इसी अहिसात्मक प्रक्रिया के द्वारा ही। गीता मे 'यज्ञ' शब्द के अर्थ का भी इसी प्रकार विकास हुआ है। महात्मा गाधी ने वर्ण-व्यवस्था की पुरानी कल्पना मे ही समाज के वर्तमान प्रयोजन के अनुसार नवीन अर्थ भरा। 'ट्रस्टी' शब्द का व्यवहार भी उन्होने इसी प्रकार किया है। विनोबाजी भी इस प्रक्रिया के प्रयोग मे सिद्धहस्त है। 'भूदान-यज्ञ' शब्द मे इसके दर्शन मिलते है। उसमे दान, यज्ञ, तप आदि परम्पराओ का वर्तमान समस्या के साथ सयोग कराया गया है। इसी प्रक्रिया मे उन्होने 'राज-सूय यज्ञ' की कल्पना को जनसाधारण के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारो के प्रगतिमूलक आदर्श के साथ सयोजित कर 'भूदान-यज्ञ' को 'प्रजासूय-यज्ञ' सज्ञा प्रदान की है। 'राजसूय-यज्ञ' का अर्थ होता है राजा का अभिषेक। इसी प्रकार प्रजासूय-यज्ञ का अर्थ है प्रजा का अभिषेक, अर्थात् आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्रो मे जनसाधारण की सार्वभौमिकता।

भू-कुर्बानी

'भूदान-यज्ञ' को इसलाम-धर्म की भाषा मे 'भू-कुर्बानी' कहा जाता है। मुसलमान जनसाधारण के लिए यह अधिक बोधगम्य और हृदयग्राही है। फरवरी, १९५४ मे जब लेखक भूदान-यज्ञ के सदेश का प्रचार करने के लिए

मालदह जिले में पैदल-यात्रा कर रहा था, तब उसकी सभाओ मे भारी सख्या मे मुसलमान किसान उपस्थित होते थे। यद्यपि वे लोग आग्रह और मनोयोग के साथ भूदान-यज्ञ की भावधारा को सुनते थे, तथापि ऐसा लगता था कि 'भूदान-यज्ञ' शब्द उनके लिए उतना बोधगम्य और हृदयग्राही नही हो पाता है। इसीलिए लेखक मुसलमान श्रोताओ के समक्ष 'भूदान-यज्ञ' के विकल्प-स्वरूप 'भू-कुर्बानी' बोलता था और उसका परिणाम अच्छा निकलता था। लेखक ने इस सम्बन्ध में विनोबाजी को लिखा। विनोबाजी ने उसके उत्तर मे लिखा "मुसलमानो को समझाने के लिए यज्ञ के बदले 'कुर्बानी' शब्द का इस्तेमाल किया, वह उचित ही है। भूदान मे बढकर कुर्बानी और क्या हो सकती है?"

बिना समझे दान देने का निषेध

इस आदोलन की सबसे बडी बात है दाता के अन्तर में भावक्रान्ति लाने का प्रयोजन। इसीलिए विनोबाजी शुरू से ही सबको सतर्क करते आ रहे है कि कोई भूदान-यज्ञ मे निहित उद्देश्य को समझे बिना दान न दे। कारण, बिना समझे दान देने से भूमि तो प्राप्त होगी, किन्तु समाज मे क्रान्ति का अर्थात भूदान-यज्ञ का उद्देश्य व्यर्थ हो जायगा। इसीलिए उन्होने सबको सतर्क करते हुए अपील की है "हमारे तीन सूत्र है—

(१) हमारी बात सुनने के बाद भी यदि कोई भूमि न दे, तो हमें दुख नही होगा, क्योकि हमारा खयाल है कि आज जो लोग नही दे रहे है, वे कल दें। 'विचार-बीज' अकुरित न हो, ऐसा नही हो सकता।

(२) हमारी बात समझकर यदि कोई भूमि देता है, तो हमे आनन्द होता है, क्योकि उसके फलस्वरूप सम्भावना की सृष्टि होती है।

(३) हमारी बात न समझकर यदि किसी प्रकार का दबाव पडने के कारण कोई दान करता है, तो इससे हमें दुख होगा, क्योकि जैसे भी हो, जमीन सग्रह करना हमारा उद्देश्य नही है। हमे सर्वोदय-मनोवृत्ति की सृष्टि करनी होगी।"

इतना होने पर भी बहुत-से लोगो ने ठीक से न समझकर केवल दूसरो को दान देते देखकर दान दिया है। भविष्य मे भी कुछ लोग इसी प्रकार देगे।

इन सब दानो को वास्तविक भूदान-यज्ञ का दान कहा जा सकता है क्या ? ये सब दान श्रद्धापूर्ण है, क्योकि दूसरो की देखादेखी देने का अर्थ श्रद्धा है। श्रद्धा से कोई काम करना धर्म-प्रवेश का एक उत्कृष्ट मार्ग है। इसलिए ये दान भूदान-यज्ञ मे ग्राह्य है। किन्तु, जिन्होने दान दिया है, अथवा देगे, वे जब तक दान का उद्देश्य ठीक प्रकार से नही समझेगे, भूदान-यज्ञ सफल नही माना जा सकता।

धनिकों की आन्तरिकता का प्रश्न

ऐसा कहा जाता है कि धनी लोगो ने जो दान दिया है, उसमे कुछ विशेष आन्तरिकता अथवा हार्दिकता नही है, उसमे कपट है। ऐसा सोचने का कोई कारण नही है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते है "मनुष्य के हृदय मे सत् और असत् का द्वन्द्व अहर्निश चलता रहता है। इसका अनुभव अनुभूतिसम्पन्न लोग ही करते है। इससे सत् की रक्षा और असत् का नाश होता हे। धनी लोगो के कार्यो मे कुछ-न-कुछ अन्याय रहता है, इसमे सन्देह नही हे। अन्याय-मार्ग का अनुसरण न हो, तो हजारो एकड जमीन का एक व्यक्ति के हाथ मे जाना क्या कभी सम्भव है ? जो धनी लोग दान देते है, उनके हृदय मे इस प्रकार का द्वन्द्व शुरू होगा—'हमने जो किया है, क्या वह ठीक हे ?' परमेश्वर उन लोगो को सुबुद्धि देगे। वे लोग अन्याय को त्याग देगे। इस प्रकार उनका हृदय-परिवर्तन होगा।"

धनी लोगों की प्रतिष्ठा-वृद्धि का प्रश्न

कुछ लोग यह आक्षेप करते है कि विनोबाजी अपने को धनी लोगो का 'भाई, पुत्र' आदि कहकर उनकी प्रतिष्ठा वढा रहे है। यह ठीक नही हो रहा है। उत्तर मे विनोबाजी ने कहा है "तब क्या मै धनी लोगो की प्रतिष्ठा घटाऊँ ? मै उन्हीके द्वारा उनका कर्तव्य कराकर उनकी प्रतिष्ठा वढा रहा हूँ—इसीमें क्या आप लोगो को आपत्ति है ? तब क्या उनके द्वारा वदमाशी कराकर मै उनकी प्रतिष्ठा घटाऊँ ? वैसे ही तो उन्होने काफी वदमाशी की है। और भी वदमाशी करने के लिए क्या वे मुझसे निर्देश की अपेक्षा करेगे ? इसीलिए उनसे उनके अपने कर्तव्य पूरे कराने होगे। उनका प्रेम अक्षुण्ण रखकर दान ग्रहण करना उचित है। जो दान देते है और जो ग्रहण करते है, वे दोनो ही वरावर

मात्रा में मुक्त होते हैं—यह भाव मन में रखकर काम करने में कल्पवृक्ष के समान फल मिलेगा। अन्यथा केवल एक मुट्ठी मिट्टी मिलेगी। धमकी देकर काम कराने में कोई आनन्द नहीं है। किसी प्रकार का लेन-देन का भाव इसमें नहीं रहना चाहिए। हमारे हृदय में ऐसी श्रद्धा रहनी चाहिए कि यदि मुझमें त्याग करने की शक्ति है, तब दूसरे लोगों में वह शक्ति क्यों न होगी? जिस परमेश्वर ने मुझे माँगने की प्रेरणा दी है, वही दूसरों को देने की भी प्रेरणा क्यों नहीं देगा?"

वामन-अवतार

तेलगाना के भ्रमण-काल में तेलगाना-अंतर्गत वारंगल नामक स्थान में भूदान-यज्ञ की भूमिका और उद्देश्य की व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा था कि भूदान-यज्ञ में दान प्राप्त करने के लिए उन्होंने 'वामन-अवतार' का रूप धारण किया है। वे कहते हैं "मैं ब्राह्मण था ही, अब मैंने 'वामन-अवतार' का रूप ग्रहण किया है और भूमि-दान माँगना शुरू कर दिया है।" बाद में उन्होंने एक बार इसी 'वामन-अवतार' का उल्लेख कर भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध में अपनी त्रि-पदीय व्याख्या करते हुए कहा था "भूदान के बाद 'सम्पत्तिदान' वामन का दूसरा चरण होगा। इसके बाद तीसरा चरण उठेगा, यह निश्चित है। उस पुण्य-काल के लिए लोगों को तैयार होना होगा, क्योंकि उस पुण्य-युग में उन्हें मानवता का विनम्र सेवक बनना होगा।" इससे लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या वे अवतारवाद में विश्वास करते हैं और अपने को एक अवतार मानते हैं? विनोबाजी ने अपने एक पत्र में इस सम्बन्ध में प्रकाश डालकर यह आशंका दूर कर दी है। "किसी जीवधारी मनुष्य के सम्बन्ध में अवतार की कल्पना मैं कदापि नहीं करता। विभूतिसम्पन्न, देहमुक्त ज्ञान-देव-सदृश पुरुष को भी, जिनके प्रति मेरी परम श्रद्धा है, मैं अवतार नहीं मानता। उन्हें मैं श्रेष्ठ सत्पुरुष मानता हूँ। राम और कृष्ण अवतार थे, क्योंकि श्रीमद्भागवत, तुलसी-रामायण आदि ग्रन्थों में राम और कृष्ण की मानवता पर ईश्वरत्व का आरोप किया गया है। इससे हिन्दू-धर्मावलम्बियों को उपासना का एक आधार मिल गया है। इसीलिए मैं उन्हें अवतार मानता हूँ। और कोई अवतार मैं नहीं मानता। 'वामन-अवतार' व्यक्तिगत भाषा

नही है, वह भूदान-यज्ञ का वर्णन-मात्र है। भूदान-यज्ञ का रूप 'वामन' की तरह क्षुद्र है। किन्तु, 'वामन' ने जैसा विराट् रूप धारण किया था, वैसी ही अहिसक क्राति भूदान-यज्ञ के द्वारा सम्भव हो सकती हे। 'वामन' भिक्षा माँग रहे थे, ऐसा खयाल किया गया था, किन्तु वास्तव मे वे वलि को दीक्षा ही दे रहे थे। यह सम्पूर्ण रूपक समझ लेना होगा। इस प्रकार के अवतारो का उल्लेख न करूँ, ऐसा तो नही हो सकता, क्योकि हमारा समाज और मै, दोनो इसी सस्कार से पूर्ण है। केवल 'वामन-अवतार' का ही उल्लेख करता हूँ, ऐसा नही है। 'प्रजासूय-यज्ञ', 'भूदान-यज्ञ का अश्व', नवीन 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन', इन सवका भी उल्लेख मैने किया है। ये सव छोटे विपय भी नही है। किन्तु, इन सवका उल्लेख इसीलिए करता हूँ कि इनसे आपको सहायता मिलेगी। आप लोग क्षुद्र नही है, आप लोग महान् है—आप लोगो को यही सिखाना चाहता हूँ। मुझमे जो 'मै' है, वह व्यक्तिगत 'मै' नही है। वह सम्पूर्ण 'सर्वोदय'-समाज को अपने मे निहित करके ऐसी भापा वोल रहा है।"

समय और परिस्थिति के प्रयोजन के अनुसार आत्मा के एक-एक गुण का विकास होता है और मत्र के रूप मे वह आविर्भूत होता है। युग के एक विशिष्ट व्यक्ति के माध्यम से वह गुण विकसित होता है और वह मत्र फलदायक होता है। ऐसे गुण का विकास या मत्र का आविर्भाव ही वास्तविक अवतार हे और वह व्यक्ति निमित्त-मात्र का अवतार हे। इस वारे मे पहले ही हम विशद रूप से विचार कर चुके है।

भूमिहीन गरीब धनी का छठा पुत्र

पहले कहा गया है कि परिवार की परिधि-सम्वन्धी धारणा का विस्तार ही भूदान-यज्ञ की एक मूलभूत वात है। भगवान् किसीको एक पुत्र देते है, किसीको दो, किसीको तीन और किसीको चार। जिनके चार पुत्र हे, वे सोचते है कि उनके पुत्र धन-सम्पत्ति को चार भागो मे वाँटकर भोग करे। किन्तु, यदि उन्हे एक और पुत्र हो जाय, तो क्या वे उसका अनादर करेगे? वे उसका भी स्नेहपूर्वक स्वागत करेगे। इसी प्रकार धनी यह समझ ले कि भूमिहीन गरीब उनका छठा पुत्र है। यह इस युग का सकेत है, यह 'युगधर्म' और 'युग-कर्म' है। अन्यत्र विनोबाजी ने कहा है: "यदि आपके चार पुत्र है, तो मुझे

पाँचवाँ पुत्र मानें और मुझे मेरा हिस्सा दें। आज जो नही दे रहे है, वे कल देगे। वे दिये विना नही रहेंगे। भारत में ऐसा कोई नही है, जो मुझे भूमि-दान करने से इनकार करे।"

विनोबाजी आगे कहते हैं "छह एकड मे से एक एकड दीजिये। एक एकड देने पर भी ५ एकड से कम फसल नही मिलेगी। एक ही मात्रा मे खाद और परिश्रम उसमे लगेगा और भगवान् का आशीर्वाद भी प्राप्त होगा। हर किसान यह समझे कि ६ एकड जमीन मे जितनी फसल होती है, ५ एकड जमीन मे भी उतनी ही फसल हो सकती है। इसीलिए मै कहता हूँ कि ६ एकड मे से १ एकड मुझे दे। इसके फलस्वरूप परमेश्वर भी वरदान दें और गरीव लोग भी खाकर जीवन-रक्षा करेंगे।"

धनी निमित्तमात्र बनें

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था "मैंने सवको पहले ही मार दिया है। हे सव्यसाची, तुम निमित्त-मात्र वनो।" इसी प्रकार गम्भीर आत्मविश्वास के स्वर मे विनोबाजी ने धनी लोगो से कहा है "भूमि धनी लोगो के हाथ से गरीवो के हाथ मे जा चुकी है। प्रश्न केवल इतना है कि किस मार्ग से भूमि जायगी ? हे धनी, तुम निमित्त-मात्र बनो, जिससे शाति और प्रेम के मार्ग से भूमि-समस्या का समाधान हो सके।" जनशक्ति के अभ्युदय की अनिवार्यता मे कितना गम्भीर उनका विश्वास है। उनका यह दिव्यदृष्टिसूचक कथन निकट भविष्य की ओर ठीक-ठीक निर्देश कर रहा है, इसमे सन्देह नही। समय का परिवर्तन हो गया है। भूमि में जो अपने हाथ से खेती करके फसल उपजाये, भूमि का स्वामित्व उसीको मिलना चाहिए—यह ज्ञान समाज मे शनै शनै फैल रहा है। देश के जनसाधारण की ओर से भी क्रमश यही दावा उपस्थित किया जा रहा है। जनसाधारण द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो की ओर से भी भूमि-वितरण के लिए सरकार पर दवाव वढ रहा है। सरकार भी भूमि-वितरण की आवश्यकता को क्रमश समझ और स्वीकार कर रही है। देश के प्राय सभी राजनीतिक दल भी भूमि के उचित बँटवारे के लिए जोर दे रहे है। अन्यान्य देशो की परिस्थिति भी इसके अनुकूल है। इस प्रकार मन स्थिति और वस्तुस्थिति, दोनो ओर से समय का सकेत अनुभव किया जा रहा है। भूमि का उचित वितरण

अविक दिनो तक रोका नही जा सकता। धनी लोग क्या अब तक यह नही समझ पा रहे है ? वैशाख की सन्ध्या में वायुकोण में बादल जमा हुए है। हवा एकदम रुकी हुई है। शीघ्र ही आँधी-पानी आयेगा। किन्तु ऐसी स्थिति में यदि कोई सोचे कि वर्षा नही होगी, तो उसकी बुद्धि जितनी भ्रान्त समझी जायगी, उतनी ही भ्रान्त अमीरो की बुद्धि मानी जायगी, यदि वे यह समझेंगे कि जमीन उनके हाथ मे रह जायगी। भू-स्वामी लोग समय का सकेत पहचान लें। आज 'काल-पुरुष' विनोबाजी के मुँह से अपनी बात कह रहे है। आज युग-देवता विनोबाजी के द्वारा नवीन युग-धर्म की प्रतिष्ठा करा रहे है—'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' करा रहे है।

धनी लोगों की सम्मान-रक्षा का प्रश्न

भूमि तो धनी लोगो के हाथ से चली ही जायगी, किन्तु प्रश्न यह है कि भूमि के साथ-साथ क्या उनकी मर्यादा, सम्मान और मनुष्यत्व भी चला जायगा या उसकी रक्षा होगी ? यदि भूदान-यज्ञ के मार्ग से, शाति और प्रेम के मार्ग से, भूमि-समस्या का समाधान होगा, तो धनी लोगो की इज्जत बचेगी, उनकी सम्मान-वृद्धि होगी—समाज उनका बन्धु बनेगा। किन्तु, यदि भूमि अन्य मार्ग से जायगी, तो भूमि के साथ-साथ उनका सम्मान, मनुष्यत्व, सब नष्ट हो जायगा। कानून के मार्ग से भूमि जाने पर भी उनका सम्मान और व्यक्तित्व अक्षुण्ण नही रहेगा। इसीलिए गया जिले के एक स्थान में विनोबाजी ने इस सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए जमीन्दारो से कहा था "पटना मे जमीन्दारो के कुछ प्रतिनिधियो ने मुझसे मुलाकात की थी। मैंने उन लोगो को साफ बता दिया था कि यदि आप लोग समय की माँग को समझकर अभी ही भूमि-दान करेंगे, तो आप बच जायँगे। आज फिर मैं बडे जमीन्दारो से निवेदन करता हूँ कि केवल भूमि-दान करने से ही काम नही चलेगा—आप भूदान-यज्ञ के काम को अपना काम मानकर उसमें अपने को लगाइये। आप लोग मुझे और कितने दिन दौडायेंगे ? आप लोगो को ही इस काम का भार ग्रहण करना होगा। तभी मुझे सन्तोष होगा। इससे आप लोगो के हृदय मे सत्त्वगुण प्रकाशित होगा और आप समाज का नेतृत्व करने का, समाज की सेवा करने का अवसर पायँगे। इस मामले में आप अंग्रेजो से शिक्षा ग्रहण करे। जब अंग्रेजो ने देखा कि भारत छोडना ही पडेगा, तब उन्होने स्वय ही उद्यत होकर एक तारीख निश्चित कर

दी और उस दिन भारत छोड दिया। यदि वे लोग वैसे भारत नही छोडते, तो अन्तत उन्हें भारत तो छोडना ही पडता, वे अपना सम्मान और श्रद्धा भी खो देते। किन्तु, उन लोगो ने बुद्धिमानी का काम किया। इससे उन्होंने भारत-वासियो का प्रेम भी पाया और आज उनका व्यवसाय भी चल रहा है। गाधीजी ने अहिंसा के पथ से स्वराज दिलाया, यह बात इतिहास मे जिस प्रकार लिखी रहेगी, उसी प्रकार इग्लैण्ड के बारे मे भी यह लिखा रहेगा कि भारत के स्वाधी-नता-सग्राम मे इग्लैण्ड ने विशेष सफलता प्राप्त की। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि हमारे स्वाधीनता-सग्राम मे इग्लैण्ड की नैतिक विजय हुई है। सत्याग्रह और अहिंसक युद्ध का महत्त्व यही है कि उसमे दोनो ही पक्षो की विजय होती है। हिंसात्मक युद्ध में एक पक्ष की विजय और दूसरे पक्ष की पराजय होती है। इसलिए, भाइयो, इग्लैण्ड से शिक्षा ग्रहण कीजिये। यदि सम्मान, गौरव, प्रेम, सौहार्द्र और स्नेहभाव बचाये रखना चाहते है, तो समय और सुयोग के अनुसार काम कीजिये। जमीन तो जायगी ही, किन्तु दान न देने से सम्मान और प्रेम, सब खो दीजियेगा। गरीब और कितने दिनो तक प्रतीक्षा करेगे ? प्रतीक्षा करने की या अन्य सब बातो की भी एक सीमा होती है। अब गरीब जाग गये है। प्रसन्न-भाव से दान देने से सौन्दर्य प्रस्फुटित होगा। उपयुक्त अवसर पर 'देशे काले च पात्रे च' दान देना उचित है। और, मैं क्या ठीक पात्र नही हूँ ? ठीक समय पर उचित काम करने का परिणाम अच्छा होता है।"

भय-युक्त दान

कहा जाता है, भू-स्वामी लोग अभी जो दान दे रहे है, वह भय के कारण। ऐसी अवस्था मे वे अपनी इज्जत और सम्मान की रक्षा किस प्रकार करेगे ? यह आपत्ति भी की जाती है कि भूदान-यज्ञ के सदेश के प्रचार के प्रसग मे जो कुछ कहा जाता है, उसमे भू-स्वामियो के लिए भय-प्रदर्शन ही अधिक होता है। भू-स्वामियो को जो भय की बात बतलायी जाती है, वह खराब है—ऐसी बात नही है। उसे नैतिक भय कहा जाता है। इस प्रकार का भय पाकर दान देना बुरा नही है। शास्त्र कहता है "श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।" 'भिया देयम्' अर्थात् भय से दान दिया जाता है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी ने कहा है "इसी भाव से हम कह रहे है कि भय पाकर भी दान

दीजिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि दान नही देंगे, तो आपका खून कर दूंगा। ऐसे भय से भीत होकर कोई दान दे, यह हम बिलकुल नही चाहते। किन्तु, यदि हम किसीसे कहें कि तुम्हारे बिछावन पर साँप है, इसलिए उसे छोडकर हट जाओ, तो वास्तव में जो भय है, वह उसको दिखा देना हुआ। जिस बारे मे मनुष्य को भय रहना चाहिए, उससे भयभीत होना उचित है और जिस चीज से भय नही होना चाहिए, उससे डरना अनुचित है। भय भी एक अच्छी चीज है। भय के कारण यदि कोई खराब काम करने से दूर रहे, तो वह भय ठीक ही है। किन्तु, मुझसे पूछा जाता है : 'आप ऐसा क्यो कहते हैं कि यदि झूठ बात बोलोगे तो क्षति होगी, यदि हिंसा करोगे तो अनिष्ट होगा ? दुनिया मे विनाश होगा, यह बात भी आप क्यों कहते है ?' किन्तु, यह तो भय नही है, यह तो एक विचार है। खराब काम करने से खराब फल मिलेगा। इसलिए खराब काम मत करो। लोगो को समझाने के लिए ही हम इस तरह बोलते है। यदि यह भय भी हो तो 'धर्म-भय' है। समाज को यह समझा देना पडेगा कि समय की अवस्था समझकर यदि उदार हृदय से दान नही दिया जायगा, तो विपत्ति आयेगी। लोगो को भय दिखाकर धमकी देने के लिए हम ऐसी बात नही कहते, बल्कि इसके द्वारा हम विचार ही समझाते है। खराब का फल खराब ही होता है, यह समझा देना तो भय-प्रदर्शन नही है। यह तो 'कर्म-विपाक' या 'कर्म-परिणाम' है।" और भी उन्होंने कहा है "यह क्या धमकी देना हुआ ? और यदि यह धमकी देना ही है, तो वेद ने भी धमकी दी है

"मोघमन्न विन्दते अप्रचेता
सत्य ब्रवीमि वध इत् स तस्य,
नार्यमण पुष्यति नो सखाय
केवलाघो भवति केवलादि ।

अर्थात् मूर्ख निरर्थक अन्न का सग्रह करता है। वेद कहता है, मै सत्य कहता हूँ, वह अन्न नही जमा करता, अपनी हत्या करता है। जो व्यक्ति अन्न जमाकर रखता है, वह अपनी मृत्यु बुला रहा है। जो व्यक्ति अकेले-अकेले खाता है, वह पुण्य नही, पाप का ही भोग करता है।"

अतएव, भाइयो ! जिस चीज में विपत्ति है, उसे हमे पहचानना होगा और शीघ्र ही पहचानना होगा। वृद्धावस्था आने पर वृद्धावस्था को सभी लोग पहचान जाते हैं, किन्तु, जो यौवन-काल मे ही, वृद्धावस्था क्या है, यह समझ-कर चलता है, वह सम्मान-रक्षा करता है। इसी प्रकार विपत्ति आने से पहले ही, उसे पहचान सकने से सम्मान-रक्षा होगी।

धनी का हृदय-परिवर्तन

धनी के हृदय-परिवर्तन के बारे मे विचार कर लेना आवश्यक है। कुछ लोग धनियो के हृदय-परिवर्तन की बात पर अविश्वास कर उसकी मखौल उडाते हैं। यह ठीक नही है। बाहरी परिस्थितियो से मनुष्य का हृदय-परिवर्तन हो सकता है। वही होता भी है। इस प्रकार जिसका हृदय-परिवर्तन होता है, उसके भीतर इतने दिनों तक विचार-बीज पडा रहता है। बाहरी परिस्थिति के जलसिंचन से वह अकुरित हो जाता है। कारण, एक ही परिस्थिति दूसरो के हृदय पर अनुरूप भाव से काम नहीं करती। प्रबल अनुकूल परिस्थिति रहने पर भी दूसरो का हृदय अपरिवर्तित रह जाता है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते है "कोई व्यक्ति वृद्ध हो गया है और उसे पुत्र-वियोग हो गया है, इसी कारण उसमे वैराग्य आया। वृद्धावस्था और पुत्र की मृत्यु के कारण वैराग्य आया, तो क्या वह असली वैराग्य नही हुआ ? हाँ, वह असली वैराग्य है। जब वह व्यक्ति युवा था और उसके पुत्र था, तब तक उसे आसक्ति थी। कोई व्यक्ति वृद्ध हो जाता है और उसके पुत्र की मृत्यु भी हो जाती है, फिर भी उसमे वैराग्य-भाव नही आता। इसका कारण यही है कि जिस व्यक्ति मे वैराग्य आया, उसके हृदय मे पहले से ही ऐसा भाव था और पुत्र की मृत्यु एक निमित्त-मात्र बनी, जिससे उसके अन्तर में निहित भाव जाग गया। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे सद्भाव है, ऐसा विश्वास रखना पडेगा।"

कौन कितना दान देगा ?

अब प्रश्न उठता है कि भूमि-दान कौन देगा ? यज्ञ मे सब किसीको अपने-अपने हविर्भाग की आहुति देनी होती है। भूदान-यज्ञ मे धनी-गरीब का भेद न रखते हुए सबका भूमिदान करने का आह्वान किया गया है। सबसे

जमीन माँगी जाती है, इसका अर्थ यह नही है कि सबसे समान परिमाण मे भूमि माँगी जाती है। मध्यवित्त किसानो और मालगुजारो से षष्ठांश भूमि माँगी जाती है। जो लोग बडे-बडे मालगुजार-जमीन्दार है, उनसे कहा जाता है कि अपने लिए कुछ जमीन रखकर बाकी सब गरीबो के लिए दे दीजिये। जो लोग अत्यधिक गरीब है, उनसे अधिकारपूर्वक कुछ नही माँगा जाता। वे प्रेमपूर्वक जो दे देते हैं, वही प्रसाद-स्वरूप मानकर ग्रहण किया जाता है। जिस प्रकार सुदामा की खुद्दी (चावल के कण) पाकर भी भगवान् प्रसन्न हुए थे, उसी प्रकार यदि बहुत कम जमीनवाले गरीब किसान प्रेम और श्रद्धा के साथ कुछ देंगे, तो भारत-माता प्रसन्न होगी। इसीलिए धनी का भूमि-दान 'दान' है और गरीबो का भूमि-दान 'यज्ञ'।

एक और बात स्पष्ट होनी चाहिए। भूदान-यज्ञ की क्रातिकारी विचार-धारा को सारे सामाजिक जीवन मे प्रतिष्ठित करना होगा। इसीलिए यदि अल्पसख्यक लोगो के दान द्वारा आवश्यक भूमि-प्राप्ति सम्भव हो सके, तो भी भूदान-यज्ञ का उद्देश्य सार्थक नही होगा। विनोबाजी केवल प्राप्तव्य भूमि का परिमाण निर्दिष्ट कर सन्तुष्ट नही होते, वे दाताओ की सख्या का भी निर्देश कर देते हैं। इसीलिए विनोबाजी ने बिहार मे दाताओ की सख्या ४ लाख और भूमि का परिमाण ३२ लाख एकड तय कर दिया था।

गरीब भूमि-दान क्यों दे ?

कहा जाता है कि भूदान-यज्ञ मे गरीब किसानो से दान लेना अन्याय और निष्ठुरता है। साम्यवादी तो यह आपत्ति करते ही है, दूसरे लोग भी—यहाँ तक कि जिनका किसी राजनीतिक दल या आर्थिक मतवाद से कोई सम्पर्क नही है, वैसे ग्रामसेवक भी यह आपत्ति उठाते है कि गरीब किसानो के पास अभी जो भूमि है, उसीसे उनका पेट नही भरता। ऐसी अवस्था मे उनसे जमीन माँग-कर और लेकर उन्हे और गरीब बना देने से क्या लाभ होगा ? यो तो यह आपत्ति उचित जान पडती है, परन्तु गम्भीर भाव से सोचने पर यह निर्मूल साबित होती है।

आज तक मनुष्य का आत्मज्ञान साधारण तौर पर अपने परिवार तक ही विकसित हुआ है। मनुष्य अपनी स्त्री, पुत्र और परिवार के लिए कितना

अधिक त्याग करता है और दुःख-कष्ट सहता है। किन्तु, परिवार के बाहर मनुष्य साधारणतः हृदयहीन रहता है। मनुष्य परिवार के बीच आत्मज्ञान-सम्पन्न मनुष्य रहता है। किन्तु, परिवार के बाहर साधारणतः उसका आचरण पशु-प्रकृति जैसा होता है। भूमि-समस्या के मूल में भी परिवार से बाहर के मनुष्य के प्रति मनुष्य की हृदयहीनता की भावना ही है। इस काम मे जैसे धनी है, वैसे ही गरीब। गरीब किसान भी उन लोगो के प्रति सहानुभूति नही रखते, जो उनसे बदतर हालत में रहते है। स्वय दरिद्र होने पर भी वह अधिक दरिद्र को देखकर सुखी होता है। सुखी और दुःखी की बात तो आपेक्षिक भाव से कही जाती है। एक व्यक्ति वैसे दुःखी दीख सकता है, परन्तु दूसरे दुःखी की तुलना में वह सुखी साबित हो सकता है। भूमिहीन गरीब आज समाज मे सबसे अधिक दुःखी है। समाज मे आज किसीकी भी तुलना मे वह सुखी नही मालूम पड़ता। इसीलिए वह समाज मे सबकी दृष्टि में दुःखी है। समुद्र सबसे नीचे है, इसलिए पृथ्वी का सारा जल समुद्र की ओर प्रवाहित होता है। इसी प्रकार आज समाज के सभी लोगो का दान भूमिहीन गरीब को मिलना चाहिए। थोडी भूमिवाले किसानो को भी उसके लिए थोडी भूमि दान मे देना उचित है। दूसरी बात, भूदान-यज्ञ का उद्देश्य स्वामित्व-भाव की समाप्ति की दीक्षा देना भी है। दो हजार एकड भूमिवाला जिस प्रकार अपने को अपनी भूमि का मालिक मानता है, उसी प्रकार दो एकड जमीनवाला भी अपने को अपनी जमीन का मालिक मानता है। इसलिए धनी की तरह गरीब किसानो की भी शुद्धि की आवश्यकता है। अन्यथा क्रांति का आधार कभी भी सुदृढ नही होगा। स्वामित्व के मोह ने ही मनुष्य को पूँजीवाद का गुलाम बना दिया है—चाहे वह बडा मालिक हो अथवा छोटा मालिक। जिसकी सम्पत्तिमात्र दो लँगोटियाँ है, उसे भी इन दो लँगोटियो के प्रति आसक्ति है। पूँजीवाद का मूल यही है। इसीलिए भूदान-यज्ञ मे कुछ-न-कुछ अर्पित करके स्वामित्व-विसर्जन की दीक्षा गरीब किसानो को ग्रहण करनी चाहिए।

थोडी जमीन का गरीब मालिक अपने हृदय में अमीर जमीन-मालिक के प्रति विद्वेष-भाव रखता है। क्यो ? समाज से अमीरी दूर करना वह नही चाहता, बल्कि वह स्वय भी धनी बनना चाहता है और अपने हृदय मे हजारो एकड जमीन का मालिक बनने की लालसा रखता है। भूदान-यज्ञ में भूमि की

आहुति देकर गरीब किसान लोग इस लालसा से मुक्ति पा सकते हैं। हजारों गरीब किसान जब थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ही भूदान करते हैं, तब एक ऐसे वातावरण की सृष्टि होती है कि बड़े-बड़े जमीन्दारों और मालगुजारों में भी भूमि-दान करने की प्रवृत्ति जगती है। बिहार में और अन्यत्र बड़े-बड़े जमीन्दारों और राजाओं ने जो हजारों एकड़, यहाँ तक कि एक लाख से भी अधिक एकड़ भूमि का जो दान किया है और कर रहे हैं, उसकी पृष्ठभूमि भी यही है। बिहार में गरीबों ने दो वर्षों तक विनोबाजी पर दान की वर्षा कर दी, जो धनी लोगों के लिए लज्जास्पद थी। विनोबाजी कहते हैं "जिसे लाज नहीं है, उसे लाज लगे, यह अच्छा है। शास्त्र ने कहा है 'भिया देयम्'। नैतिक शक्ति को प्रकट करने की यह एक पद्धति है।" श्री दादा धर्माधिकारी ने एक सुन्दर उपमा देकर यह विषय समझाया है। उन्होंने लिखा है : "किसान खानेवाला अनाज अलग रखता है, और बीज का अनाज अलग। खानेवाले अनाज से बीजवाला अनाज अधिक गुणसम्पन्न और पुष्ट रहता है। धनी के दान में स्वामित्व का बँटवारा होगा। धन और भूमि के स्वामित्व का बँटवारा उनके द्वारा होगा। किन्तु, स्वामित्व-विसर्जन की क्रांति गरीब के दान में ही सम्भव होगी। गरीब के दान में क्रांति का बीज निहित रहता है, इसलिए अहिंसात्मक क्रांति की प्रक्रिया में गरीब का स्वामित्व-विसर्जन एक मौलिक वस्तु है।"

गरीब अच्छी तरह समझकर हृदय से जो क्षुद्र से क्षुद्र दान देगा, उसका मूल्य दान के परिमाण से नहीं आँका जा सकता—वह अमूल्य होगा, क्योंकि वह दान अभिमन्त्रित होगा। वह महान् दान समाज के वातावरण को पवित्र बनायेगा और विचार-क्रांति की सृष्टि में भारी प्रेरणा देगा। वह अमूल्य अभिमन्त्रित दान समाज के लिए पारस-मणि साबित होगा। उसके स्पर्श से सारा समाज सोना हो जायगा। महाभारत की 'राजसूय-यज्ञ और नेवले' की कहानी का स्मरण कीजिये। वैसा करने से सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। देश में भारी अकाल पड़ा था। एक दरिद्र ब्राह्मण परिवार कई दिनों से भूखा था। ब्राह्मण किसी प्रकार थोड़ा सत्तू कहीं से ले आया। परिवार में चार व्यक्ति थे—ब्राह्मण, ब्राह्मणी, उनका पुत्र और पुत्र-वधू। उतने सत्तू से चार व्यक्तियों का पेट भरना तो दूर की बात, प्रत्येक को केवल कुछ ग्रास मिलते। चार व्यक्तियों के लिए सत्तू चार भाग में बाँटा गया। स्नान-ध्यान के बाद ब्राह्मण अपने हिस्से का सत्तू

खाने बैठा। इसी समय उसने देखा कि एक अकाल-पीड़ित भूखा कंकाल व्यक्ति उसके द्वार पर खड़ा है। ब्राह्मण ने अपने हिस्से का सब सत्तू अत्यधिक श्रद्धा और विनय के साथ उसे खाने को दे दिया और स्वयं भूखा रह गया। क्षुधार्त व्यक्ति उतना सत्तू खाकर कहने लगा कि उतने में उसकी क्षुधा शांत नहीं हुई, बल्कि और बढ़ गयी। तब ब्राह्मणी ने भी अपने हिस्से का सत्तू स्नेहपूर्वक उसे दे दिया। उसे भी खाकर उस व्यक्ति ने कहा कि उसकी भूख अभी शांत नहीं हुई। तब ब्राह्मण-पुत्र ने सहानुभूतिपूर्वक अपने हिस्से का सत्तू उसे दे दिया। उसे खा चुकने के बाद भी उस व्यक्ति की भूख शांत नहीं हुई, तो पुत्र-वधू ने भी अपने हिस्से का सत्तू उसे अर्पित कर दिया। उसे खाकर उस व्यक्ति ने अपने को तृप्त किया और पुलकित मन से वह वहाँ से चला गया। एक नेवला पास के एक वृक्ष पर बैठा यह सब देख रहा था। 'कुछ जूठन बची होगी और उसे मैं खाऊँगा', सोचकर वह पेड़ से उतरा और उस व्यक्ति ने जहाँ बैठकर खाया था, वहाँ पहुँचा। किन्तु, वहाँ उसे एक कण भी नहीं मिला। तब वह उसी स्थान पर लोटने लगा और जब उठा तो उसने देखा कि उसका आधा शरीर सोने का हो गया है। आनन्द से उसकी भूख मिट गयी। उसने सोचा कि जहाँ अतिथि खाता है, वहाँ लोटने से शरीर स्वर्णमय हो जाता है। अतएव वह उस दिन से जहाँ कहीं अतिथि को भोजन करता देखता, रुक जाता और उस स्थान पर लोटता। उसकी एकमात्र इच्छा अपने शेष आधे शरीर को सोने का बना लेने की थी। किन्तु, कई वर्ष बीत गये और उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। असंख्य अतिथि-सत्कारवाले स्थानों में वह लोटा, पर उसका एक बाल भी सोने का नहीं हुआ। अंत में राजसूय-यज्ञ का समय आया। हजारों-लाखों व्यक्तियों ने वहाँ भोजन किया। बड़ी आशा के साथ नेवला दिन-रात राजसूय-यज्ञ के भोजनालय के एक छोर से दूसरे छोर तक लोटता रहा, किन्तु उसका एक रोम भी सोने का नहीं हुआ। युधिष्ठिर आदि ने नेवले के मुँह से उसकी सारी कहानी सुनी। राजसूय-यज्ञ करने के कारण युधिष्ठिर के मन में अहंकार उत्पन्न हो गया था। नेवले की कहानी सुनकर वह दूर हो गया और उन लोगों के हृदय में यह ज्ञानोदय हुआ कि एक गरीब दूसरे गरीब को हार्दिक सहानुभूति के साथ छोटा दान भी देता है, तो उसकी महिमा अतुलनीय है। वैसा दान जिस स्थान पर होता है, उसके आसपास का वातावरण भी पवित्र हो जाता है।

गरीव भूमिहीन के और भी कई कर्तव्य है। इस सम्वन्ध में विनोवाजी ने कहा है "पहली वात यह है कि गरीवो को आत्मशुद्धि करनी होगी। उनमे जितने व्यसन है, उन्हे छोडकर अपने को शुद्ध करना पडेगा। तभी उनकी शक्ति वढेगी, अन्यथा नही। जरा सोचिये तो, कल गरीवो के वीच भूमि का वितरण होगा। जिन्हे भूमि दी जायगी, यदि वे शरावी होगे, तो वे अपने हाथ मे जमीन नही रख सकेंगे। इसलिए शहर से जो व्यसन गाँवो मे आ गये है, उनसे उन्हें मुक्त होना होगा। यह आत्म-शुद्धि का काम गरीवो को ग्रहण करना होगा।

"दूसरी वात, आलस्य को छोडना पडेगा। मेरी यह वात सुनकर शायद आप आश्चर्यान्वित होगे। आप कहेगे, गरीव तो सदा परिश्रम करते रहते है। मै कहूँगा, वे परिश्रम करते है, यह सत्य है, परन्तु वाध्य होकर। जितना काम वे करते है, उसमें भी उनका आलस्य रहता है। सुवह से शाम तक वे जो काम करते है, उस पर विचार करने से पता चलेगा कि सुवह खेत जाने और सन्ध्या समय लौट आने के वीच के आठ घटों को छोडकर वाकी पूरे समय वे आलस्य में विता देते है। आलस्य एक महारोग है। धनी लोगो मे तो यह है ही, गरीवो मे भी घर कर गया है। इसलिए उन्हे आलस्य छोडकर हमेशा काम मे लगा रहना पडेगा। तीसरी वात, गाँव मे न्याय-व्यवस्था की स्थापना करनी होगी। लडाई-झगडे आपस मे ही तय करने होगे। विवाद मे शक्ति नष्ट होती है, इसलिए इस वात की कोशिश करनी पडेगी कि हमारे वीच झगडे-फसाद न हो। मतभेद होने पर नाना प्रकार की समस्याएँ पैदा हो सकती है, यह ठीक है; किन्तु उनका गाँव के भले आदमियो के द्वारा समाधान करा लेना होगा। आपस मे जो झगडे मिट सकते है, उन्हे वाहर क्यो ले जाया जाय ? घर का झगडा वाहर ले जाना कितनी वुरी वात है। प्रत्येक ग्राम मे कुछ-न-कुछ प्रभावशाली भले आदमी होते ही है। इसलिए उनके पास जाकर उनकी वात मान लेना ही उचित है।"

साम्यवाद और भूदान-यज्ञ

ऐसा कहा जाता है कि कम्युनिस्ट-दल के आन्दोलन को नष्ट करने के उद्देश्य से ही भूदान-यज्ञ-आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया है। यह सत्य

नही है। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सफल होने से हिंसात्मक क्रान्ति का निवारण हो जायगा, इसमे सन्देह नही। किन्तु, उसी उद्देश्य से भूदान-यज्ञ-आन्दोलन शुरू किया गया है, ऐसा नही है। यह एक स्वतन्त्र विचार है। यह विधायक (Positive) है, निषेधात्मक (Negative) नही। यदि ऐसा होता कि कम्युनिस्ट लोग जिस मार्ग का अनुसरण करते है, उसके अलावा भारत की भूमि-समस्या के समाधान का कोई अच्छा मार्ग नही है और होने पर भी भूदान-आन्दोलन के द्वारा उसी पथ से भूमि-समस्या के समाधान की चेष्टा न कर केवल हिंसात्मक क्रान्ति सफल करने की ही चेष्टा हो रही है, तो यह कायरता होती। किन्तु, कम्युनिस्ट लोग संघर्ष, अशान्ति और खन-खराबी के मार्ग से जो कुछ करना चाहते है, भूदान-यज्ञ शान्ति और प्रेम के मार्ग से वही करने के लिए अग्रसर हुआ है। हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा केवल बाहरी परिवर्तन सम्भव होता है। किन्तु, अहिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा भीतरी और बाहरी, दोनो ही विप्लव होते है। हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा भूमि का बँटवारा होने से लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है, किन्तु समाज के हृदय मे विचार-क्रान्ति नही आयगी और न प्रेम की शक्ति ही पैदा होगी। अहिंसात्मक क्रान्ति से हृदय मे चिन्तन-क्रान्ति और विचार-क्रान्ति आयगी। 'सबै भूमि गोपाल की', 'भूमि पर सबका समान अधिकार'—यह ज्ञान समाज के हृदय मे प्रतिष्ठित होगा और इससे प्रेरित होकर भू-स्वामी अपने द्वारा किये गये अन्याय के प्रतिकार के लिए स्वेच्छा से स्वामित्व-विसर्जन कर देगे और इससे समाज मे क्रान्ति आयगी। डा० राधाकृष्णन् ने इसको Revolution by consent 'सहमति से क्रांति' नाम दिया है। बहुत बडी समस्या की तुलना मे बहुत कम होने पर भी ४ वर्षों में ४० लाख एकड से अधिक भूमि का संग्रह हो चुका है। इस आन्दोलन के प्रति देश मे प्राय सर्वत्र सभी श्रेणियो के लोगो का अनुराग बढता जा रहा है। देश का वातावरण परिवर्तित हो रहा है। परन्तु केवल भूमि-समस्या के समाधान मे ही इस आन्दोलन की परिणति नही है। भूमि-समस्या का शान्तिपूर्ण समाधान अहिंसात्मक समाज-रचना का आधार बनेगा और वह अहिंसक समाज की रचना कर सकेगा। यदि इस पवित्र मार्ग से भारत की समस्या का समाधान सम्भव हो, तो यह कोई बुरा उपाय नही होगा। विनोबाजी कहते है "किसीको प्यास लगी हो,

तो वह साफ जल मिलने पर गदा जल नही पियेगा। किन्तु, साफ जल न मिलने पर वह गदा जल पियेगा। भारत में, अच्छे मार्ग से गरीबो की समस्या का समाधान होने से, बुरा मार्ग नही आ सकता।" मोटी-सी बात यह है कि जहाँ दरिद्रता रहेगी, वहाँ साम्यवाद आयगा। भारत मे भी आ सकता है—पृथ्वी मे अन्यत्र भी आ सकता है; उसमे बाहरी आक्रमण की आवश्यकता नही है।

कम्युनिस्टो का कहना है कि भूदान-यज्ञ धीरे-धीरे चलने का मार्ग है। इस पर विनोबाजी कहते हैं "किन्तु जिस स्थान मे अब तक 'लेने' का ही अभ्यास था, वहाँ मै 'दान देने' का अभ्यास समाज को सिखा रहा हूँ। अभ्यास डालने का काम धीरे-धीरे ही होता है। मेरी इच्छा तो सारे ससार मे भूमि के पुनर्वितरण की है। आज ससार के छोटे-बडे, सभी राष्ट्र भय-त्रस्त है। इस भय से मुक्ति पाने का उपाय किसीको भी मालूम नही है। मुक्त होने का उपाय बाहरी नही, अन्तर का होना चाहिए। यह पथ हमने खोज निकाला है। किन्तु, लोग कहते है कि मेरा अहिंसा का मार्ग बहुत लम्बा है। यदि वे जल्दी पहुँचने का मार्ग चाहते है, तो यह नही भूलना चाहिए कि वह मृत्यु की ओर ले जायगा।"

बिहार मे कम्युनिस्टो और फारवर्ड ब्लाक के लोगो ने जनसाधारण को विनोबाजी के कार्यक्रम के सम्बन्ध मे सतर्क होने की चेतावनी दी थी। उस सम्बन्ध मे इशारा करते हुए विनोबाजी कहते है "ये लोग कहते है कि सघर्ष ही जीवन की बुनियाद है। उन लोगो की दृष्टि मे सारा जीवन ही सघर्षमय है। माता बच्चे को दूध पिलाती है, तो क्या उसे माता के स्तन के साथ पुत्र का सघर्ष मानना पडेगा ? ससार सघर्ष से नही, प्रेम से चलता है। मृत्यु के समय अपने प्रियजन को सामने देखने पर शान्ति से मृत्यु होती है। तब क्या वह उसकी आँखो के साथ प्रियजन का सघर्ष होता है ? ये लोग ठीक से सोचते भी नही, इसीलिए इनके सब काम निष्फल हो जाते है।

"इन लोगो ने कहा है कि लोग मेरे मोहजाल मे न पड जायँ। किन्तु, ये लोग जनता से कहना क्या चाहते है ? जिन लोगो को जमीन मिली है या जिन्हे मिलेगी, उन्हे क्या ये यही समझायेगे कि जमीन वे ग्रहण न करे या फिर भूमि-दाताओ से कहेगे कि वे भूमि-दान न करे ? इन लोगो ने अब तक बराबर

सुअवसरो को खो दिया है। स्वाधीनता-सग्राम में भी कम्युनिस्टो ने सहयोग नही किया और इस प्रकार एक बडा सुअवसर खो दिया। इसीलिए मैं इन्हें निमत्रण देता हूँ कि ये इस वार फिर सुअवसर को नष्ट न करे और इस आन्दोलन में सहयोग करे। इन लोगो ने अपने हृदय और वुद्धि का दरवाजा वन्द कर रखा है। इस विज्ञान के युग मे तो दरवाजा सदा खुला रखना चाहिए।"

कम्युनिस्टो के अभियोगो का खण्डन

३१ अक्तूवर, १९५३ को विहार के मुंगेर जिले के वीहट ग्राम में कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओ ने विनोवाजी के पास एक प भेजा था, जिसमे भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के विरुद्व कई प्रश्न उठाये गये थे। विनोवाजी ने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन में उन प्रश्नो का उत्तर दिया। मार्क्सवादियो की ओर से भूदान-यज्ञ के विरुद्ध सामान्यत जो अभियोग लाये जाते है, उन सवका खडन विनोवाजी के उस जवाव से हो जाता है। उत्तर देते हुए विनोवाजी ने कहा है "पहले कम्युनिस्ट लोग भूदान-यज्ञ को केवल भूल ही नही मानते थे, वल्कि यह भी कहते थे कि यह आन्दोलन उनके विरुद्ध किया गया है। किन्तु, प्रसन्नता की वात है कि ज्यो-ज्यो भूदान-यज्ञ के विचार जन-सावारण मे फैल रहे है, आन्दोलन की भावधारा का विकास हो रहा है, दानपत्र मिल रहे है, भारत मे जाग्रति आ रही है और उसका प्रभाव सारे विश्व मे फैल रहा है, त्यो-त्यो कम्युनिस्टो के वीच से भी कुछ लोग आगे आ रहे है और हम उनसे सहयोग पा रहे है। कई स्थानो में उन्होने मुझे दानपत्र भी दिये हैं और मानपत्र भी। और अव तो एक वडे कम्युनिस्ट नेता श्री गोपालन् ने घोपणा की है कि "यद्यपि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन से विनोवाजी जितनी आशा करते हैं, उतनी हम नही करते और हमारे विचार मे कानून के अतिरिक्त और किसी माध्यम से इस समस्या का समाधान नही होगा, तथापि मैं इस आन्दोलन को एक अच्छा आन्दोलन मानता हूँ।" मैं समझता हूँ कि श्री गोपालन् की यह उक्ति उन लोगो के हृदय-परिवर्तन का परिचायक है। जो लोग ऐसा सोचते है कि किसीका भी हृदय-परिवर्तन नही हो सकता, उनका सोचना ठीक नहीं है। जो यह स्वीकार करते है कि हृदय-परिवर्तन होना सम्भव है, वे गौरव के पात्र हैं। जो अपने हृदय को अपरिवर्तनीय मानते

है, वे जड है, क्योकि ऐसा चिन्तन जड का लक्षण है, चेतन का नही। मै जानता हूँ कि कम्युनिस्ट चेतन है, जड नही। इसीलिए उनका कुछ हृदय-परिवर्तन हुआ है। पहले वे इस आन्दोलन को केवल असफल ही नही मानते थे, वल्कि इसे भ्रान्त भी कहते थे। आज इसे वे असफल मानते हुए भी भ्रमात्मक नही मानते।"

कम्युनिस्टो की एक आपत्ति यह है कि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सफल होने से भूमि छोटे-छोटे टुकडो में वँट जायगी और इससे भारत को क्षति पहुँचेगी। पूंजीपति भी ऐसा ही सोचते है और इस विपय मे वे कम्युनिस्टो के साथ एकमत है। विनोवाजी कहते है "कम्युनिस्ट और पूंजीपति, दोनो ही चाहते है कि उत्पादन-व्यवस्था केन्द्रीभूत रहे। किन्तु, वितरण के विपय मे दोनो मे पार्थक्य है। पूंजीपति कहते है कि दक्षता के अनुसार वितरण हो और कम्युनिस्ट समान वितरण चाहते है। उनके वीच इतना ही भेद है। किन्तु, हम चाहते है कि उत्पादन का भी विकेन्द्रीकरण हो। इस विपय मे वे दोनो ही मिलकर हमारा विरोव करते हैं। इस प्रकार जो परस्पर-विरोवी है, वे भी किसी-किसी विपय में एकमत हो जा सकते है।" यहाँ कम्युनिस्ट और पूंजीपति, दोनो ही उत्पादन-व्यवस्था का केन्द्रीकरण चाहते है, इसलिए वडे-वडे भू-खण्ड उनके लिए सुविधाजनक है। किन्तु, भूमि की विकेन्द्रीकृत उत्पादन-व्यवस्था मे भूखड छोटे होने पर भी वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने, उपयुक्त सिचाई की व्यवस्था रहने तथा खाद देने से केन्द्रीकृत उत्पादन-व्यवस्था की अपेक्षा कम उत्पादन नही होगा, वल्कि कई स्थानो मे अविक ही होगा।

कम्युनिस्टो ने अपने पत्र मे लिखा था - "आपके आन्दोलन मे कई त्रुटियाँ है। इसलिए हम उसमे विश्वास नही करते।" इसके उत्तर मे विनोवाजी ने कहा "इसका अर्थ यही है कि यदि त्रुटि न रहे, तो वे इस आन्दोलन मे विश्वास करेगे।"

कम्युनिस्ट लोग यह अभियोग लगाते है कि विनोवाजी गरीवो के सगठन को क्षति पहुँचाते है। इसके उत्तर मे विनोवाजी ने कहा "मेरे सम्वन्ध मे उनकी यह धारणा गलत है। उल्टे मै यह दावा करता हूँ कि हमारे इस दो वर्ष के आन्दोलन-काल मे भूमिहीनो के वीच जो जागरण आया है,

वह अन्य किसी आन्दोलन मे नही आ सकता है। मेरे पास हजारो की सख्या मे भूमिहीन आते है। वे स्वीकार करते है कि उन्हीकी ओर से मै काम कर रहा हूँ।"

कम्युनिस्टो की इस आपत्ति का कि विनोबाजी भूमि की भिक्षा माँग-कर भूमिहीनो के अधिकारो का हनन कर रहे है, उत्तर देते हुए विनोबाजी कहते है "मैं अधिकार ही माँग रहा हूँ, भिक्षा नही। मैं षष्ठाश की माँग करता हूँ। यदि इससे काम नही होगा, तो अधिक माँगूँगा। भिक्षुक कभी यह नही कह सकता कि मुझे इतना दो। भिक्षुक जो पाता है, उसीसे सन्तुष्ट हो जाता है। यदि हम आश्रम के लिए भूमि माँगते और कोई थोडी-सी भूमि दे देता, तो हम उसका उपकार मानते और आश्रम के कार्य-विवरण में उसके दान की बात का उल्लेख करते कि हम उनके आभारी है। किन्तु, यह दूसरे ढग की बात है। यदि कोई एक हजार एकड भूमि का दान करता है और उसके पास उससे कई गुनी अधिक भूमि बच जाती है, तो वह एक हजार एकड भूमि लेने से भी मैं इनकार कर देता हूँ। मैं कहता हूँ कि यह तो भिक्षा देना हुआ। मैं भिक्षा लेने नही आया हूँ, दीक्षा देने आया हूँ।"

कम्युनिस्ट लोग यह भी कहते है कि धनवानो ने विनोबाजी को केवल आबादी के अयोग्य खराब भूमि दान में दी है। इसके उत्तर में विनोबाजी कहते है "मैं हनुमान् का काम कर रहा हूँ। पूरा पहाड ही मै राम के पास ला उपस्थित करूँगा। उसमे से आवश्यकतानुसार काम की वनस्पति छाँट ली जायगी। मैंने धनवानो से कहा है कि उनसे ३२ लाख एकड अच्छी जमीन पाना चाहता हूँ। इसके अलावा वे पहाड भी देगे, तो ले लूँगा, क्योकि वह भी हमारी मातृभूमि का अग है। हम उसे प्यार करते है। और फिर खराब जमीन देने पर भी तो वे कुछ दे रहे है। जिस किसी भी दिन हो, जब कोई कुछ देता है, तब उनके आँगन मे हम लोग प्रवेश करते है। इसके बाद धीरे-धीरे पैर उठाकर हम उनके रसोईघर में पहुँच जायँगे और कहेगे कि 'आपका पुत्र आया है—उसे भोजन दे।' तब उन्हे खिलाना ही पडेगा।"

भूदान-यज्ञ की कार्यप्रणाली के विषय मे कम्युनिस्टो की जो आपत्तियाँ थी, उनका उत्तर देने के प्रसग मे विनोबाजी ने कहा कि धनवानो मे जो सज्जन और उदार-चित्त है, उन्हे दान देने और स्वामित्व त्याग करने की प्रेरणा देकर

और उनके पास से दान लेकर वे उन्हे अपनी विचारधारा में दीक्षित कर रहे है और धनवानो मे जो कजूस और सकीर्ण-हृदय है, उनसे उन्हे अलग कर दे रहे है। कम्युनिस्ट लोग धनवानो को गरीबो का शत्रु मानते है और उनके साथ गरीबो की लडाई कराना चाहते है। इसीलिए कम्युनिस्ट लोग भेद, विरोध और लडाई की भाषा का व्यवहार करते है। इसलिए ऐसी भाषा में उन्हे समझाना अधिक सहज होता है। वे भेद की भाषा सहज ही समझते है। इसीलिए विनोबाजी अभेदवादी होते हुए भी भेद की भाषा और लडाई की भाषा का व्यवहार करते हुए कहते है "मै गरीबो के शत्रुओ के बीच फूट डाल रहा हूँ। कम्युनिस्ट लोग गरीबो के सभी शत्रुओ को एक करते है। इससे सज्जन और दुर्जन एक हो जाते है और इससे दुर्जनो की ही शक्ति बढती है। धनवानो मे अन्तत दस प्रतिशत लोग तो अच्छे है। यदि वे ही १० व्यक्ति मिल सके, तो उनके पुण्य का फल बाकी ९० व्यक्तियो को मिलेगा। इसलिए उन लोगो के बीच जो सज्जन है, उन्हे मै अहिसात्मक रग से फोड लेने की चेष्टा कर रहा हूँ। भेद-नीति की इस प्रयोग-कुशलता को जो लोग नही समझते, वे राजनीति नही समझते, नीति-शास्त्र भी नही जानते।" वे और भी कहते है कि कुश्ती लडते समय सामने के आदमी से हाथ मिलाना पडता है—चाहे जीत किसीकी भी हो। इसीलिए उन्होने बडे-बडे जमीदारो और राजाओ के साथ कुश्ती लडने के लिए हाथ मिलाया है। यदि उनकी पराजय हुई, तो कम्युनिस्ट लोगो का यह कथन सही साबित होगा कि शत प्रतिशत धनवान् दुर्जन है और विजय होने पर गरीबो का कल्याण होगा। अतएव उन्होने जो हाथ पसारा है, उससे कम्युनिस्टो को कोई क्षति नही है।

वर्तमान स्थिति मे कानून के द्वारा भूमि-समस्या का समाधान होना सम्भव है या नही, इस बारे में वे कहते है "प्रभाव तीन प्रकार के होते है। (१) हत्या करके, 'भूमि दो, नही तो गोली चलेगी', (२) कानून का प्रभाव और (३) नीति के द्वारा जनमत का प्रभाव। हम नैतिक प्रभाव चाहते है। नैतिक दबाव के बिना हृदय-परिवर्तन कर सकूंगा—ऐसा दावा मैने नही किया है। इसके बाद ही कानून बनाया जा सकता है। आप लोग कानून मे विश्वास करते है, परन्तु कानून मे शक्ति आती कहाँ से है? कानून मे या तो जनता से या फिर सेना से शक्ति आती है। यदि २५ एकड की

'सीलिंग' (व्यक्तिगत स्वामित्व में भूमि रखने का अधिकतम परिमाण) निर्धारित हो, तो हजारो मध्यवित्त लोगो के हाथ मे भूमि लेनी होगी। दुनिया मे मध्यश्रेणी के लोग ही राज्य करते है। वे शिक्षित है। समाचारपत्रो का स्वामित्व उन्हीके हाथ मे है। इसलिए मध्यवित्त लोगो के हाथ से विना क्षति-पूर्ति दिये जमीन नही ली जा सकती। उनके पास से यदि जमीन लेनी होगी, तो रक्त-क्राति के द्वारा ही। रक्त-क्रान्ति यहाँ असम्भव है। हमने यह भी देखा है कि जब 'सीलिंग' की बात उठती है, तब लोग अपने बीच भूमि का बँटवारा कर लेते है। अतएव कानून के द्वारा समस्या का समाधान तभी सम्भव होगा, जब विना क्षति-पूर्ति दिये जमीन लेने का कोई उपाय निकलेगा। वह भी मध्यवित्त लोगो की सम्मति के अनुसार करना होगा। भारत के सविधान मे क्षति-पूर्ति की बात है। वह भी कोई अनुचित बात नही है, क्योकि कानून जनमत के आधार पर तैयार किया गया है। कम्युनिस्ट कहते है कि वह गलत तैयार हुआ है। किन्तु जो भूल जनमत ने की हो, उसे भूल नही कहा जाना चाहिए। इसलिए वर्तमान स्थिति मे कानून बनाकर भी भूमि प्राप्त नही की जा सकेगी। लोग अपने बीच भूमि बाँट लेगे और जो थोडी-बहुत जमीन प्राप्त भी होगी, वह खराब होगी। मै खराब भूमि लेने के साथ-साथ अच्छी भूमि भी लोगो से माँगता हूँ।"

मानव-हृदय की मौलिक सत्यता और अन्त मे राष्ट्र के विलुप्ति-सघटन के बारे मे विनोबाजी कहते है "कम्युनिस्ट भाई यदि सज्जनता पर विश्वास नही रखेगे, तो उनके गुरु ने उन्हें जो शिक्षा दी है, उसे सफल नही कर सकेगे। उनके गुरु कार्ल मार्क्स ने कहा है कि आरम्भ मे गरीबो का राष्ट्र होगा और उसके बाद राष्ट्र समाप्त हो जायगा। इसका अर्थ यही होता है कि किसीके हाथ मे किसी प्रकार की क्षमता नही रहने पर भी राष्ट्र चल सकता है। यदि इसमे विश्वास किया जाय, तो भी जनसाधारण मे विश्वास रखना ही पडेगा। वे कहते है कि अन्त मे राष्ट्र विलुप्त हो जायगा, किसी प्रकार के अधिकार की आवश्यकता नही रहेगी और सब लोग समान भाव से जीवन-यापन कर सकेगे। वैसी स्थिति मे सज्जनता पर विश्वास रखना पडेगा। मार्क्स ने जो बात कही है, वह दस लाख वर्षो के बाद सत्य होगी, ऐसा नही है। वह अभी ही सत्य होने की बात है। यदि सज्जनता पर विश्वास नही

रहेगा, तो राष्ट्र को कायम रखना ही पडेगा और स्वीकार करना होगा कि State will wither away, अर्थात् 'राष्ट्र विलुप्त हो जायगा', यह कहना गलत है। राष्ट्र का प्रयोजन है, ऐसा सोचनेवाले केवल कम्युनिस्टो के बीच ही नही है, बल्कि काग्रेस और सर्वोदय मे विश्वास करनेवाले लोगो मे भी है। इस विचारधारा के बारे में तीन विभिन्न मत है . (१) कम्युनिस्ट लोगो का विश्वास है कि अन्त मे राष्ट्र का अस्तित्व नही रहेगा, किन्तु अभी यह आवश्यक है कि राष्ट्र बहुत पक्का और मजबूत रहे। इसलिए अभी समस्त अधिकारो को केन्द्रीभूत होना चाहिए। उसे वे लोग Dictatorship of Proletariate (सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकत्व) कहते है। वे सोचते है कि अभी अधिनायकत्व होने पर भी अन्त मे वह क्षमता क्षीण हो जायगी। (२) दूसरा मत हम लोगो का है। हम सोचते है कि राष्ट्र नही रहेगा और अभी से ही उसे क्षीण करने की दिशा मे काम शुरु होना चाहिए। धीरे-धीरे अधिकारो के विकेन्द्रीकरण का प्रयोजन है। विकेन्द्रीकरण के बिना अधिकार-लोप होना असम्भव है। (३) ऐसे लोगो की सख्या ससार मे काफी है, जो यह स्वीकार करते है। काग्रेसियो और प्रजा-समाजवादियो मे से भी अनेक लोग यह बात स्वीकार करते है, किन्तु उनका कहना है कि किसी-न-किसी रूप मे राष्ट्र हमेशा बना रहेगा। इसीलिए मै कम्युनिस्टो से कहता हूँ कि उनकी और हमारी विचार-धारा मे एक जगह जो एकता है, वह यही कि अन्त मे राष्ट्र नही रहेगा। यदि वे यह जानते है और इसे स्वीकार कर लिया जाय, तो यह किस सिद्धान्त पर आधृत है? क्या इस सिद्धान्त पर नही कि मनुष्य के हृदय मे सज्जनता है और इसलिए अन्त मे राष्ट्र का प्रयोजन ही नही रहेगा? ऐसी अवस्था मे मनुष्य की सज्जनता पर विश्वास रखना ही उचित है।"

साम्ययोग

सभी मनुष्यो का सम्यक् और समान विकास सर्वोदय का लक्ष्य है। केवल सबसे अधिक लोगो का सबसे अधिक हित-साधन होने से ही काम नही चलेगा, क्योकि इसका अर्थ यह होता है कि बाकी जो लोग बच जाते है, उनका लोप हो तो हो, उनका नाश हो तो हो—उस बारे में चिन्ता करने की कोई

आवश्यकता नहीं। बल्कि, बहुसंख्यकों के सम्यक् विकास के मार्ग को सरल करने के लिए उनका नाश भी आवश्यक हो जा सकता है। किन्तु, ऐसा तो नहीं माना जा सकता, क्योंकि 'मैं क्या हूँ'—इस बारे में यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें, तो यह प्रकट होगा कि जो मैं हूँ, वही दूसरे भी हैं। मैं दूसरों में और दूसरे मुझमें समान भाव से विद्यमान हैं। मेरा विकास या अभ्युदय तब तक पूर्ण नहीं होगा, जब तक दूसरे लोगों का विकास या अभ्युदय न हो। इसका कारण यह है कि सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा विराजमान है। यह आत्मा अनन्तगुण-सम्पन्न और अनन्त प्रकार से विकासशील है। सबमें एक ही आत्मा है। अतएव सबका समान विकास हो सकता है, भले ही एक जीवन में वह सम्भव न हो। जीवन के सभी क्षेत्रों में यह प्रयोज्य है। जीवन को विभक्त करके नहीं देखा जाता। इसलिए आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में यही समदर्शन होना चाहिए और समता-स्थापना की जानी चाहिए। आज यदि हम व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक एवं सांसारिक जीवन-प्रवाह की ओर दृष्टिपात करें, तो व्यावहारिक क्षेत्र में इसकी आवश्यकता अनुभव करेंगे। आज संसार के विभिन्न देशों के बीच इतना द्वेष, हिंसा और द्वन्द्व क्यों है? एक देश दूसरे देश से भय क्यों खाता है? इसके मूल में यही है कि एक देश अपने को दूसरे देश से बड़ा मानता है और चाहता है कि वही उन्नति करे—वही सुख-भोग करे, दूसरा नहीं। वह यह समझता है कि दूसरे देश की उन्नति उसकी अपनी उन्नति के मार्ग में बाधा बनेगी। इस भ्रमात्मक मनोवृत्ति से हिंसा और द्वेष की उत्पत्ति होती है और आदमी अपना सर्वनाश बुला लेता है। समाज की ओर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि जो मनुष्य जन्म के आधार पर अपने को ऊँचा मानता है और दूसरों के स्पर्श से भी दूर रहता है, वह स्वयं संकीर्ण हो जाता है और यह मनोवृत्ति उसे जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी संकीर्ण बना देती है। मैं जिसे नीचे रखने या दबा रखने की चेष्टा करूँगा, वह भी मुझे नीच कहकर पुकारेगा। यदि हमारे आसपास के सभी लोग नैतिक दृष्टि से पतित हो चुके हैं, तो उसकी प्रतिक्रिया हमारे नैतिक जीवन पर भी होगी ही। आर्थिक क्षेत्र में भी व्यक्तिगत जीवन की उन्नति समाज की आर्थिक उन्नति के आधार पर बहुत-कुछ निर्भर करती है। सबमें एक ही आत्मा विराजमान है, इस मूल बात पर विश्वास

रखकर ही अपने को दूसरो मे और दूसरो को अपने मे देखने की दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। उससे सुख-दु ख मे सबको समान रूप से देखने की शिक्षा मिलती है। विनोवाजी ने उसे 'साम्ययोग' नाम दिया है। साम्ययोग ही भूदान-यज्ञ की मूल विचारधारा है। श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय के चार श्लोको मे 'साम्ययोग' की व्याख्या की गयी है। वे श्लोक निम्न-लिखित है :

सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन ॥ २९ ॥
यो मा पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्याह न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥
सर्वभूतस्थित यो मा भजत्येकत्वमास्थित ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन।
सुख वा यदि वा दु ख स योगी परमो मत ॥ ३२ ॥

'योग मे समाहित चित्तवाला और सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाला योगी ही अपने को सभी भूतो मे और सभी भूतो को अपने मे देख सकता है।'—२९

'जो मुझे (आत्मा को) सभी भूतो मे देखता है और सब भूतो को मुझमे देख पाता है, वह मेरी दृष्टि से बाहर नही होता और मै भी उसकी दृष्टि से बाहर नही होता।'—३०

'जो सब भूतो मे अवस्थित मुझे (आत्मा को) अपने से अभिन्न मानकर साधना करता है, वह चाहे कही भी निवास करे, मुझमे ही निवास करता है।'—३१

'हे अर्जुन, जो सुख और दु ख मे सभी जीवो को अपने बराबर ही देखता है, वही योगी सबसे श्रेष्ठ होता है—यह मेरा मत है।'—३२

यही साम्य की समग्र दृष्टि है। विनोवाजी युवावस्था के आरम्भ से ही निष्ठावान् सन्यासी है। इसीलिए उनकी प्राथमिक दृष्टि आध्यात्मिक रही। आध्यात्मिकता पर आवृत उनकी साम्य की पहली दृष्टि थी—साम्ययोग या समग्र दृष्टि। इस मौलिक आध्यात्मिक सिद्धान्त ने उनके जीवन के विशेष-विशेष क्षेत्रो मे प्रवेश पा लिया है। उनकी साम्यदृष्टि सामान्य

से विशेष की ओर, समष्टि से व्यष्टि की ओर सक्रमित हुई है। उनका एकत्व-बोध आध्यात्मिकता की समग्रता अर्थात् आत्मा के एकत्वबोध से जीवन के विशेष-विशेष व्यावहारिक क्षेत्रो मे पहुँचा है। दूसरी ओर, महात्मा गांधी ने रस्किन के 'अन टु दिस् लास्ट' ग्रन्थ मे आर्थिक क्षेत्र मे अर्थात् जीवन के एक विशेष क्षेत्र मे समदृष्टि की प्रेरणा प्राप्त की। क्रमश यह समदृष्टि जीवन के अन्यान्य विशेष-विशेष क्षेत्रो मे प्रवाहित होती है और अन्त मे साम्ययोग या साम्य की समग्र दृष्टि मे परिणत हो जाती है। इसीलिए महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन की प्रगति प्रणाली inductive (आरोही) है और विनोबाजी की जीवन-दृष्टि की प्रगति-प्रणाली deductive (अवरोही) है। उनके अपने-अपने जीवनारम्भ की विशिष्टता के कारण प्रगति-प्रणाली-सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण में अन्तर है।

साम्यवाद और साम्ययोग

विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ की मूल विचार-धारा को नाम दिया है—"साम्ययोग।" साम्ययोग के आधार पर सर्वोदय-समाज का सघटन करना होगा। आज ससार मे जो विचारधाराएँ प्रचलित है, उनके साथ साम्ययोग के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। इससे साम्ययोग की विशिष्टता और उत्कर्ष का अनुमान लगा सकना आसान हो जायगा। इसके अतिरिक्त जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे साम्ययोग कैसा विप्लवी परिवर्तन लाता है, इस पर भी विशेष रूप से विचार कर लेने की आवश्यकता है। इससे सर्वोदय का स्वरूप सहज ही समझ सकने मे हम समर्थ होगे।

आज ससार मे मुख्यत तीन विचारधाराएँ प्रचलित है (१) पूंजीवाद, (२) गणतान्त्रिक समाजवाद और (३) साम्यवाद। इन सबमे पूंजीवाद सबसे पुराना है। योग्यता और कार्यदक्षता की वृद्धि करना ही पूंजीवाद का उद्देश्य है। विनोबाजी कहते है "पूंजीवाद केवल कार्यदक्षता को ही स्वीकार करता है। पूंजीवाद कहता है कि कुछ लोगो की कार्यदक्षता कम है, इसलिए उन्हे कम पारिश्रमिक मिलना चाहिए। कुछ लोगो की कार्यदक्षता अधिक है, इसलिए उन्हे अधिक पारिश्रमिक देना आवश्यक है। कार्यदक्षता के अनुसार पारिश्रमिक देकर पूंजीवाद समाज मे योग्यता बढाने का प्रयास करता

है। पूंजीवाद के प्रचलन के कारण कुछ लोगो का जीवन-मान उच्चतम स्तर पर पहुंच गया है, यह सत्य है, किन्तु वहुत-से लोगो का जीवन अवनति की चरम सीमा पर भी पहुँच गया है। पूंजीवाद के पास इसके प्रतिकार का कोई उपाय नही है। पूंजीवाद ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि जो कार्यदक्ष नही हैं, वे अवनत ही रहेगे। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नही है। और, जो लोग योग्य है, उन्हे सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन विताने का अधिकार है—यह अनिवार्य है। इसीलिए सारा ससार आज दुखार्त है और इसीलिए पूंजीवाद के समर्थक भी कम है। आज हो या कल, इसका नाश अवश्यम्भावी है।"

गणतान्त्रिक समाजवाद में समाज-कल्याण का एकमात्र साधन मताधिकार है। किन्तु मत के आधार पर काम चलने से अनेक क्षेत्रो मे अल्पसख्यको के स्वार्थ सिद्ध नही होते। इसका प्रतिकार गणतान्त्रिक समाजवाद के पास नही है। इसीलिए विनोवाजी कहते है "गणतत्र मे प्रत्येक व्यक्ति को एक मत का अधिकार प्राप्त है। यहाँ मत के आधार पर काम होता है। इससे अल्पसख्यको की स्वार्थ-रक्षा नही होती। वहुसख्यको का ही हित-साधन होता है। गणतान्त्रिक समाजवाद इस वात का दावा करता है कि उसमे सवकी स्वार्थ-रक्षा की व्यवस्था हो सकती है। किन्तु, गणतान्त्रिकता के क्रम मे जो वुराइयाँ सामने आती है, उन्हे दूर करने के उपाय समाजवाद के हाथ में नही है। जव तक वहुसख्यको की राय के द्वारा अल्पसख्यको की स्वार्थ-रक्षा की चेष्टा होगी, तव तक पूर्ण समाजवाद प्रतिष्ठित नही होगा।"

अव साम्यवाद के वारे मे विचार किया जाय। विनोवाजी कहते है: "साम्यवाद कहता है कि उच्च श्रेणी का लोप नही होने तक साम्य-प्रतिष्ठा कर सकना सम्भव नही होगा। वर्ग-सघर्ष और सम्पन्न लोगो के लोप के अलावा और कोई उपाय नही है। इतनी दूर तक हिंसा का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक है और यही धर्म है। यह सर्वथा स्पष्ट है कि इसके द्वारा ससार मे शान्ति-स्थापना नही हो सकती, क्योकि हिंसा से प्रतिहिंसा का ही जन्म होता है, भले ही हिंसा के द्वारा उसे कुछ दिनो तक दवाकर रखा जाय। केवल यही नही, इसके कारण मनुष्यत्व का मूल्य भी घटता है और मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा नष्ट होती है।"

अतएव साम्ययोग की विचारधारा गम्भीर रूप से समझना सबके लिए आवश्यक है। साम्ययोग क्या है, इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते है "साम्ययोग कहता है कि सभी मनुष्यो में एक ही आत्मा समान रूप से विद्यमान है। मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई भेद है, यह साम्ययोग स्वीकार नही करता। इसके अतिरिक्त मनुष्य की आत्मा और अन्य प्राणियो की आत्मा मे कोई मौलिक भेद नही है। तब, वह इतनी दूर तक स्वीकार करता है कि मनुष्य की आत्मा का जो विकास हो सकना सम्भव है, वह अन्य प्राणियो के मामले मे सम्भव नही है। यद्यपि अनुशीलन के द्वारा मनुष्य की आत्मा का विकास किया जाता है, तथापि सभी मनुष्यो का विकास समान भाव से नहीं होता। प्राणिमात्र मे एक ही आत्मा विद्यमान है, इसलिए जितनी दूर तक सम्भव हो, प्राणियो की रक्षा के लिए प्रयत्न करना कर्तव्य है।

"साम्यवाद और साम्ययोग का अन्तर यही है कि साम्यवाद आत्मा की अभिन्नता मे विश्वास नही करता, किन्तु साम्ययोग करता है। साम्ययोग केवल आत्मा की अभिन्नता में विश्वास करके ही शान्त नही हो जाता। वह इसी विश्वास के आधार पर और भी गम्भीर क्षेत्र मे प्रवेश करता है। इसके फलस्वरूप नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रो मे क्रान्ति का सघटन होता है।

"जब हम कोई मौलिक आध्यात्मिक सिद्धान्त स्वीकार करते है, तब वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रवेश करके कार्यशील होता है। हम अपनी बुद्धि-शक्ति के मालिक नही है—उसके मालिक एकमात्र भगवान् है। हम जिन गुणो के अधिकारी होते है, वह समाज के ही कारण। अतएव हम सबने जो शक्ति प्राप्त की है, उसका समाज की सेवा मे ही उपयोग करना होगा। हम अपने शरीर के मालिक नही है। हम तो केवल उसके सरक्षक है। हमारे पास जो कुछ सम्पत्ति है, उसके मालिक हम नही, भगवान् है। ट्रस्टीशिप या सरक्षण की विचारधारा ग्रहण करने से पूर्ण विचार-क्रान्ति आ जाती है। हमारे पास जो कुछ है, वह समाज की सेवा करने के लिए है। व्यक्तिगत स्वार्थ को समाज के चरणो मे अर्पित कर देना ही व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि है। साम्ययोग और साम्यवाद के बीच यही बडा अन्तर है।"

साम्ययोग का सिद्धान्त ग्रहण करने से आर्थिक क्षेत्र मे वह कैसा क्रान्ति-

कारी परिवर्तन लायेगा, इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते है "जो व्यक्ति अपने साधनो के अनुसार समाज का पूरा-पूरा काम करेगा, वह अपने जीवन-यापन की आवश्यक चीजे समाज से पाने का अधिकारी होगा। जिस व्यक्ति की आँखे नही है, वह यदि अधा रहने पर भी यथासम्भव काम करता है, तो अपना पूर्ण भरण-पोषण पाने का अधिकार उसे भी प्राप्त होगा। जो व्यक्ति दृष्टि-शक्ति से हीन है, वह पूरी शक्ति लगाकर काम करने पर भी आँखवालो की तुलना मे कम काम कर सकता है, किन्तु इसी कारण से काम करने की शक्ति और तारतम्य के अनुसार पालन-पोषण की व्यवस्था और तारतम्य की व्यवस्था करना अन्याय है। पोषण भौतिक वस्तु है और सेवा नैतिक वस्तु। नैतिक वस्तु का मूल्य भौतिक वस्तु के मूल्य के द्वारा निर्धारित नही किया जा सकता। डूबते हुए व्यक्ति का उद्धार करनेवाले व्यक्ति की दस मिनट की सेवा का ही मूल्य क्या मजदूरी के हिसाब से आँका जा सकता है ? माँ सन्तान की, पुत्र पिता की, शिष्य गुरु की, मत्री समाज की सेवा करते है, किन्तु इन सब सेवा-कार्यो का मूल्य पैसे के रूप में नही आँका जा सकता। जिस सेवा मे हृदय उँडेल दिया गया है, उसका मूल्य किस प्रकार पैसे के द्वारा निश्चित किया जा सकता है ? पुत्र ने माता को जो कुछ दिया है, विद्यार्थी ने गुरु को जो कुछ दिया है, किसान ने समाज को जो कुछ दिया है, वह अमूल्य है। नैतिक मूल्य की तरह ही आर्थिक क्षेत्र मे भी श्रम का मूल्य समान होना चाहिए। किन्तु, आज इसके सर्वथा विपरीत स्थिति है। शारीरिक कार्य की अपेक्षा बुद्धि के कार्य को अधिक मूल्य दिया जा रहा है—प्रतिष्ठा भी अधिक दी जा रही है। किन्तु, इस प्रकार का वैषम्य सर्वथा आधारहीन है। साम्ययोग की विचारधारा आत्मा के समत्व पर आधृत है। इसीलिए उसमें आर्थिक क्षेत्र मे किसी प्रकार की विषमता स्वीकार नही की जाती। तब सेवक की भूमिका के अनुसार सेवा का प्रकार-भेद हो सकता है। जो सेवा माँ कर सकती है, वह पुत्र नही कर सकता और जो सेवा पुत्र कर सकता है, वह माँ नही कर सकती। जो सेवा स्वामी कर सकता है, वह सेवक नहीं कर सकता और जो सेवा सेवक कर सकता है, वह स्वामी नही कर सकता। भाई जो सेवा कर सकता है, वह बहन नही कर सकती और बहन जो सेवा कर सकती है, भाई नहीं कर सकता। इसी तरह व्यक्ति के पार्थक्य और

शक्ति के पार्थक्य के अनुसार सेवा का पार्थक्य हो सकता है। किन्तु, सबके लिए समान रूप से चिन्ता करनी होगी।

"अँगुलियाँ कम-बेशी काम देती हे, किन्तु वे सब समान हैं। एक अँगुली से जो काम होता हे, वह दूसरी से नही होता। इसी प्रकार यह समझना आवश्यक है कि समाज में एक की सेवा दूसरे की सेवा से भिन्न हो सकती है, परन्तु उसका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए।

"हमने यह समझ लिया है कि साम्ययोग के सिद्धान्त के अनुसार जब नैतिक मूल्य मे कोई अन्तर नहीं होता, तब आर्थिक क्षेत्र में भी अन्तर होना उचित नहीं है। विकास के लिए सबको समान सुयोग प्राप्त होना चाहिए। विद्यार्थी अपनी ग्रहण-शक्ति के अनुसार शिक्षा ग्रहण करेगा, यह सही है, किन्तु पारिश्रमिक का परिमाण कम-बेशी करने से सबका ठीक तरह से विकास नही होगा। इससे क्षेत्र-परिवर्तन करके अन्य क्षेत्र मे जाने का आकर्षण आ जाता है—जैसा कि आजकल होता है। समान वेतन की व्यवस्था होने से इस मनोवृत्ति का दमन होगा।

"आर्थिक क्षेत्र मे साम्ययोग का परिणाम यह होगा कि प्रत्येक ग्राम पूर्णरूप से स्वावलम्बी हो जायगा। अन्न, वस्त्र, दूध, घी आदि जिन सब वस्तुओ की मूलत आवश्यकता होती है, वे प्रत्येक ग्राम मे पर्याप्त परिमाण मे उत्पन्न होगी और इससे ग्राम स्वावलम्बी बन जायँगे। इस प्रकार सबके स्वावलम्बी होने से समता का उद्भव होगा। यदि यह ग्राम अपूर्ण रहे और वह ग्राम भी अपूर्ण रहे, तो दोनो की अपूर्णता के कारण साम्य की स्थापना नहीं हो सकेगी। जिन सब वस्तुओ की मूलत आवश्यकता होती है, उनका गाँव मे उत्पादन होना आवश्यक है। भगवान् ने सबको परिपूर्ण करके पैदा किया है। बुद्धि और शक्ति कम-बेशी है। किन्तु, भगवान् की व्यवस्था इस प्रकार विकेन्द्रित है कि सबका विकास हो सकता है। इस प्रकार की विकेन्द्रित व्यवस्था आर्थिक क्षेत्र में भी होने की आवश्यकता है।"

राजनीतिक क्षेत्र मे साम्ययोग के फल की व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं "साम्ययोग के फलस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र मे भी वर्तमान मूल्य का परिवर्तन होगा। हम केवल शोषणहीन समाज नहीं चाहते—हम शासन-हीन समाज भी चाहते हैं। साम्ययोग के सिद्धान्त के अनुसार शासन-सत्ता

का ग्राम-ग्राम में वितरण होगा। अर्थात् ग्राम-ग्राम मे अपने राज की प्रतिष्ठा होगी। मुख्य केन्द्र में नाममात्र की सत्ता रहेगी और इस प्रकार होते-होते अन्त मे शासनहीन समाज स्थापित हो जायगा।"

साम्ययोग सामाजिक क्षेत्र मे जिस क्रातिकारी परिणाम की सृष्टि करेगा, उसका वर्णन करते हुए विनोबाजी कहते है . "सामाजिक क्षेत्र मे भी जातिभेद या ऊँच-नीच का भेद नही रहेगा। यदि किसीमे ब्राह्मण के गुण रहेगे, तो उसे तदनुरूप काम दिया जायगा। किन्तु, इसी कारण उसे अन्य लोगो से ऊँचा नहीं माना जायगा। इसी प्रकार मेहतर, मोची आदि को भी नीच नहीं माना जा सकेगा, क्योकि उनके न रहने से समाज नही चल सकेगा।"

असली क्राति या विप्लव एकमात्र साम्ययोग के द्वारा ही आ सकता है। यह दावा करते हुए विनोबाजी कहते है "इसी प्रकार नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था मे भी परिवर्तन लाना साम्ययोग का उद्देश्य है। इसे क्राति कहा जाता हे। आजकल हिंसा को ही विप्लव या क्राति समझा जाता है, किन्तु जहाँ मौलिक विषय मे क्राति नही होती, वहाँ केवल ऊपर-ऊपर परिवर्तन आने को विप्लव कहना गलत हे। विप्लव तभी होगा, जब हम नैतिक जीवन मे विप्लवी परिवर्तन ला सकने में सक्षम हो। हम यह दावा करते है कि साम्ययोग नैतिक मूल्य मे परिवर्तन लाता है, क्योकि साम्ययोग का आधार आध्यात्मिक हे और वह जीवन के हर क्षेत्र में क्राति की सृष्टि करता है।" अर्थात् आत्मा की एकता स्वीकार करने से ही नैतिक क्षेत्र मे समता की मनोवृत्ति आ सकती हे, अन्यथा नही। जहाँ नैतिक क्षेत्र मे समता-वृत्ति का अभाव है, वहाँ जीवन के अन्यान्य क्षेत्रो मे मौलिक समता की सृष्टि कर सकना सम्भव नही है।

साम्ययोग के व्यापक दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते है . "साम्ययोग का विचार हृदयगम करने के लिए पहले मोह-ममता से मुक्त होने की आवश्यकता है। भूदान-यज्ञ मोह-ममता से मुक्त होने का उपाय है। किस प्रकार मुक्त हुआ जा सकेगा ? जमीन का स्वामित्व-भाव त्याग करके यह मुक्ति-साधना आरम्भ करनी होगी। भूदान करना किसी पर कृपा करना नही है। और भी आगे बढकर मै कहूँगा कि किसी प्रदेश में

यदि जमीन कम और आबादी अधिक हो, तो एक प्रदेश के लोग दूसरे प्रदेश में जाकर निवास कर सकेंगे। इसी प्रकार एक देश के लोग दूसरे देशों में भी जाकर बस सकें। पृथ्वीमाता का द्वार सबके लिए खुला है। जो जहाँ रहना चाहेंगे, वहाँ रहेंगे। इस प्रकार हम विश्व के नागरिक बनना चाहते हैं और सभी प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक भेद दूर करना चाहते हैं। जमीन थोड़ी हो, छोटा टुकड़ा हो या बड़ा हो, वह सब परमेश्वर का ही दान है। हम उसके मालिक नहीं हो सकते। भारत के निवासी भारत के मालिक हैं और जर्मनी के निवासी जर्मनी के, यह धारणा गलत है। संसार में जितनी वायु है, जितना जल है, जितना प्रकाश है, जितनी भूमि है, सब सबकी सम्पत्ति है—यह साम्ययोग की व्यापक दृष्टि है।"

कांचीपुरम्-सर्वोदय-सम्मेलन के समय वहाँ अपने प्रथम दिन के प्रार्थना-प्रवचन में विनोबाजी ने व्याख्या करते हुए बतलाया कि समग्र दृष्टि में साम्यवाद और साम्ययोग के बीच क्या पार्थक्य है। उन्होंने कहा "साम्यवाद विषमतावाद की प्रतिक्रिया है—वह साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की प्रतिक्रिया है। साम्ययोग एक जीवन-विचार है, वह स्वयम्भू है। यूरोप में पूँजीवादी समाज-रचना के कारण जो विचारधारा प्रसारित हुई थी, उसमें कई त्रुटियाँ थीं। इसलिए वहाँ प्रतिक्रिया-स्वरूप साम्यवाद का जन्म हुआ। इस तरह की प्रतिकारात्मक विचारधारा जीवन-विचार नहीं हो सकती। वह एक तात्कालिक वस्तु है और किसी समय-विशेष के लिए उपयोगी साबित होती है। मेरी धारणा है कि साम्यवाद का काम प्रायः समाप्त हो गया है—उसका सार-तत्त्व संसार ने ग्रहण कर लिया है। उसकी ओर आज सारा संसार आकृष्ट है। हम उसे 'सर्वोदय' कहकर पुकारते हैं। हमने उसे 'साम्ययोग' नाम दिया है। वह एक जीवन-विचार है। चिरकाल तक उसकी उपयोगिता बनी रहेगी, क्योंकि उसका आधार आत्मा की एकता है। आत्मा की एकता भारत के ऋषियों द्वारा अनुभवसिद्ध है। आत्मा की एकता के सम्बन्ध में वे मनुष्य-समाज को शिक्षा दे गये हैं।"

सख्य भक्ति का युग

अनादिकाल से मानव-समाज का विकास होता आ रहा है। आत्मा अनन्तगुण-सम्पन्न है। एक-एक युग के प्रयोजन के अनुरूप आत्मा के एक-

एक गुण का विकास होने की आवश्यकता होती है। तव उस गुण का विकास होता है और समाज मे उस गुण का चिन्तन-मनन होने लगता है। इसी प्रकार समाज मे एक समय वस्त्र-धारण गुण के विकास की आवश्यकता हुई थी। उस युग के समाज मे वस्त्र-धारण को ही धर्मस्वरूप माना जाता था। और एक युग मे काम-नियमन की आवश्यकता हुई थी। उस समय काम-नियमन की चेष्टा मे विवाह-प्रथा की सृष्टि हुई। गुणमात्र का ही लोग आदर करते है, यह सत्य है, किन्तु युग के प्रयोजन के अनुसार और परिस्थिति की परिणति के फलस्वरूप समाज में जिस गुण के विकास का प्रयोजन होता है, उस गुण का प्रयोग करने के लिए समाज उत्सुक हो उठता है। वस्त्र-धारण का आज मनुष्य आदर करता है। काम-नियमन का मनुष्य निश्चय ही आदर करता है, किन्तु आज उसके विकास के लिए समाज उत्सुक नही है। तव, जिस गुण के प्रयोग और विकास के लिए आज समाज उत्सुक हुआ है, वह कौन-सा गुण है अथवा वे कौन-कौन-से गुण है ? विनोवाजी कहते है कि आज तीन गुणो की आवश्यकता का उद्भव हुआ है (१) निर्भयता, (२) समता और (३) समाजनिष्ठा। समता के विषय मे हम यहाँ विचार करेगें। एक युग मे सदुद्देश्य से प्रेरित होकर ही वर्ण-व्यवस्था कायम की गयी थी। विनोवाजी इस सम्बन्ध मे कहते है "ऐसी व्यवस्था थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सके। उस युग मे मनुष्य की योग्यता देखी जाती थी। उस युग के लोग सोचते थे कि जिन्हे कम वुद्धि है, उन्हें पढने-लिखने की क्या आवश्यकता है ? उन्हे मेहनत के काम मे लगाना अच्छा होगा, और यदि उन्हे वुद्धि के काम मे लगाया जायगा, तो उनसे वुद्धि का भी काम नही होगा और मेहनत का भी नही।" इसीलिए श्रेणियो या वर्णों की सृष्टि की गयी थी। किसी पर राज्यभार और देश-रक्षा का भार दिया गया। किसी पर वाणिज्य-व्यवसाय का भार डाला गया। और, किसीको शारीरिक परिश्रम करने का भार दिया गया। अन्य वर्णो की सेवा करने का भार एक अन्य श्रेणी को दिया गया। अभी हम ऐसा सोच सकते है कि वर्णभेद करने मे उनका उद्देश्य अच्छा नही था, किन्तु यह ठीक नहीं है। किसी वुरे उद्देश्य से वर्णभेद नही किया गया था। विनोवाजी कहते है "वाद मे असमता वढी और लोगो ने सोचा कि प्रत्येक की योग्यता वढायी

जा सकती है। जिस युग में विज्ञान नहीं था, उसी युग में वर्णों का जन्म हुआ था। किन्तु, जब विज्ञान का विकास होने लगा, तब यह सोचा जाने लगा कि विज्ञान की सहायता से सभी मनुष्यों का समान विकास किया जा सकता है। अतएव वर्णों अथवा श्रेणियों की अब कोई आवश्यकता नहीं है।" समाज में जिन अन्य असमतामूलक या समता की विरोधिनी व्यवस्थाओं का जन्म हुआ था या जिन्हें पैदा किया गया था, उनके सम्बन्ध में भी वही बात प्रयोज्य है। अर्थात् आज विज्ञान के युग में इन सब असम व्यवस्थाओं को कायम रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसीलिए आज समाज में समता की इतनी ही भूख जगी है। समता-विरोधी कोई बात समाज को अच्छी नहीं लगती। समाज में समता लाने-सम्बन्धी कोई भी आन्दोलन जनसाधारण में उत्साह पैदा करता है, क्योंकि आज युग की यही आवश्यकता है।

आज समता का युग आया है। इसलिए समाज में, श्रेणी-श्रेणी में, व्यक्ति-व्यक्ति में जो श्रद्धा या भक्ति विद्यमान थी, उसकी भूमिका में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आना निश्चित है। पारस्परिक सम्पर्क की तरह ही पारस्परिक प्रेम, भक्ति या श्रद्धा का भी रूप होगा। पारस्परिक सम्पर्क की भूमिका में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। इसीलिए प्रेम, श्रद्धा या भक्ति के रूप में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं। समता के युग में भक्ति का रूप 'सख्य भक्ति' होता है। शास्त्र में पाँच प्रकार के प्रेम-भाव या भक्ति-भाव की चर्चा हुई है। शास्त्र कहता है कि प्रेम-भाव या भक्ति-भाव पाँच प्रकार के होते हैं। जैसे,—शान्त, दास्य, सखा, वात्सल्य और मधुर। ऋषि लोगों का भाव शान्त-भाव होता है। "स्वानन्दभावे परितुष्ट।" "आत्मन्येवात्मना तुष्ट।" माँ का सन्तान के प्रति वात्सल्य-भाव होता है, जैसा कि गोपाल के प्रति यशोदा का भाव है। पत्नी का भाव मधुर-भाव होता है, जैसे गोपिकाओं का भाव। दास्य-भाव होता है स्वामी के प्रति सेवक का भाव। रामचन्द्र के प्रति हनुमान् का दास्य-भाव था। और सखा-भाव कहते हैं बन्धु के प्रति बन्धु के, सखा के प्रति सखा के भाव को। श्रीकृष्ण के प्रति अर्जुन की जो भक्ति, श्रद्धा या प्रेम है, वह सखा-भक्ति का उदाहरण है। जो व्यक्ति दूसरे को जैसा देखता है या समझता है, उसका भाव वैसा ही होता है। "यो यच्छ्रद्ध स एव स।" जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है। आज

समता का युग है। इसकी विशद व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं · "अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण के बीच सख्य भक्ति की भूमिका थी। एक-दूसरे को समान मानकर वे काम करते थे। श्रीकृष्ण ज्ञान के भाडार थे। अर्जुन का ज्ञान सीमित था। वे पराक्रमी तो थे, किन्तु उनकी शक्ति परिमित थी। श्रीकृष्ण की शक्ति असीम थी। किन्तु, उन दोनो के बीच सखा-सम्बन्ध था, दोनो के बीच समानता का सम्बन्ध था। भगवान् के प्रति अर्जुन के मन में आदर-श्रद्धा थी, किन्तु उसका मूल समता मे था। उसके पूर्व एक युग दास्य-भक्ति का युग था। उस युग मे स्वामी-सेवक का भाव था। स्वामी और सेवक के बीच प्रेम था। किन्तु, स्वामी सेवक का पालन-पोषण करता था और सेवक स्वामी की भक्ति करता था। वह हनुमान् का युग था। हनुमान् राम की जो भक्ति करते थे, वह दास्य भक्ति थी। आज ससार मे सख्य भक्ति की भूख बहुत अधिक है। इसका अर्थ यह नही है कि जो पूज्य पुरुष है, उनके प्रति भक्ति नही रहेगी। अब भक्ति के साथ-साथ समता का सम्बन्ध रहेगा। जब युद्ध का समय आया, तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा 'आप मेरी सहायता करेंगे क्या ? आप मेरे सारथी बने और मेरे घोडो की देख-रेख करे।' इस प्रकार अर्जुन ने अपने परमपूज्य व्यक्ति को घोडो की सेवा का काम सौंपा था। मित्रता का सम्बन्ध था, इसलिए उन्होने ऐसा किया था।

"हनुमान् के युग मे समाज का गठन ऐसा था कि शक्तिशाली व्यक्ति स्वामी होता था और सेवापरायण व्यक्ति सेवक। स्वामी और सेवक के बीच प्रेम और आदर रहता था, किसी तरह का विवाद उनके बीच नही था। किन्तु, उस युग मे विकास की सीमा निर्दिष्ट थी।

"रामचन्द्र 'राजा राम' थे, किन्तु कृष्ण 'राजा कृष्ण' नही थे। वे 'गोपाल-कृष्ण' थे—बन्धु ही थे। वर्तमान युग मे आपस मे कितना भी प्रेम क्यो न रहे, स्वामी-सेवक का सम्बन्ध उपयोगी नही प्रतीत होता। बीच मे ऐसा समय आया था, जब स्वामी अत्याचारी बन गया था और सेवक के मन मे स्वामी के प्रति श्रद्धा का भाव नही रह गया था। आज भी स्वामी-सेवक के सम्बन्ध सुधर सकते है, परन्तु आज के युग की माँग 'सख्य भक्ति' है। स्वामी-सेवक के सम्बन्ध इस युग मे पर्याप्त नही है।

"इसीलिए हम जब दान माँगते है, तो यह नही कहते कि 'आप श्रेष्ठ है, आप स्वामी है, आप मालिक है, हमे दान दीजिये। हम आपकी सेवा करेंगे। हम आपके कृतज्ञ होगे।' हम तो यही कहते है कि सब भाई-भाई है। मै बराबर का हिस्सेदार हूँ। मुझे मेरा हिस्सा दीजिये। दान का अर्थ समान विभाजन है, समान वितरण है। यह शंकराचार्य द्वारा निर्दिष्ट अर्थ है। इसीलिए जब कोई एक सौ एकड मे से दो एकड का दान देता है, तो मैं उसे स्वीकार नही करता। यदि मैं दास्य-भाव लेकर माँगता, तो दो एकड भी स्वीकार कर लेता और उसे प्रणाम करता, उसके प्रति कृतज्ञ रहता, उसका उपकार मानता। किन्तु आज हम सखा-सम्बन्ध के आधार पर माँग रहे है। आज का सामाजिक संगठन सखा-भाव को मान लेगा। आज गुरु-शिष्य एक-दूसरे के मित्र होगे। एक का दूसरे के प्रति प्रेम रहेगा। गुरु शिष्य को शिक्षा देगा और शिष्य भी गुरु को शिक्षा देगा। जिसके पास जो कुछ है, वह दूसरे को देगा। दोनो ही दोनो का उपकार स्वीकार करेगे। इस प्रकार समता का सम्बन्ध स्वीकार करके गुरु-शिष्य रहेगे, मालिक-मजदूर रहेगे, स्वामी-सेवक रहेगे।

"एक समय था, जब पत्नी पति को पतिदेव मानती थी और अपने को दासी। वह समय बुरा नही था। किन्तु, आज हम एक कदम आगे बढ गये है। वर्तमान युग की पत्नी पतिव्रता होगी और पति पत्नीव्रत होगा। एक-दूसरे को देवता समझेगे। जिसकी योग्यता अधिक होगी, वह आदरणीय होगा। यदि पति की योग्यता अधिक होगी, तो पत्नी उसकी श्रद्धा करेगी और यदि पत्नी की योग्यता अधिक होगी, तो पति उसके प्रति श्रद्धा-भाव रखेगा। किन्तु, उन दोनो के बीच समानता का सम्बन्ध होगा। इसीको मैं सख्य भक्ति का युग कहता हूँ।"

वर्तमान युग के इस परिवर्तन का लक्षण और भी दो-एक पारिवारिक सम्बन्धो के क्षेत्र मे देखा जा रहा है। पहले बंगाली-परिवार मे भाई की पत्नी को बेटी की तरह माना जाता था और भाई की पत्नी अपने पति के बडे भाई को पिता की तरह मानती थी और इसीके अनुसार दोनों एक-दूसरे को सम्बोधित करते थे। आजकल आधुनिक रुचि-सम्पन्न बंगाली-परिवार मे वधू अपने पति के बडे भाई को "दादा" कहकर पुकारने लगी है और छोटे

भाई की पत्नी को लोग नाम से पुकारने लगे हैं। उन लोगों के बीच परस्पर श्रद्धा या भक्ति में कमी नहीं आयी है, किन्तु आज वह सख्य भक्ति में परिणत हो गयी है। आधुनिक रुचि-सम्पन्न गुजराती परिवार में बच्चे पिता को नाम लेकर पुकारते हैं। जैसे, पिता का नाम 'मनुभाई' है, तो पुत्र पिता को 'मनु-भाई' कहकर पुकारता है। यहाँ पिता-पुत्र के बीच प्रेम-भाव नष्ट नहीं होता—केवल युग-परिवर्तन के अनुसार उसका प्रकार-भेद हो जाता है।

विनोबाजी आगे कहते हैं : "युग की माँग के अनुसार हमें समाज का गठन करना होगा। आज यह समझ लेना आवश्यक है कि पुराने युग का जो मूल्य था, वह ठीक उसी रूप में टिक नहीं सकता। तुलसी-रामायण के समय जिसका जो मूल्य था, इस युग में उसका वही मूल्य नहीं रहेगा। उस युग में ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते थे, किन्तु वर्तमान युग की रामायण में यह नहीं माना जा सकता कि केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं। जो अच्छे हैं, वे श्रेष्ठ माने जायँगे (किन्तु समता का सम्बन्ध रहेगा)।

"वर्तमान युग में कारखानों में मालिक और मजदूर रहेंगे। एक की बुद्धि अधिक और दूसरे की शारीरिक शक्ति अधिक। मजदूर यह नहीं कहेगा कि 'आप मालिक हैं और मैं आपका नौकर हूँ।' यह सम्बन्ध और अधिक दिनों तक नहीं चलेगा। अब तो दोनों ही भागीदार होंगे। बुद्धि के लिए मालिक को जो पारिश्रमिक मिलेगा, शारीरिक श्रम के लिए मजदूर को भी वही पारिश्रमिक मिलेगा। पारिश्रमिक बराबर होगा, परन्तु जिसकी योग्यता अधिक होगी, वह आदरणीय होगा। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का मित्र होगा, साथी होगा।

"वर्तमान युग में भाई-भाई, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी आदि के सम्बन्ध नवीन ढंग के होंगे। उसमें एक नयी रुचि आयगी। प्राचीन युग में भी पारस्परिक सम्बन्ध प्रेमपूर्ण थे। किन्तु आज वह प्रेम विकारग्रस्त हो गया है। पति महोदय बिगड़ गये हैं, फिर भी उन्हें देवता माना जा रहा है और साध्वी होने पर भी पत्नी का आदर नहीं है। जहाँ सम्बन्ध खराब हो गया है, वहाँ नवीन युग की माँग सामने आ गयी है।

"आज यदि स्वयं रामचन्द्र भी संसार में आकर राजा राम होना चाहें, तो हम यह स्वीकार नहीं करेंगे। महात्मा गांधी भी यदि आयें, तो हम उन्हें

राजा गाधी नही बनायेंगे। वे महात्मा गाधी रहेंगे। प्राचीन काल मे अच्छे राजा थे, किन्तु उनकी अपेक्षा खराब राजा अधिक थे। पहले प्रजा का विकास सीमाबद्ध था, किन्तु आज समय आगे बढ गया है। जो व्यक्ति समय के परिवर्तन के अनुसार चलना नही सीखता, वह हार भी खाता है और मार भी। धारा मे पडा हुआ व्यक्ति यदि हाथ-पाँव न चलाये, तो भी धारा उसे आगे ले जाती है। किन्तु, यदि वह धारा के विपरीत जाने की चेष्टा करेगा, तो उसका कुछ व्यायाम होगा, यह तो सही है, किन्तु वह आगे नही बढ सकेगा।

"मनुष्य कितना भी बडा क्यो न हो, उसकी प्राचीन प्रतिष्ठा और आडम्बर आज और नही चलेगा। हमारे पास इसका एक उदाहरण है। परशुराम कितने महान् पुरुष थे। उनकी बडी ख्याति भी थी। उन्होने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन किया था। वे अवतार थे। किन्तु, जब रामचन्द्र आये, तब उन्हे यह पहचान लेना जरूरी था कि नया अवतार आ गया है। किन्तु, उन्होने यह नही पहचाना और रामचन्द्र के साथ लडाई करने को बढे। उसमे वे पराजित हुए। परशुराम-सदृश शक्तिशाली पुरुष जब यु के विरुद्ध जाने के उपक्रम में नही टिक सका, तब दूसरा कोई कैसे टिकेगा? पुरानी रीति कितनी भी अच्छी क्यो न हो, वह नये युग मे अच्छी तरह ठहर नही सकेगी।

"आज जब कार्यकर्ताओ के साथ मे ी वार्ता हुई, तब मैने उनसे कहा कि हमे जो एक-षष्ठाश चाहिए, वह मानो टैक्स की अदाई की जा रही है। मै तो यह विचार समझा रहा हूँ कि भूमि, सम्पत्ति और उत्पादन के साधनो पर अब सबका समान अधिकार है। युग की माँग की बात जो व्यक्ति बतलाता है, उसे लोग उद्धत मानते है। यदि उसे उद्धत माना जायगा, तो वह उद्धत हो जायगा। किन्तु, यदि युग की भूख पहचान ली जाय तो जो माँगने आयेगा, वह नम्र होकर रहेगा और छोटे-बडे की श्रद्धा करेगा।"

माता-पिता के साथ सन्तान के सम्बन्ध के विषय मे चर्चा करते हुए विनोवाजी कहते है "लोग कहते है कि आजकल सन्तान माता-पिता की श्रद्धा नही करती। सन्तान तो बाल्यावस्था मे ही माँ पर पूर्ण श्रद्धा रखकर चलती रहती है। माँ यदि कहेगी कि वह चाँद है, तो बच्चा मान लेगा। बच्चा यह नही कहता कि ठहरो, जरा मै पता लगा लूँ कि वह सचमुच चाँद

है या नही। इतनी श्रद्धा रहने पर भी लोग कहते है कि सन्तान माँ-बाप को नहीं मानती। मै तो यह कहूँगा कि माता-पिता युग की प्रवृत्ति को नहीं समझते। माता-पिता सन्तान के साथ समानता का सम्बन्ध रखकर चले और समता के आधार पर प्यार करे। उन्हे माता-पिता आदेश नही, परामर्श दे। आज्ञा न दे। मारे-पीटे भी नही। पहले भी माता-पिता मार-पीट करते थे, किन्तु प्यार का ही भाव लेकर। इस युग मे ऐसा और नही चलेगा। इस युग मे माँ कहेगी कि मै तुम्हे दड नही दूँगी, अपने को दड दूँगी, उपवास करूँगी।

"सबकी अपनी-अपनी विशेषता है। मजदूर की बुद्धि कम होने पर भी उसकी सहृदयता अधिक हो सकती है। किसीके लिए भी वह मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तैयार हो सकता है। हमारी बुद्धि अधिक हो सकती है, किन्तु हम शारीरिक दृष्टि से दुर्बल है। प्रत्येक व्यक्ति मे कुछ-न-कुछ दुर्बलता भी है और विशेषता भी। इसीलिए समता के सम्बन्ध के आधार पर परस्पर प्रेम रहना चाहिए।"

इस दृष्टि से यदि भूदान-यज्ञ को देखा जाय, तो यह इस युग की माँग है, यह बात सहज ही समझ मे आ जाती है। यदि यह युग की माँग नही होती, तो गरीब पर्यन्त दान नही देते और धनी लोग विनोबाजी के मार्ग मे बाधा देते। इसीलिए विनोबाजी इस सम्बन्ध मे कहते है "यह नवीन विचार मैंने अपनी थैली से बाहर नही निकाला है। युग-प्रवाह से मैंने इसे ग्रहण किया है। इस विचार का प्रसार करने की दृष्टि से काम कीजिये—केवल 'कोटा' पूरा करने की दृष्टि से नही। 'कोटा' पूरा कर देने से ही काम नही चलेगा। जब आप जनसाधारण को यह समझा दे सकेंगे कि सख्य भक्ति का समय आ गया है, तभी आपका काम सफल माना जायगा।"

साम्य का स्वरूप

आज का समाज-सघटन बहुत विकारग्रस्त है। विनोबाजी कहते है "वह संगठन नही है, वह विध्वस है। उसकी सबसे बडी त्रुटि है—बहुत अधिक वैषम्य। इस वैषम्य को दूर कर समाज मे साम्य-स्थापना करनी होगी।" यह साम्य किस प्रकार होगा ? विनोबाजी कहते है : "हमे नया सग न

तैयार करना होगा। इसके लिए हमें अपने हाथ की पाँच अँगुलियों से शिक्षा लेनी होगी। ये अँगुलियाँ पूर्णतः समान भी नहीं हैं और असमान भी नहीं। प्रत्येक अँगुली अपने में स्वतन्त्र है। इसके अतिरिक्त अन्य अँगुलियों का सहयोग लेकर प्रत्येक अँगुली काम करती है। इसी आधार पर हमें भी समाज-रचना करनी होगी, जिसमें कि नये समाज में अत्यन्त असाम्य भी न रहे और अत्यन्त समानता भी न रहे। उस समाज में प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यक्तित्व रहेगा, प्रत्येक के व्यक्तित्व का विकास होगा और प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के सहयोग से काम करेगा। यही समझाने के लिए मैं द्वार-द्वार घूमता फिर रहा हूँ।" समाज में साम्य-प्रतिष्ठा करने के लिए हमें विवेक-बुद्धि के सहारे चलना होगा। ऐसा होने पर ही हम हाथ की पाँचों अँगुलियों की शिक्षा सम्यक् रूप से ग्रहण कर सकेंगे। विनोबाजी ने एक उदाहरण देकर यह बात समझायी है। माता अपने बच्चों को गणित के हिसाब से समान भोजन नहीं देती। सबसे छोटे बच्चे को वह केवल दूध देती है। उससे कुछ बड़े बच्चे को वह थोड़ा दूध और रोटी खाने को देती है और बड़े को केवल रोटी देती है। यही विवेकयुक्त समता है। अहिंसा के पथ पर समता आने से ऐसी ही समता आयगी। किन्तु, अन्य देशों में हिंसा के पथ पर जो समता लाने की चेष्टा की गयी है, वह असफल साबित हुई है। विनोबाजी कहते हैं "समाज में प्रत्येक व्यक्ति की भूख और पंचेन्द्रिय शक्ति देखकर उसके भोजन की व्यवस्था करनी होगी। किन्तु, जहाँ हिंसा के द्वारा समता की स्थापना की गयी है, वहाँ सबको एक ही साँचे में ढाला गया है। हम इस प्रकार सबका एक साँचे में ढला होना कभी पसन्द नहीं करेंगे। हम विवेक के द्वारा समता लाना चाहते हैं। आध्यात्मिक समता की स्थापना हमारा लक्ष्य है।" आध्यात्मिक समता का आधार है, स्वामित्व-भाव का त्याग। यह जमीन मेरी है, यह घर मेरा है, यह खेत मेरा है—इस प्रकार के मोह का विसर्जन करना होगा। ये सब जो चीजें हमारे पास हैं, वे दूसरों की सेवा के लिए हैं, मैं उनका रक्षक-मात्र हूँ, मैं ट्रस्टी-मात्र हूँ—ऐसी विचारधारा समाज में प्रतिष्ठित करनी होगी। तभी साम्य का आदर्श सार्थक हो सकेगा। जो सम्पत्ति है, यदि उससे सबका पूर्णतः पोषण न हो पाये, तो सभी थोड़ा-थोड़ा उसका उपभोग करेंगे। एक रोटी से पेट भरता है, आठ व्यक्ति हैं और रोटियाँ

है केवल छह। एक व्यक्ति को तीन, एक व्यक्ति को दो और वाकी छह व्यक्तियो के लिए केवल एक रोटी ! इस स्थिति मे इस प्रकार परिवर्तन लाना होगा कि सव थोडा-थोडा खाना स्वीकार करें और कोई भी ¾ से अधिक रोटी न खाये। ऐसी समतामूलक मनोवृत्ति का एक दृष्टान्त विनोवाजी ने दिया है "एक तमिल साधु एक छोटी झोपडी के वाहर सोकर रात काटते थे। एक रात वर्षा होने के कारण वे उठकर अन्दर जाकर सोये। तभी वाहर से किसी व्यक्ति ने दरवाजा खटखटाया। साधु ने कहा 'आओ भाई, घर मे एक आदमी सो सकता है, परन्तु दो आदमी वैठे रह सकते है।' उन्होने आगतुक को अन्दर ले लिया और दोनो वैठे रहे। इसके वाद एक तीसरे व्यक्ति ने आकर दरवाजा खटखटाया। साधु ने कहा 'यहाँ एक व्यक्ति सो सकता है, दो व्यक्ति वैठ सकते है, किन्तु तीन व्यक्ति खडे रह सकते है। अत आओ, हम तीनो व्यक्ति खडे रहेगे।' उन्होने तीसरे व्यक्ति को भी अन्दर ले लिया और तीनो व्यक्ति खडे रहे।" भारत मे साम्य का यही आदर्श प्रतिष्ठित होगा। इस प्रसग मे रूमी की मसनवी की एक कहानी याद आती है।*

एक सूफी था। उसने अपने एक मित्र के घर जाकर दरवाजे पर धक्का दिया। मित्र ने भीतर से पूछा 'Who is there ?' (कौन है ?) सूफी मित्र ने कहा 'I am' (मै हूँ तुम्हारा मित्र।) मित्र ने तव उत्तर दिया 'Begone at my table there is no place for the two' (वापस जाओ मित्र, मेरी मेज पर दो व्यक्तियो के लिए स्थान नही है।) सूफी मित्र तव मन मे दुःख लिये चले जाने को वाध्य हुआ। किन्तु विरह की अग्नि मे उसका हृदय जला जा रहा था। इसीलिए वह भय और श्रद्धा लिये वापस लौटा और उसने पुन मित्र के दरवाजे पर आवाज दी। अन्दर से पहले की ही तरह प्रश्न हुआ 'Who is there ?' (कौन है ?) सूफी ने उत्तर दिया 'Thou beloved thou' (हे प्रियतम, तुम।) तव दरवाजा खुल गया और मित्र वोला 'Since thou art I, come in, there is no room for two, I's in this room'

* 'विश्ववाणी'—कार्तिक, १३५९। पृष्ठ ३९५—'मन अउ मानुष' शीर्षक निवन्ध से उद्धृत।

(तुम जब मेरे साथ मिलकर एक हो गये हो, तुम्हारा अहम् जब समाप्त हो गया है, तो तुम अन्दर आ जाओ। मेरे घर मे दो 'मै' के लिए स्थान नहीं है।)

श्मशान की शान्ति

एक जगह यह आपत्ति की गयी थी कि वहाँ शान्ति विराजमान थी, किन्तु विनोबाजी के आन्दोलन के कारण स्थानीय लोगो के मन मे भूमि की भूख पैदा हो गयी है और उसमे अशान्ति की सम्भावना दिखाई पडी है। इस पर विनोबाजी ने कहा कि वह शान्ति 'श्मशान की शान्ति' है एव वैसी शान्ति के बदले किसी प्रकार की अशान्ति होने मे वे उसे सह लेगे, क्योकि सुषुप्त जनता की अपेक्षा जाग्रत जनता अच्छी है।

असफलता की प्रतिक्रिया

यदि भूदान-यज्ञ आन्दोलन पूर्ण रूप से सफल न हो, तो जन-साधारण और भूमिहीनो पर इसकी कैसी प्रतिक्रिया हो सकती है, इस विषय मे अनेक लोग विवेचना करते है। किन्तु, अभी इस बारे में विवेचना करने मे कोई लाभ नही है, बल्कि क्षति की ही सम्भावना अधिक है। ज्वलन्त विश्वास लेकर और एकान्त-निष्ठा के साथ एकाग्रचित्त होकर क्रान्ति के काम मे अपने को लगाना पडता है। अन्यथा, पूर्ण फल प्राप्त नही होता। इसीलिए असफलता की सम्भावना के बारे मे चिन्ता और विवेचना करने से उसकी प्रतिक्रिया अवसादपूर्ण हो सकती है। जो हो, इस सम्बन्ध मे इतना ही कहा जा सकता है कि चूँकि इस आन्दोलन का उद्देश्य शान्ति-मार्ग से मनुष्य के हृदय में पडोसी के लिए प्रेम पैदा करना और परिवार की सीमा का विस्तार करना है, यह धर्म का काम जितना भी होगा, उसका फल और प्रतिक्रिया अच्छी ही होगी। गीता की भाषा मे यह कहा जा सकता है कि इस महान् धर्मकार्य का आरम्भ-मात्र भी विफल नही होगा। थोडा भी काम होने से महाभय से परित्राण मिलेगा।

किन्तु इस आन्दोलन की विफलता की प्रतिक्रिया स्वय विनोबाजी पर कैसी होगी, इस विषय मे विचार करने की आवश्यकता है। कौतूहलवश

सत्याग्रह ही उपयोगी था, यह बात सहज ही समझ मे आ जाती है। किन्तु, भारत की भूमि-समस्या के समाधान के लिए एक अभिनव विचार-बोध समाज मे जाग्रत करना होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति-बोध पर वर्तमान समाज आधृत है। इसके विपरीत एक विचार समाज मे पैदा करना होगा। भूमि भगवान् की है। भूमि पर सबका समान अधिकार है। केवल यही नही, हमारे पास जो कुछ है, ससार मे जो कुछ है, सब भगवान् का है। इसलिए सब भगवान् को, अर्थात् समाज को, अर्पित कर केवल अल्पमात्रा मे उसका प्रसाद-स्वरूप भोग करना होगा। ऐसी क्रान्तिकारी विचारधारा की प्रतिष्ठा के लिए किसी भी प्रकार का उग्र सत्याग्रह निष्फल होगा। अतएव यदि पहले ही भूमि-मालिको के विरुद्ध या धनी लोगो के विरुद्ध उग्र सत्याग्रह का अवलम्बन किया जाता, तो वह केवल जबरदस्ती होती और उससे विचार-प्रचार या विचार-प्रतिष्ठा कर सकना सम्भव न होता। इसके अतिरिक्त समाज मे एक विपर्यय-मात्र की सृष्टि होती, कोई सुफल नही निकलता। अभी जिस पथ का अवलम्बन किया गया है, वह यदि पूर्णरूप से सफल न भी हो, तो उक्त क्रान्तिकारी विचार समाज मे सर्वत्र प्रचारित हो रहा है, इस बारे मे सन्देह नही है। यह विचार जब समाज-मानस मे प्रतिष्ठित हो जायगा, तब उक्त विचारमूलक कार्य को पूरा करने के लिए अन्य प्रकार के सत्याग्रह का आश्रय ग्रहण करना होगा। तब भी वह किसी प्रकार का उग्र सत्याग्रह नही होगा।*

सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह

यह बात पहले ही कही गयी है कि भूदान-यज्ञ मे उग्र सत्याग्रह के लिए स्थान नही है और अभी जो काम किये जा रहे है, जैसे—पदयात्रा, ग्राम-ग्राम मे जाकर विचार समझाना और प्रेमपूर्वक भूमि-दान माँगना—वह भी सत्याग्रह है और सौम्य सत्याग्रह है। यदि यह असफल हो जाय, तो बाद मे कौन-सा मार्ग अपनाया जायगा? बिहार मे पदयात्रा के समय विनोबाजी ने इस सम्बन्ध मे कहा था कि अभी वे जो कुछ कर रहे है, उससे एक पग भी वे आगे नही बढेगे, ऐसी बात नही है। अर्थात् असफलता मिलने पर वे और

---

* "सत्याग्रह-शास्त्र का संशोधन" प्रकरण देखिये।

भी एक या अधिक कदम उठा सकते हैं। वह कदम कैसा होगा, इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा था कि माँ जब देखती है कि उसकी सन्तान कुपथ पर जा रही है, तब वह अनशन करती है और सन्तान को समझाती है। अर्थात् सन्तान को दुख न देकर वह स्वय दुख उठाती है और सन्तान को समझाती है। यह सत्याग्रह है और सौम्य सत्याग्रह। इतने दिनो तक उन्होने स्पष्ट रूप से यह नही कहा कि सत्याग्रह के बादवाले कदम अधिकाधिक सौम्य होने चाहिए अथवा परवर्ती सत्याग्रह-समूह सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम होगा। किन्तु पुरी के सर्वोदय-सम्मेलन मे उन्होने स्पष्ट रूप मे कहा कि हमे अपना सत्याग्रह उत्तरोत्तर अधिक सौम्य बनाना पडेगा। वह सौम्य से सौम्यतर, सौम्यतर से सौम्यतम—इसी प्रकार आगे बढेगा। इस प्रकार उन्होने सम्पूर्ण सत्याग्रह-शास्त्र पर एक अभिनव प्रकाश डाला। अतएव सत्याग्रह की प्रकृति और स्वरूप कैसा होना चाहिए, यह अब सर्वथा स्पष्ट हो गया है। हिंसा की शक्ति उग्रता पर निर्भर करती है। हिंसा का प्रथम प्रयोग विफल होने पर बाद के प्रयोग मे अधिक उग्रता लानी पडती है। तभी वह अधिक शक्तिशाली और सफल होगी। दूसरी ओर, अहिंसा की शक्ति और सफलता का मूल है सौम्यता। सौम्यता पर ही उसकी शक्ति निर्भर करती है। इसीलिए अहिंसा का प्रथम प्रयोग असफल होने पर बादवाले प्रयोग मे अधिक सौम्यता लाने की आवश्यकता होती है और प्रथम प्रयोग मे जो कुछ उग्रता रह जाती है, उसे दूर कर देना होता है। ऐसा होने से शक्ति और सफलता बढती है। होमियोपैथी चिकित्सा-शास्त्र मे औषधि की सूक्ष्मता पर उसकी शक्ति निर्भर करती है। इसीलिए पहली खुराक का यदि अच्छा परिणाम नही निकलता है, तो दूसरी खुराक मे औषधि की अधिक सूक्ष्म मात्रा का प्रयोग करना पडता है। उससे औषधि की शक्ति के साथ-साथ उसकी उपयोगिता या सफलता भी बढ जाती है। अहिंसात्मक प्रयोग के क्षेत्र मे भी यही बात है। यही कारण है कि 'उग्र सत्याग्रह' आदर्श सत्याग्रह नही होता। पुरी-सम्मेलन मे विनोबाजी ने कहा "अब सत्याग्रह-शास्त्र आपके समक्ष उपस्थित करता हू। जो लोग सत्याग्रह की बात सोचते है, वे साधारणत यह समझते है कि मानव-समाज छोटी हिंसा से बडी हिंसा की ओर और बडी हिंसा से अति हिंसा की ओर बढ रहा है। वे सोचते है कि पहले सौम्य सत्याग्रह करना होगा। अपनी इस पदयात्रा

को मै सत्याग्रह ही मानता हूँ। लोग कहते है कि हाँ, यह सौम्य सत्याग्रह है, किन्तु इससे ठीक ग से काम न होने पर तीव्र सत्याग्रह करना पडेगा। उससे भी काम न होने पर तीव्रतर सत्याग्रह का प्रयोग करना होगा। इस प्रकार तीव्रता मे वृद्धि करनी होगी। किन्तु, वास्तव मे हमे इसके ठीक विपरीत सोचना चाहिए। हम लोगो ने जो सौम्य सत्याग्रह शुरु किया है, उससे काम न चलने पर, अपेक्षाकृत अधिक सौम्य सत्याग्रह की खोज करनी पडेगी, जिससे शक्ति वढे। उससे भी काम न होने पर शक्ति और बढाने के लिए सौम्यतम सत्याग्रह करना होगा। आप लोग जानते है, होमियोपैथी यह शिक्षा देती है कि औषधि का कम मात्रा मे ही व्यवहार होना चाहिए। वार-वार 'डाल्युशन' के द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर वढा जाता है, जो अधिक फलदायी सावित होता है। हिसा के क्षेत्र मे ऐसा समझा जाता है कि सौम्य अस्त्र से काम न चलने पर तीव्र अस्त्र के व्यवहार से शक्ति वढेगी और काम पूरा होगा। हिसा की इस प्रक्रिया के ठीक विपरीत हमारी प्रक्रिया है। हममे यह दृढ धारणा रहनी चाहिए कि हम लोग जो कर रहे है, उससे काम न चलने का कारण हमारी सौम्यता की कमी होगा और हमे सौम्यता मे वृद्धि करनी पडेगी। यही सत्याग्रह का स्वरूप है। स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए जिस सत्याग्रह का आश्रय ग्रहण किया गया था, वह था दवाव के द्वारा अग्रेजी राजशक्ति को दूर करने का 'निगेटिव' कार्य। उस समय और उस अवस्था मे भारत नि शस्त्र रहते-रहते निराशा मे डूब गया था। कुछ लोग भ्रान्त होकर यहाँ-वहाँ कुछ छोटे-वडे हत्याकाण्ड कर रहे थे। उस समय या तो हिसा का मार्ग अपनाना और नही तो निराश हो चुपचाप बैठे रहना, साधारणत यही दो मनोभाव थे। उसी अवस्था मे अहिंसा का विचार आया और लोगो ने, जितना सम्भव हो सका, उसे ग्रहण किया। अतएव उस समय सत्याग्रह की जिस प्रक्रिया का प्रयोग किया गया था, वही सत्याग्रह का परिपूर्ण रूप था, ऐसा सोचना ठीक नही होगा। उस विशेप परिस्थिति मे एक प्रक्रिया का जन्म हुआ था। स्वाधीनता-प्राप्ति के वाद आज जो अवस्था देखी जा रही है, और सारे ससार मे आज जो शक्ति क्रियाशील है, उसका सूक्ष्म अध्ययन करके यह समझना होगा कि सत्याग्रह की मात्रा हमे क्रमश अधिक सौम्य करनी है। यदि सत्याग्रह सौम्य से सौम्यतर, सौम्यतर से सौम्यतम की ओर वढे, तो वह अधिक सफल और

शक्तिशाली होगा। तुल्सीदासकृत रामायण में सुरसा की कहानी है "सुरसा नाम अहिन की माता।" सुरसा ने हनुमान के समक्ष उपस्थित होकर एक योजन तक मुँह फाडा। यह देखकर हनुमान दो योजन के हो गये। तब सुरसा ने दो योजन अपना मुँह फाडा। यह देख हनुमान चार योजन के हो गये। तब सुरसा का मुँह आठ योजन विस्तृत हो गया। तब हनुमान सोलह योजन के हुए। तब सुरसा 'बत्तीस भयऊ'। सुरसा का मुँह बत्तीस योजन का हो गया। यह देख हनुमान ने समझ लिया कि इसके सामने इस प्रकार गुणन-क्रिया से काम नही चलेगा—३२ से ६४ और ६४ से १२८ यह गुणन-क्रम बढ़ता जायगा। इस वृद्धि का कोई अन्त ही नही होगा। 'न्यूक्लियर विपन्' तक पहुँच जायगा, इसमें कोई सार नहीं है। तब 'अति लघुरूप पवनसुत भयऊ'। हनुमान ने तब अत्यन्त छोटा रूप धारण किया और वे सुरसा के मुँह के अन्दर प्रवेश करके उसके नासिकारन्ध्र से बाहर हो गये। इस प्रकार बात खतम हो गयी। हमें यह समझना होगा कि जहाँ विशाल सुरसा भयंकर रूप धारण करके ऐटम-हाइड्रोजन बम के रूप मे मुँह बाये खडी है, वहाँ हमें अत्यधिक सूक्ष्म रूप धारण करके उसके अन्दर प्रवेश करना होगा और उसके नासिकारन्ध्र से होकर बाहर आना पडेगा। मै यही प्रेरणा पा रहा हूँ।"

सत्याग्रह-शास्त्र में संशोधन

भूमि-मालिको के विरुद्ध आक्रमणमूलक या उग्र सत्याग्रह का आश्रय नहीं लिया जायगा। इस बारे मे पिछले दो प्रकरणो में विचार किया जा चुका है। भूदान-यज्ञ आन्दोलन पिछले पाँच वर्षो से चल रहा है। कोई-कोई व्यक्ति ऐसा सोचते है कि भूदान-यज्ञ की पद्धति से जो-कुछ होना था, वह हो चुका है। अब एक नवीन आक्रमणमूलक कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है। भूदान-यज्ञ मे असीम सम्भावनाएँ निहित है। उसके माध्यम से जो कुछ होना था, वह हो चुका है, ऐसा सोचना भूदान-यज्ञ के महत्त्व को न समझने का द्योतक है। यदि यह मान भी लिया जाय कि भूदान-यज्ञ की पद्धति से जो होना था, वह हो चुका है और नया कुछ करने की आवश्यकता है, तब भी पीछे के दो प्रकरणो से यह बात सहज ही समझ मे

आ जाती है कि नया जो कुछ करना होगा, उसे सौम्यतर होना चाहिए। वह कदम उग्र या आक्रमणमूलक कदापि नही होना चाहिए। विनोवाजी ने काचीपुरम्-सर्वोदय-सम्मेलन के समय दक्षिण भारत के कार्यकर्ताओ के साथ इस वारे मे विचार-विमर्श किया और समग्र सत्याग्रह-शास्त्र पर एक नया प्रकाश फेका। इसके फलस्वरूप, अव तक सत्याग्रह के सम्वन्ध मे जो धारणा थी, उसमें सशोधन करना पडेगा। उन्होने कहा "सत्याग्रह के सम्वन्ध मे वहुत कुछ समझने की आवश्यकता है। गाधीजी ने अग्रेजो से कहा था : 'भारत छोडो' और उन्हे भारत छोडकर जाना पडा। किन्तु, हम अपने देश के पूंजीपतियो या भूस्वामियो से इस प्रकार 'भारत छोडो' नही कह सकते। अतएव अभी जो सत्याग्रह चलेगा, वह गाधीजी के समय के सत्याग्रह के समान निषेधात्मक (Negative) नही होगा। अभी तो सत्याग्रह के विधायक (Positive) होने की आवश्यकता है, अर्थात् उसे सौम्य से सौम्यतर होना चाहिए।" जैसा कि जयप्रकाशजी ने कहा है - हम सव लोग अपनी-अपनी छाती पर हाथ रखकर यह प्रश्न कर सकते है कि क्या हमने अपने सम्पूर्ण हृदय और शक्ति से काम किया है अथवा हमारा आधा समय परस्पर के झगडे-फसाद मे नष्ट हुआ है? यदि हम यह समझें कि अभी निषेधात्मक (Negative) सत्याग्रह नही चलेगा, तव हम सत्याग्रह-शास्त्र मे सशोधन करेगे। अन्यथा, यह कहना होगा कि सत्याग्रह का शास्त्र गाधीजी के जाने के साथ-साथ समाप्त हो गया है और अव उस पर पूर्ण विराम पड़ गया है। गाधीजी ने सत्याग्रह के लिए जो सव प्रयोग किये थे, उनमे से कई सफल नही हुए थे, ऐसा वे स्वय ही स्वीकार करते थे। उन्होने स्वय ही कहा था कि राजकोट मे अनशन करना गलत था। इसके अतिरिक्त अहमदावाद मे मजदूरो के लिए जो अनशन किया गया था, उसके द्वारा कुछ दवाव डाला गया था। इस कारण वह अनशन त्रुटिपूर्ण था। साम्प्रदायिक पचाट (Communal Award) मे परिवर्तन कराने के लिए उन्होने जो कुछ किया था, उसके फलस्वरूप रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर अनुचित दवाव पडा था। सत्याग्रह मे किसी पर किसी प्रकार का दवाव पडना उचित नही है।

गाधीजी के समय का काम निषेधात्मक (Negative) था। इसलिए वह उस समय के सत्याग्रह मे सफल हुआ था। अग्रेज यहाँ ठहर ही

नही सकते थे। उन्हें यहाँ सद्भावनापूर्वक राज्य-सचालन करना होता, अथवा इस देश को त्यागकर चला जाना पड़ता। गाधीजी पहले राजभक्त थे। उस समय उन्होंने स्वराज्य की माँग नही की थी। किन्तु, बाद मे गाधीजी ने उन्हे यहाँ से चले जाने की बात कही। अग्रेज यहाँ से चले गये, क्योंकि वे बाहर से आये थे। किन्तु, इस देश के मुसलमान, ब्राह्मण, मिल-मालिक, जमीन्दार आदि किसीका भी इस देश से चला जाना सम्भव नही है। यदि वे अन्याय करते है, तो इसका अर्थ यही है कि हम भी अन्याय कर रहे हैं और राष्ट्र का चहुमुखी शुद्धीकरण होने की आवश्यकता है। इसीलिए अभी जो सत्याग्रह होगा, वह बहुत ही कोमल होगा और सूक्ष्म बुद्धि से वह सत्याग्रह करना होगा। हम सब लोगो को यहाँ आपस में मिल-जुलकर रहना होगा। इसलिए हम यह नही कह सकते कि या तो तुम अपने को सुधारो या भारत छोडकर चले जाओ (End or mend)। हम केवल एक बात कह सकते है, वह यह कि—'सुधार करो'। हमारे सामने एकमात्र यही मार्ग है। यह सत्याग्रह का एक पक्ष है, जिसके सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता है।

सत्याग्रह मे सशोधन की बात उठने से अनेक लोग यह सोच सकते है कि गाधीजी सत्याग्रह मे सशोधन नही चाहते थे, किन्तु बात ऐसी नही है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते है "मैं यह कहना चाहता हूँ कि गाधीजी के समय जो सत्याग्रह हुआ था, यदि उसे हम आदर्श मान लेंगे, तो हम भूल करेगे। कारण, स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद जहाँ गणतन्त्र चल रहा है, वहाँ जो भी सत्याग्रह होगा, वह अधिक स्पष्ट होगा। उस सत्याग्रह को अधिक शक्तिशाली और विधायक होना चाहिए। इसीलिए बापू अनेक बार कहते थे 'सत्याग्रह का शास्त्र मैं नही लिख पाऊँगा। उसका धीरे-धीरे विकास हो रहा है'।"

एकाग्रता और आत्मविश्वास

पहले कहा गया है कि विचारधारा की समग्रता को स्पष्ट रूप मे समझाने के लिए विनोबाजी ने सत्याग्रह का उल्लेख किया है। किन्तु, उन्हें विश्वास है कि यह सत्याग्रह नही करना होगा। सबके मन में, विशेपकर कार्यकर्ताओ के मन मे अनुकूल विश्वास रहना चाहिए और यह विश्वास हृदय मे सदा

जाग्रत रखकर काम करना चाहिए। सम्भावित सत्याग्रह की बात मन में रहने से उनकी एकाग्रता और आत्मविश्वास नष्ट होगा और इससे आन्दोलन को क्षति पहुँचेगी। सन्तान के बीमार पड़ने पर माँ अपने मन मे यह दृढ विश्वास रखती है कि उसका बच्चा अवश्य बच जायगा और इसी विश्वास पर वह चलती रहती है। सन्तान की हालत कितनी ही खराब क्यो न हो जाय, माँ का यह विश्वास अक्षुण्ण रहता है। इसीसे बीमार पुत्र की सेवा-शुश्रूषा उचित रूप से होती है। सन्तान के कुपथ पर जाने पर माँ यह विश्वास रखती है कि एक-न-एक दिन उसका बच्चा जरूर सुधरेगा और उसका यह विश्वास इतना दृढ होता है कि बार-बार की असफलताएँ भी उसे नही डिगा पाती। वह सन्तान को बराबर समझाती रहती है। वृद्ध पिता बीमार पड़ा है। पुत्र ने उसकी सेवा-शुश्रूषा करने और दवा खिलाने का भार सँभाला है। यदि पुत्र यह सोचे कि पिताजी वृद्ध हो गये, वे नही बचेंगे और पिताजी की मृत्यु होने पर खटिया और लकड़ी की आवश्यकता पड़ेगी, अत इन चीजो की व्यवस्था करनी चाहिए, तो पिता को दवा खिलाने और उसकी सेवा-शुश्रूषा करने मे वह ढिलाई देने लगेगा। नियमित रूप से दवा खिलाने का खयाल पुत्र को नही रहेगा और फलस्वरूप पिता की मृत्यु निकट आ जायगी। इस मामले मे भी यही बात है। अहिंसा के काम मे विशेष रूप से विश्वास रखना ही चाहिए, अन्यथा उसकी सफलता की आशा दुराशा-मात्र साबित होगी।

सम्पत्ति-दान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ के साथ-साथ सम्पत्ति-दान-यज्ञ के प्रवर्तन की भी बात विनोबाजी ने सोची थी। किन्तु, बुनियादी समस्या है भूमि की समस्या। तेलगाना मे तत्क्षण ही भूमि-समस्या के समाधान के लिए कुछ न किये जाने पर एक बड़ी विपत्ति आने की सम्भावना को विनोबाजी ने अनुभव किया था। भूमि भगवान् का दान है—उत्पादन का मौलिक साधन है। इसीलिए गरीबो की समस्या के समाधान की चेष्टा को प्रथमत भूमि-समस्या तक ही सीमित रखना युक्तियुक्त माना गया। दूसरी ओर, उनके मन मे यह बात भी आयी कि सम्पत्तिदान के बिना भूमिदान सफल नही होगा। भूदान-यज्ञ का सकल्प पूरा करना एक बात है और उसे सफल करना दूसरी बात। जो

लोग जमीन पायँगे, वे जब सर्वोदय-वृत्ति ग्रहण करेंगे और हमारे कार्यकर्ता बन जायँगे, तभी भूदान-यज्ञ सफल होगा। विनोबाजी ने कहा है "परन्तु मैंने सोचा कि पहले ही दो काम एक साथ शुरू करना ठीक नहीं है और दोनों काम एक साथ आरम्भ करने का सकेत भी मैंने नहीं पाया। यदि बिना सकेत के कोई काम हाथ मे लूँ, तो यह अहकार होगा। उसमे कोई फल नहीं निकलेगा और मेरी शक्ति विच्छिन्न हो जायगी। उस समय केवल भूदान का सकेत ही मैंने पाया था।" किन्तु, जब भूदान-यज्ञ का काम आगे बढने लगा, तब यह स्पष्टत अनुभव किया जाने लगा कि भूमि के साथ-साथ धन का अश न माँगने से आन्दोलन मे निहित उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। जब उन्होंने बिहार मे प्रवेश किया, तब उन्होंने सम्पत्तिदान-यज्ञ की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव की और जिस सम्राट् अशोक ने भगवान् बुद्ध के विचारो को मूर्तरूप दिया था, उसीके पाटलिपुत्र नगर मे २३ अक्टूबर, १९५२ को विनोबाजी ने सम्पत्तिदान-यज्ञ की घोषणा की और आमदनी का षष्ठांश सम्पत्तिदान-यज्ञ मे देने की अपील की। अपने परिश्रम से उपार्जित धन भी केवल अपने लिए नहीं है, बल्कि सबके उपभोग के लिए भगवान् ने वह दिया है। जिस बुद्धि, शक्ति और पुरुषार्थ की सहायता से इस धन का उपार्जन किया गया है, वह परमेश्वर का ही दान है। धन माँगने की पृष्ठभूमि मे यही विचार-धारा है।

सम्पत्तिदान-यज्ञ मे 'सम्पत्ति' शब्द का क्या अर्थ है, यह जानने की आवश्यकता है। सम्पत्तिदान का अर्थ धनदान, अर्थदान या आयदान होता है। सम्पत्तिदान-यज्ञ मे आय का षष्ठांश माँगा गया है। इस यज्ञ के द्वारा कोई धन-भाडार सग्रह करने का इरादा नहीं है। किस मनोभाव से सम्पत्ति-दान-यज्ञ मे दान देना कर्तव्य है और उसका परिचालन किस पद्धति से होना चाहिए, यह समझाते हुए विनोबाजी ने कहा है "जो व्यक्ति नित्यजीवन के विचार को ग्रहण कर सम्पत्तिदान करेंगे, उन्हींकी सम्पत्ति का उपयोग हम करना चाहेंगे। किसीके द्वारा उत्साहित किये जाने पर सम्पत्तिदान नहीं करना चाहिए—चिन्तन-मनन के उपरान्त सम्पत्तिदान होना चाहिए। चालू वर्ष मे व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही इसे सीमित रखने की बात मैंने सोची है। जो लोग सम्पत्तिदान को नित्य धर्मस्वरूप मानेंगे, उन्हींका दान स्थायी होगा।

यह सहज धर्म होना चाहिए। भार-स्वरूप इसे नही माना जाना चाहिए। हमारे शरीर का वजन यदि ठीक परिमाण मे हो, तो वह बोझ-स्वरूप नही मालूम देता। इसी प्रकार सम्पत्तिदान-यज्ञ मे सहज दान दिया जाना चाहिए। घर मे बच्चा पैदा होने पर वह आहार तो ग्रहण करता ही है, पर वह बोझ-स्वरूप नही मालूम देता। गार्हस्थ्य जीवन का वह सर्वश्रेष्ठ अग है—ऐसा माना जाता है। उससे सब लोग आनन्द अनुभव करते हैं। उसी प्रकार जो लोग सम्पत्तिदान-यज्ञ मे दान दे, उन्हे आनन्द का अनुभव होना चाहिए। इसीलिए सम्पत्तिदान-यज्ञ को व्यक्तिगत रूप से चलाने की आवश्यकता है—कम-से-कम इस वर्ष तक। आगामी वर्ष की बात बाद मे सोची जायगी।" वे कहते है "जो देगे, उन्हें यह समझना पडेगा कि उन्हे जीवन भर देना है। एक बार दान देने पर सारा जीवन दान देना पडेगा। इस विचार को बहुत-से लोग हृदयगम नही करते। किन्तु, वे लोग यह नही सोचते कि एक बार विवाह होता है और सारे जीवन को बन्धन में बाँध देता है।" सम्पत्तिदान पहले क्यो नही आरम्भ किया गया और अब भी उस पर जोर क्यो नही दिया जाता, इस सम्बन्ध मे विनोबाजी ने एक जगह कहा है "गगा से यमुना छोटी है, किन्तु यमुना गगा मे मिल गयी है। इसी प्रकार आज सम्पत्तिदान-यज्ञ यमुना-स्वरूप है। भूमि उत्पादन का जितना अनिवार्य साधन है, रुपया-पैसा उतना अनिवार्य साधन नही है। रुपया-पैसा तो मोहमय साधन है। रुपये-पैसे का कोई मूल्य नही है। वह तो नासिक के छापाखाने मे तैयार होता है। किन्तु, कोई छापाखाना भूमि तैयार नही कर सकता। इसीलिए भूमि के साथ रुपये-पैसे की तुलना नही हो सकती। धनवानो के धन को हम मूल्यहीन कर दे सकते हैं। इसीलिए भूमि की तुलना में धन-दौलत बहुत गौण है। भूमि बुनियादी वस्तु है। यह सब सोचकर हमने भूमि-समस्या मे पहले हाथ लगाया है। सम्पत्तिदान-यज्ञ पर अभी इसलिए अधिक जोर नही दिया जा रहा है कि वह एक ऐसा पौधा है, जो बहुत शीघ्र पैदा हो तो जायगा, पर शीघ्र ही सूख भी जायगा।"

विनोबाजी सम्पत्ति ग्रहण नही करते, फिर भी वे सम्पत्ति माँग रहे है। इन दोनो का सामञ्जस्य कैसे हो? विनोबाजी सम्पत्ति अपने हाथ मे नही लेगे। वह दाता के ही पास रहेगी और दाता विनोबाजी के निर्देश के

अनुसार उसे खर्च कर विनोबाजी को हिसाब देगा। तत्सम्बन्धी निवेदन करते हुए विनोबाजी ने कहा था "मैं सम्पत्ति अपने हाथ मे नही लूँगा और उसे रखने का दायित्व भी न लूँगा। इन सब बातो मे मै पूर्णत मुक्त रहूँगा। जनसाधारण के उपकार के लिए जो अर्थ-सग्रह होता है, उसकी देख-रेख के लिए साधारणत ट्रस्ट बना दिया जाता है। मैं वैसे ट्रस्ट के निर्माण की बात भी नही सोचता। विभिन्न उद्देश्यो से सगृहीत कोष और इस सम्पत्ति-दान-यज्ञ के बीच एक बडा अन्तर है। वह यह कि आय का एक अश प्रत्येक वर्ष इस यज्ञ में देना होगा। इसलिए मैंने यह निश्चय किया है कि दाता के पास ही यह धन रहेगा। दाता मेरे निर्देश के अनुसार यज्ञ मे अर्पित धन को व्यय करेगे और उसका हिसाब प्रत्येक वर्ष मेरे पास भेजेगे। इसका यह अर्थ है कि केवल धन का एक अश देकर ही दाता मुक्ति नही पा सकेगे, बल्कि व्यय के मामले मे भी उन्हें अपनी बुद्धि खर्च करनी पडेगी। यह सही है कि दाताओ को मेरी इच्छा के अनुसार धन खर्च करना पडेगा, किन्तु वे मुझे यह बता सकते है कि धन को खर्च करने के बारे मे उनकी क्या राय है।"

इस काम मे दाता पर विश्वास रखकर उसके ऊपर सम्पूर्ण दायित्व छोड दिया गया है। समालोचकगण इस व्यवस्था मे दोष देख सकते है, इसलिए विनोबाजी ने कहा है "किन्तु, विश्वास ही धर्मप्रेरणा का आधार है। मनुष्य पर विश्वास करके उसकी सच्चाई के सम्बन्ध मे जितना निश्चिन्त हुआ जा सकता है, उतना कानून के बधन मे नही। इसी दृष्टिकोण से मैंने सम्पत्ति-दान की यह पद्धति निश्चित की है।"

इस प्रसग मे महात्मा गाधी के ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त की बात मन में आती है। महात्मा गाधी धनी लोगो से कहते थे "देखो धनिको, तुम्हारे हाथ मे जो धन-सम्पत्ति सचित हुई है, उसके मालिक तुम नही हो। वह सबकी है। वह गरीबो की है। गरीबो का धन भगवान् ने तुम्हारे पास जमा कर रखा है। तुम गरीबो के ट्रस्टी हो। इसलिए तुम अपनी धन-सम्पत्ति गरीबो के हित में खर्च करो।" महात्मा गाधी का यह विश्वास था कि एक दिन धनी लोगो में सद्बुद्धि का उदय होगा और वे अपनी धन-सम्पत्ति को गरीबो के कल्याण के लिए खर्च करेगे। यह सिद्धान्त महात्मा गाधी के ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त के रूप में प्रख्यात हुआ। इस सिद्धान्त में ही भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-

यज्ञ का वीज निहित था। सम्पत्ति-दान-यज्ञ और भूदान-यज्ञ के द्वारा महात्मा गाधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त प्रयोग मे लाया जा रहा है। ट्रस्टी को कोई क्षतिपूर्ति देने का प्रश्न ही नही उठता। ट्रस्टियो को तो ट्रस्ट-सम्पत्ति का वितरण करना ही होगा। उसे अपने पास रखने से तो काम नही चलेगा। ट्रस्टी भी हमारे भाई है। उन्हे अपने जीवन-निर्वाह के लिए भी कुछ चाहिए। इसीलिए भूदान-यज्ञ या सम्पत्तिदान-यज्ञ मे सम्पूर्ण भूमि या सम्पत्ति नही माँगी जाती। दरिद्रनारायण का ही हिस्सा माँगा जाता है। उस समय लोग ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का मजाक उडाते थे, आज उसकी सफलता लोग प्रत्यक्षत देखेंगे। विनोवाजी 'ट्रस्टीशिप' शव्द का व्यवहार करने के पक्ष मे नही है। फिर भी, सम्पत्तिदान-यज्ञ मे ट्रस्टीशिप की जो भावधारा विद्यमान है, उसका विश्लेपण और व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते है "सम्पत्तिदान मे भूमिदान की तरह एक बार ही दान देने की बात नही है। उसमे प्रत्येक वर्प आय का एक अश देना होगा। अतएव इसके लिए जीवन को निष्ठापूर्ण वनाने की आवश्यकता है। इसके लिए अत करण की निष्ठा का विकास होना चाहिए। जव भरत राम के दर्शन के लिए जा रहे थे, तब उनका अन्तर इस भाव से पूर्ण था कि कब राम से भेंट होगी, किन्तु वे कुछ क्षणो के लिए रुके। राज्य के अधिकारियो को बुलाकर उन्होने कहा 'मै राम के दर्शनार्थ जा रहा हूँ, इसलिए तब तक के लिए आप लोग राज्य का ठीक ढग से सचालन करे।' तुलसीदास ने लिखा है कि भरत ने अत्यन्त उदारचेता होन पर भी वैसा किया, क्योकि सारी सम्पत्ति राम की थी। इसीलिए उसका ठीक प्रवन्ध करना भरत का कर्तव्य था। इसी प्रकार गाधीजी कहते थे कि हमे अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी वनकर रहना चाहिए। ट्रस्टी आधुनिक चीज है। उसका वडा दुष्प्रयोग हुआ है। इसीलिए मै ट्रस्टी शव्द का व्यवहार नही करता। किन्तु, गाधीजी ट्रस्टी शव्द का व्यवहार करते थे क्योंकि वे कानून-विशेपज्ञ थे। इसीलिए उस शव्द के प्रति उनका आकर्पण था। उतना आकर्पण मुझे नही है। मैं इस विचार को उपनिपद् की भापा मे प्रकाशित करना चाहता हूँ। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'—जिसका भोग करना है, उसे त्याग कर ही भोग करना चाहिए। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि 'सम्पति सब रघुवर कै आही।' अतएव एक षष्ठाश देना गौण चीज है। अपना सब-कुछ समाज

को देने की आवश्यकता है। अपने शरीर की आवश्यकता के लिए उसमें से केवल थोडा अंश ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु, अभी समाज मे इस प्रकार की व्यवस्था नही है और यह व्यवस्था शीघ्र ही स्थापित भी नही हो सकती। इसीलिए अभी षष्ठांश देना होगा और जो बाकी बच रहेगा, उसमे से भी कुछ देने की बात सोचनी होगी। षष्ठांश दान देने का उद्देश्य यही है कि जीवन-पर्यन्त वह निश्चित रूप से देना होगा। यदि उतना अंश नही दिया जायगा, तो हम पापी माने जायँगे और हमारा जीवन भी पापमय हो जायगा। इसलिए सम्पत्तिदान देना कर्तव्य है, ऐसा समझना पडेगा।"

जो लोग सम्पत्तिदान-यज्ञ मे दान करना चाहते है, उन्हे चाहिए कि वे अपने परिवार के सभी लोगो के साथ परामर्श करके और इस सम्बन्ध मे सबको सतुष्ट रखते हुए प्रेमपूर्ण हृदय से दान करे। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते हैं "अभी यहाँ जो भाई लोग बैठे है, उनके अन्तर मे यदि धर्म-भाव जाग्रत हुआ हो, तो वे अपने-अपने घर के सभी लोगो के साथ—माता, पत्नी एव बच्चो के साथ, मत्रणा करके सम्पत्तिदान कर सकते हैं। इस काम के लिए उनके परिवार के सभी लोगो के मन मे आनन्द का अनुभव होना चाहिए। उन्हे ऐसा लगना चाहिए कि मानो उन्होने मीठे आम खाये हैं और उनका मधुर-मधुर स्वाद पा रहे हैं। सम्पत्ति का षष्ठांश देने मे उन्हे अत्यधिक आनन्द का अनुभव होना चाहिए। उनका हृदय नृत्य करता रहेगा। किसी प्रकार के दबाव मे पडकर देना या लज्जा अथवा भय के कारण देना उचित नही है, क्योंकि सम्पूर्ण जीवन उन्हे पञ्चमांश या षष्ठांश देना पडेगा।"

भूदान-यज्ञ मे भूमि-दान लिया जाता है और वह भूमि भूमिहीनो को दी जाती है। भूमि कोई भोग्य वस्तु नही है। वह उत्पादन का साधन है, और मौलिक साधन है। उसमे हड्डी-तोड परिश्रम करने मे भोग्य वस्तु उत्पन्न होती है। फिर दान मे प्राप्त भूमि जो भूमिहीनो को दी जाती है, वह हर किसी भूमिहीन को नही दी जाती। जो भूमिहीन गरीब खेती करना जानता है और खेती करके जीविकोपार्जन करना चाहता है और जिसके पास जीविकोपार्जन का और कोई साधन नही है, केवल उसीको वह भूमि दी जाती है। भूमिदान यज्ञ मे जो लोग धन देकर सहायता पहुँचाना चाहते है, उनसे नगद पैसा नही लिया जाता। उन्हे खेती के यत्र और सरजाम आदि

खरीदकर देने पडते हैं। इस प्रकार भूदान-यज्ञ का मूलभूत उद्देश्य है—उत्पादन का साधन उत्पादक के हाथ मे पहुँचाना, अर्थ की प्रतिष्ठा की समाप्ति का उपाय करना और उत्पादक श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित करना। किन्तु सम्पत्ति-दान-यज्ञ मे ऐसा कोई क्रान्तिकारी उद्देश्य है, ऐसा सहसा दिखाई नही पडता। सम्पत्तिदान-यज्ञ मे अर्थ-दान लिया जाता है, भले ही वह अर्थ दाता के ही हाथ मे रह जाता है। अर्थ उत्पादन का साधन नहीं है। वह उपभोग्य वस्तुओ की खरीद का माध्यम है। इसके अतिरिक्त, एक बडे कारखाने का मालिक, जो श्रमिको का शोषण करके अर्थ का उपार्जन करता है, उसने अपनी आय का षष्ठांश सम्पत्तिदान-यज्ञ मे दान किया, किन्तु उसका श्रमिक-शोषण और कारखाना समान रूप से चलता रहा। ऐसा दान ग्रहण करने से वर्तमान अर्थ-व्यवस्था को बचा रखने के पक्ष मे परोक्ष रूप से सहमति प्रकट की जाती है। किसी नर्तकी, वेश्या, मादक-द्रव्य-विक्रेता ने अपनी आय का षष्ठांश दान किया, किन्तु उन्होने अपने उपार्जन का वह पथ नही छोडा, तो यहाँ भी उनके उपार्जन-पथ के बारे मे सहमति ही प्रकट की गयी। ऐसी अवस्था मे विनोबाजी के इस नये आन्दोलन का क्या महत्त्व है? 'सर्वोदय' पत्र के सम्पादक श्री दादा धर्माधिकारी ने सम्पत्तिदान-यज्ञ के सम्बन्ध में अपने एक चिन्तनपूर्ण लेख मे यह प्रश्न उठाया है और इसका सुन्दर उत्तर भी दिया है। दान किये हुए न का व्यय विनोबाजी के निर्देश के अनुसार दाता को करना होगा, इसीमे सम्पत्तिदान-यज्ञ का क्रान्तिकारी तत्त्व निहित है। कारखाने का मालिक यदि दाता हो, तो विनोबाजी उसे निर्देश दे सकते है कि उस धन से कारखाने के मजदूरो के अधिकाधिक स्वास्थ्य और सांस्कृतिक उन्नति की व्यवस्था करनी होगी। साथ-साथ वे यह उपदेश भी दे सकते है कि वह इस प्रकार चले कि जिससे शनै शनै वह अपना कारखाना विनोबाजी को अर्पित कर सके। किसी महाजन-दाता को वे यह निर्देश दे सकते है कि वह खेती के अथवा अन्य प्रकार के उत्पादन के सरजामो की खरीद के लिए उक्त धन उत्पादको को दान करे। इसके साथ ही विनोबाजी दाता मे यह भी कह सकते है कि 'आपका यह उपार्जन-पथ पापमय है। इस प्रकार का उपार्जन क्रमश बन्द करे।' इसी प्रकार किसी अनुत्पादक दाता को वे उत्पादन के सहायक कार्य मे लगाकर अनुत्पादक व्यवसाय को समाप्त करने की प्रेरणा दे सकते

है। इस प्रकार विनोबाजी जब दान किये हुए पैसे के खर्च के लिए निर्देश देना आरम्भ करेंगे, तब इस नवीन आन्दोलन का उद्देश्य क्रमश स्पष्ट होने लगेगा।

अपरिग्रह और अस्तेय के अनुसरण के बिना आर्थिक क्षेत्र में अहिंसात्मक क्रान्ति अर्थात् आर्थिक साम्य-प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है। इसीलिए सम्पत्तिदान-यज्ञ की मूल विचार-धारा अपरिग्रह और अस्तेय की भावधारा पर प्रतिष्ठित है। उसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं 'अस्तेय' और 'अपरिग्रह' दोनों के मिलने से अर्थ-शुचित्व पूर्ण होता है। इसके बिना व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म की प्रतिष्ठा हो सकना सम्भव नहीं है। सत्य और अहिंसा तो मूल हैं ही, किन्तु आर्थिक क्षेत्र में इन दोनों का आविर्भाव केवल अस्तेय और अपरिग्रह के माध्यम से ही सम्भव है। और, आर्थिक क्षेत्र जीवन का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है। इसीलिए धर्मशास्त्र उसकी उपेक्षा नहीं कर सके। परन्तु उसके नियमन और नियोजन का दायित्व धर्म-विचार पर आ पड़ता है। इसीलिए मनु ने विशद भाव से कहा है 'य अर्थशुचि स शुचि'। अर्थात् जिसके जीवन में आर्थिक पवित्रता है उसका जीवन पवित्र है।

"अस्तेय अर्थ-प्राप्ति की पद्धति का नियमन करता है और अपरिग्रह उसकी मात्रा का। अस्तेय बतलाता है कि प्रधानत शारीरिक श्रम द्वारा अर्थात् उत्पादक श्रम द्वारा शरीर-निर्वाह होना चाहिए। शारीरिक श्रम किये बिना यदि हम अन्न ग्रहण करते हैं, तो एक विपत्ति की सृष्टि करते हैं। शारीरिक श्रम करने की इच्छा रखते हुए भी कोई व्यक्ति यदि किसी प्रकार का शारीरिक श्रम नहीं कर पाता है, तो उसे दूसरी ओर खूब कठोर परिश्रम करना होगा। तभी वह विपत्ति दूर होगी। वह परिश्रम इतना ही कठोर होगा, अर्थात् उसमें इतना ही अध्यवसाय भरा रहेगा कि उसकी तुलना में शारीरिक श्रम भी कम कष्टपूर्ण रहेगा, अर्थात् साधारण लोगों के लिए अस्तेय का पालन तभी सम्भव होगा, जब शरीर-क्षुधा रखनेवाले लोग शारीरिक श्रम करेंगे। आज संसार में जो अत्यधिक वैषम्य, दु ख-कष्ट और पाप है, उसका कारण शारीरिक श्रम न करने की अभिलाषा है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम से दूर रहना चाहता है, उसे गुप्त अथवा प्रकट रूप से चोरी करनी पड़ती है।

"शारीरिक श्रम के द्वारा जो उत्पादन होगा, केवल उसका ही उपयोग करूँगा—यह नियम यदि हम मानकर चलें, तो उसके द्वारा अपरिग्रह पर्याप्त

मात्रा मे प्रकट होगा। कारण, शारीरिक श्रम के द्वारा इतना अधिक उत्पादन नही हो सकता कि आदमी बहुत अधिक सग्रह करके रख सकता है। फिर भी अस्तेय से अलग अपरिग्रह के नियमन की आवश्यकता रह जाती है, क्योकि यद्यपि शारीरिक श्रम के द्वारा उत्पादन 'बहुत अधिक' मात्रा मे नही हो सकता तथापि उत्पादन 'अधिक' होना सम्भव है और, यदि उस अधिक उत्पादन का व्यवहार अपरिग्रह के द्वारा नही किया जायगा, तो विपत्ति सम्पूर्ण रूप से दूर नही हो सके ी। बचपन से ही हमने अनेक लोगो का उपकार लिया है। उस उपकार-ऋण के परिशोध के लिए शारीरिक श्रम के मान्य मार्ग से हम जो उत्पादन करे, उसका एक अश समाज को प्रदान करना हमारा कर्तव्य है। उसमे सम्यक् विभाजन का उद्देश्य निहित है। इसीलिए यद्यपि वह एक प्रकार की ऋण-मुक्ति है, तथापि उसमे दान का रूप है।"

सम्पत्तिदान-यज्ञ मे आय का (अथवा व्यय का) षष्ठाश माँगा जाता है। तब जो पच-षष्ठाश बच जाता है, क्या उसे छोड दिया जायगा ? इसके उत्तर मे विनोबाजी कहते है कि उसे छोड देने का प्रश्न ही नही उठता। दाताओ ने तो छह षष्ठाशो को ही अपना मान रखा था। एक षष्ठाश माँगकर उनकी इसी मान्यता को आघात पहुँचाया गया है। विचार को समझने के लिए उन्हे प्रेरणा दी जा रही है। भक्त कहते है कि जिन्होने एक बार हरिनाम लिया है, वे मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रस्तुत हुए। जिन्होने एक षष्ठाश समाज को आजीवन प्रदान करने का नियम एक जीवन-निष्ठा के रूप मे स्वीकार किया है, उन्होने अपनी समस्त सम्पत्ति, अपना सारा जीवन, यहाँ तक कि अपना शरीर-निर्वाह भी समाज को अर्पित कर देने के पथ पर कदम बढाया है। यही धर्मनीति है। आसक्त व्यक्ति को आसक्ति त्यागने की दीक्षा देने के उपरान्त धर्म धीरे-धीरे आसक्ति छुडवाकर मोक्ष की ओर अग्रसर करा देता है। इस प्रकार भोग और मोक्ष के बीच धर्म पुल की तरह काम करता है। धर्मनीति की इस विचारधारा को हृदयगम करने से एक षष्ठाश माँगने मे अन्तर्निहित अर्थ समझा जा सकता है। इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा है · "शरीर और आत्मा के बीच, अथवा व्यवहार और तत्त्व-विचार के बीच, अथवा वर्तमान स्थिति और भावी स्थिति के बीच धर्म पुल का काम करता है। पुल नदी के एक किनारे खडा नही किया जाता—वह

नदी के दोनो तटो पर खडा रहता है। भोग इस पार की, मोक्ष उस पार की और धर्म दोनो पार की चीज है। समाज की वर्तमान स्थिति मे उसे आदर्शाभिमुखी करने के लिए जो विचार प्रस्तुत किया जायगा, वही धर्म-विचार होगा। वह विचार केवल परिशुद्ध तत्त्वज्ञान का स्वरूप ग्रहण नही करेगा, परिशुद्ध तत्त्वज्ञान तक पहुँचा देने के लिए भी वह वाहनस्वरूप होगा। पथ और घर के बीच जो पार्थक्य और सम्बन्ध है, धर्म और मोक्ष के बीच भी वही सम्बन्ध है।"

जो लोग सम्पत्तिदान-यज्ञ में दान देगे, वे सम्पूर्ण जीवन देते रहेगे। सारा जीवन आय का एक षष्ठांश या एक अष्टांश या उससे भी कम देते जाते रहने का संकल्प अनेक लोगो को कठिन मालूम पड सकता है। विनोबाजी उनसे कहते है "किन्तु, वे यह नही सोचते कि एक बार विवाह करके लोग अपने सम्पूर्ण जीवन को एक बधन मे आबद्ध कर देते है।" इस सम्बन्ध मे उन्होने बाद मे जो कुछ कहा है, वह वास्तव मे महती प्रेरणा देनेवाला है। उन्होने कहा है "लोग मुझसे पूछते है 'आजीवन दान देते रहना सम्भव है क्या?' मै पूछता हू कि आजीवन भोजन करते रहना कैसे सम्भव है? आपने यह कठिन व्रत ग्रहण किया है कि जन्म से मृत्यु तक भोजन करते रहेंगे। आजीवन व्रत ग्रहण करना सहज बात है। वेद मे कहा है मरण न होने तक प्रतिज्ञापूर्वक साँस लेते रहोगे। श्वास-प्रश्वास का व्रत कठिन है। इस व्रत को ग्रहण करने की बात वेद ने इसी उद्देश्य से कही है कि श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ राम-नाम लेना होगा, जिससे वृथा श्वास ग्रहण न किया जाय। राम के काम मे प्रत्येक क्षण लगाना परम आवश्यक है। इस प्रतिज्ञा का यही अर्थ है। हमारी आँखो ने आजीवन देखने का व्रत ग्रहण किया है। हमारे दोनो पैरो ने आजीवन चलते रहने का व्रत लिया है। वे व्रत उन्हे कठिन नही मालूम पडते, क्योकि वे नैसर्गिक और स्वाभाविक हो गये है। इसी प्रकार त्याग का व्रत भी नैसर्गिक और स्वाभाविक है। घर-घर मे माताएँ इस व्रत का पालन कर रही है। माँ सन्तान को कितना अधिक प्यार करती है। किन्तु, उसके इस धर्मभाव को घर तक ही सीमित न रखकर हम प्रसारित करना चाहते है। हम कहते है 'माँ, तुम मूर्तिमती धर्म हो, तुम मूर्तिमती त्याग हो। तुम इतना त्याग कर रही हो, थोडा और त्याग

करो। जिसके पास खाने को कुछ नही है, उसके लिए कुछ त्याग करो।' त्याग का व्रत कठिन नहीं है। त्याग के वाद भोग अधिक रुचिकर हो जाता है।"

सम्पत्तिदान कौन करेगा ? वहुत अधिक धनी लोग भी दान करेंगे और वहुत गरीव लोग भी दान करेंगे। इस त्याग-धर्म का पालन करने का सुयोग सवके लिए सुलभ है। वालक-वालिकाएँ भी इस यज्ञ मे भाग लेकर वचपन से ही त्यागधर्म में दीक्षित हो सकती हैं।

सम्पत्तिदान-यज्ञ में एक गम्भीर जीवन-विचार निहित है। वह गार्हस्थ्य-जीवन के सर्वश्रेष्ठ धर्म के रूप मे माना जाता है। जो सम्पत्तिदान देंगे, उनके और उनके परिवार के सभी लोगो के हृदय मे परमानद का सचार होना चाहिए। इसीलिए प्रथम पर्याय में सम्पत्तिदान-यज्ञ को व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया है, जिसमें कि वह जीवन के निगूढ प्रदेश मे प्रवेश करके धीरे-धीरे वृद्धि पा सके। इसी उद्देश्य से इसे आरम्भ मे सार्वजनिक आन्दोलन की तरह व्यापक रूप प्रदान नही किया गया है। विहार में भूदान-यज्ञ-आन्दोलन ने जव आशातीत प्रगति की, तव सन् १९५३ की शरत् ऋतु मे विनोवाजी ने सम्पत्ति-दान-यज्ञ को सार्वजनिक रूप प्रदान कर सर्वसाधारण को इसमे दान देने के लिए कहा और वोधगया-सम्मेलन के समय से सम्पूर्ण देश मे इसे विस्तृत रूप से चलाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

सम्पत्तिदान-यज्ञ के लिए जन-साधारण से निवेदन करते हुए विनोवाजी ने लिखा है "मै विश्वास करता हूँ कि यदि भक्तजन विश्वास और शुभेच्छा लेकर इस यज्ञ मे आहुति प्रदान करेंगे, तो इस कल्पना मे जो नवीन जीवन-विचार वर्तमान है, वह देश मे विकास पायेगा और साम्ययोग की ओर समाज सहज ही अग्रसर होगा। इसी उद्देश्य से मै सज्जन और सद्विचार-सम्पन्न लोगो के मनन और चिन्तन के लिए इस विचारधारा को उनके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।"

जिन लोगो से भूमिदान और सम्पत्तिदान माँगा जाता है, उनके लिए विनोवाजी ने ऋग्वेद का एक मत्र उद्वृत करते हुए कहा है

"अदित्सन्त चित् आघृणे।
पूषन दानाय चोदय।
पणेश् चित् वि म्रदा मन।"

"अन्तर से मानसिक कष्ट, बाहर से परिस्थिति का कष्ट—इन दोनों प्रकार के कष्टों में शुद्धि प्रदान करनेवाले हे देव! जो लोग आज दान नहीं देना चाहते, उनके मन में दान देने की प्रेरणा भरो। कृपण के मन को भी मृदुल बना दो।"

श्रमदान-यज्ञ

सम्पत्तिदान-यज्ञ के बाद विनोबाजी ने श्रमदान-यज्ञ को जन्म दिया। सम्पत्तिदान की ही तरह श्रमदान में भी गम्भीर अर्थ निहित है। जिसके पास जमीन नहीं है, धन भी नहीं है, उसके पास देने लायक क्या कुछ भी नहीं है? उसके पास क्या कोई सम्पत्ति ही नहीं है? क्या वह इतना गरीब, इतना कंगाल है? इसके उत्तर में विनोबाजी कहते हैं कि भूमिवालों या धनवानों की दान देने की क्षमता सीमित है, किन्तु जिसके पास जमीन या धन तो नहीं है, परन्तु शारीरिक शक्ति और सामर्थ्य है, उसकी दान देने की क्षमता असीम है। जमीन या धन का तो एक ही बार में दान कर दिया जा सकता है। उसके बाद तो उसके दाताओं के पास देने को कुछ भी शेष रह नहीं जायगा, किन्तु जिसके पास ईश्वर का दिया हुआ स्वस्थ और सबल शरीर है, उसकी दान करने की शक्ति कभी भी समाप्त नहीं होती। आजीवन वह प्रतिदिन दान कर सकता है। विनोबाजी कहते हैं "उसके समान दान और कौन कर सकता है? भूदान-यज्ञ में भूमि तो मिले, किन्तु भूमि पर परिश्रम न किया जाय, तो वह आबादी-योग्य नहीं होगी। ग्राम के चरित्रवान् और सम्मानित लोग एक साथ जुलूस निकालकर भूमि कोड़ने जायेंगे। सिर्फ यही नहीं, भूमि का वितरण किया जायगा। जिसे भूमि दी जायगी, वह किसी आकस्मिक कारण से अच्छी तरह भूमि आबाद न कर पाये, तो गाँव के चरित्रवान् और सेवा-परायण प्रभावशाली व्यक्ति साथ मिलकर इस जमीन को आबाद करने के काम में सहायता करने जायेंगे। इसके फलस्वरूप सभी ग्रामों में एक ऐसे वातावरण की सृष्टि होगी कि गाँव का प्रत्येक व्यक्ति श्रमदान के काम में योग देने में गौरव का अनुभव करेगा। लोग समझ पायेंगे कि यह केवल राम की जमीन लेकर श्याम को देने तक ही सीमित नहीं है, क्योंकि जो जमीन दी जा रही है, उसके सम्बन्ध में ग्रामवासी चिन्तन और मनन

करते रहेंगे। इस प्रकार श्रम की विलुप्त मर्यादा के पुन प्रतिष्ठित होने का मार्ग सुगम हो जायगा।" यही कारण है कि विनोवाजी शरीर से दुर्वल और अस्वस्थ रहते हुए १०-१२ मील की पैदल यात्रा करके आने पर भी क्लाति को भूलकर सदलवल एक घटा कुदाल चलाते है और श्रमदान-यज्ञ करके समाज को श्रम की मर्यादा की प्रतिष्ठापना के लिए भारी शिक्षा प्रदान करते है।

प्रेम और बुद्धिदान-यज्ञ

मनुष्य की पाँच इन्द्रियाँ है। इस प्रकार मनुष्य पाँच प्रकार के धन का अधिकारी है, जैसे हृदय, मस्तिष्क, देह, स्थावर सम्पत्ति और अस्थावर सम्पत्ति अर्थात् प्रेम, वुद्धि और विचक्षणता, शारीरिक श्रम, भूमि और अर्थ। एक ही व्यक्ति इन पाँचो धनो का अधिकारी हो, यह जरू ी नही है। किन्तु, ऐसा भी कोई व्यक्ति नही है, जिसके पास इन पाँच मे से एक प्रकार का भी धन न हो। गरीव और सव प्रकार से अक्षम व्यक्ति के पास भी हृदय तो रहेगा। इसीलिए विनोबाजी ने पाँच प्रकार के यज्ञ करने का आह्वान किया है। भूदान, सम्पत्तिदान और श्रमदान की वात पहले कही जा चुकी है। प्रेमदान और बुद्धिदान की चर्चा यहाँ की जा रही है। जिसके पास और कुछ नहीं है, वह अपने पडोसी को हृदय से अपने समान मानेगा और उसके प्रति प्रेमभाव रखेगा। अपने आत्मज्ञान का विकास ही उसकी साधना होगी। यह होगा प्रेमदान-यज्ञ। जिसके पास विद्या, वुद्धि और विचक्षणता है, वह अपना कुछ समय अपनी विद्या और वुद्धि को नि स्वार्थ सेवा के काम मे लगाकर वुद्धिदान-यज्ञ का अनुष्ठान करेगा। विचारकगण आपस मे विचार-विमर्श करेगे। कानूनपेशा लोग किसी प्रकार का पारिश्रमिक न लेकर शोषित और पीडित ग ीवो का पक्ष ग्रहण कर मुकदमा लडेगे। चिकित्सक मफ्त मे गरीवो की चिकित्सा करेंगे। शिक्षक और छात्र अपने अवकाश के समय ग ीवो को शिक्षा-दान करेगे। हिसावी लोग वेतन लिये विना किसी दातव्य सस्था मे हिसाव का काम कर देगे आदि।

इसके अतिरिक्त सेवको के लिए एक महान् यज्ञ का आविर्भाव हुआ है और वह है—जीवन-दान।

जीवन-दान

क्रान्ति का एक लक्षण यह है कि वह आरम्भ तो होती है एक विषय लेकर, परन्तु शीघ्र ही वह जीवन के अन्यान्य क्षेत्रो मे फैल जाती है और अन्त मे सर्वग्रामी बन जाती है। जीवन के एक क्षेत्र मे आरम्भ होकर उसी तक सीमित रहना क्रान्ति नही है। आचार्य कृपालानी ने बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन मे भूदान-यज्ञ की विप्लवी प्रकृति के बारे मे बोलते हुए क्रान्ति के इस लक्षण की ओर सबकी दृष्टि आकर्षित की। उन्होने और भी कहा कि बुद्धदेव ने निर्वाण के एक पथ का आविष्कार किया। वह थी तो धार्मिक बात, पर थी क्रान्तिकारी। इसीलिए उसका प्रसार जीवन के अन्यान्य क्षेत्रो मे हुआ। नवीन राज्य-पद्धति शुरू हुई, नवीन समाज-व्यवस्था की रचना हुई, नवीन संस्कृति का सृजन हुआ। महात्मा गाधी ने राजनीतिक क्षेत्र मे अपना काम शुरू किया—देश को विदेशी शासन से मुक्त करना चाहा, किन्तु क्रमश उन्होने उसके आधार पर देश को सार्वजनिक मुक्ति की राह दिखाई। उसी प्रकार भूमि-समस्या के समाधान के लिए भूदान-यज्ञ आरम्भ हुआ। अब उसके आधार पर देश के कायापलट का काम आरम्भ हुआ है। सर्वोदय की समस्त दिशाए उसके रग मे रँग उठी है। भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत नहीं हो सकता। भूदान-यज्ञ की विचारधारा की पृष्ठभूमि है आध्यात्मिकता—आत्मा की एकता। ससार मे जो कुछ है, सब भगवान् का है। भूमि के मालिक हम नहीं, भगवान् है। उसी प्रकार अपनी बुद्धि के भी मालिक हम नही है। हम अपनी सम्पत्ति, धन, अर्थ आदि के भी मालिक नहीं है। अपने शरीर के भी मालिक हम नही है। हमारे पास भूमि, धन-सम्पत्ति, बुद्धि, शरीर, जो कुछ है, सब हमे समाज-सेवा के लिए अर्पित कर देना चाहिए। इसीलिए भूदान-यज्ञ की विप्लवी धारा प्रवाहित हो रही है। यह परम अभीष्ट-साधन सम्पत्तिदान, श्रमदान, बुद्धिदान आदि तक प्रसारित हो गया। यही तक वह सीमित न रहा। हमारा जीवन क्या हमारा है? हमारा जीवन क्या क्षुद्र स्वार्थों मे ही समाप्त हो जायगा? जीवन भी तो हमारा नहीं है—वह भगवान् का है। वह भगवान् का दान है। अत उसके काम मे, समाज-सेवा के काम मे उसे उत्सर्ग किया जाना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ

सर्वग्रासी बन गया। जीवन-दान तक उसकी परिणति होकर ही रही। बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन का एक महान् अवदान है—जीवन-दान। किन्तु, विनोबाजी ने इस जीवनदान का आभास तब से कई महीने पहले अपने एक प्रार्थना-प्रवचन मे दिया था। उन्होने कहा था "आज नवीन मनुष्य, नवीन समाज तैयार करना होगा। इसीलिए भूदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान आदि आन्दोलन शुरु किये गये है। इस काम के लिए ऐसी विचारधारा उत्पन्न करनी होगी, जिससे लोग जीवन समर्पित करने की ओर अग्रसर हो।"

सर्वांगीण क्रान्ति का क्षेत्र तैयार हो गया है। देश के वातावरण मे एक विप्लवी प्रवाह सचारित हो उठा है। किन्तु, इस परम अभीष्ट की सिद्धि के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले साधक पर्याप्त सख्या मे कहाँ उपलब्ध है? सेवक कहाँ है? बोधगया-सम्मेलन के दूसरे दिन के अधिवेशन मे श्री जयप्रकाश नारायणजी भाषण करने खडे हुए। वे क्षुण्ण थे, विपण्ण थे। यदि एकनिष्ठ कार्यकर्ता यथेष्ट सख्या मे होते, तो बिहार मे ३२ लाख एकड भूमि पहले ही इकट्ठी हो जाती। सन्त विनोबा को इतने दिनो तक बिहार मे रखकर कष्ट नही देना पडता। आन्दोलन मे तीव्रता लाने के लिए प्रेरणा देने के उद्देश्य से उन्होने कहा कि 'आज का युग इस आन्दोलन के लिए अधिक समय नही देगा। अहिंसात्मक क्रान्ति होगी, इसके लिए इतिहास रुककर प्रतीक्षा नही करेगा।' उन्होने उसके पिछले साल छात्रो से एक वर्ष का समय इस आन्दोलन मे देने के लिए अपील की थी। 'किन्तु अब वर्ष की बात करने से काम नही चलेगा। अब तो जीवन अर्पित करने का समय आ गया है।' इसके बाद उन्होने तुमुल हर्षध्वनि के बीच श्रद्धा और विनय के साथ अपने जीवन-दान की घोषणा की। सारे सम्मेलन-क्षेत्र मे एक अपूर्व गम्भीरता छा गयी। विनोबाजी का हृदय पिघल गया। उन्होने धीर, स्थिर और गम्भीर भाव से बोलना आरम्भ किया। उन्होने कहा "हमने अभी एक भाषण सुना। उसमे हृदय की बात थी। इसे सुनकर मेरे मन मे रुक्मिणी के पत्र की बात आयी। रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण को एक पत्र लिखा था। आजकल पत्र-साहित्य को साहित्य का अग माना जाता है। रुक्मिणी के पत्र को पत्र-साहित्य मे प्रथम स्थान प्राप्त है। इस पत्र को शुकयोगी ने कवितावद्ध किया था। पत्र में रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण को लिखा था : 'मुझे सौ बार जीवन ग्रहण

करना पडे तो करूँगी, प्राण-त्याग करूँगी, शरीर को कृश से कृशतर करूँगी, किन्तु फिर भी तुम्हीको वरण करूँगी।' ऐसे शुभ सकल्प की बात सुनने से हृदय आनन्दित होता है। मै सोचता हूँ कि इस यज्ञ के सफल होने से हमारा जीवन सफल होगा।" यही इसकी समाप्ति नही हो गयी, समाप्ति की बात भी नही है। उस समय से बोधगया-सम्मेलन का वातावरण बदल गया। सबका हृदय शीतल हो गया। दूसरे दिन सवेरे से ही विनोबाजी सोचने लगे कि इस सम्बन्ध मे उन्हे कुछ करना चाहिए। अत उन्होने जयप्रकाश नारायणजी को एक पत्र लिख दिया "भूदान-यज्ञमूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान, अहिंसक क्रान्ति के लिए मेरा जीवन-समर्पण।" इसके बाद सम्मेलन के प्रात कालीन अधिवेशन के प्रारम्भ में ही विनोबाजी का उक्त पत्र पढा गया। इसके साथ-साथ नेताओ से लेकर गाँव के साधारण कार्यकर्ताओ तक ने एक-एक करके अपने जीवन-दान के सकल्प की लिखित रूप मे घोषणा करनी आरम्भ की। इसी काम मे प्रात कालीन अधिवेशन का पूरे तीन घटे का समय समाप्त हो गया। जीवन-दानियो की सख्या साढे तीन सौ से भी ऊपर हो गयी। इसके बाद भी जयप्रकाश नारायणजी के पास जीवन-दान के सकल्प आते रहे। प्रश्न है कि इस जीवन-दान का अर्थ क्या है? शरीर, वाणी, मन और बुद्धि, सबको इस काम के लिए अर्पित करना। यह ठीक है, किन्तु क्या यही इतनी बात है? जीवन-दानियो मे ऐसे लोग भी हो सकते है—है भी, जिन्होने पहले ही अपना जीवन-दान कर दिया था। उनके पुन जीवनदान करने का क्या तात्पर्य है? विनोबाजी ने सम्मेलन के अन्त मे इसे स्पष्ट करके समझाया। जीवनदान का तात्पर्य क्या है, इसका आभास उससे पिछले दिन की प्रार्थना-सभा में ही अपनी स्वाभाविक भगिमा के साथ कृपालानीजी ने दिया था। विनोबाजी ने उसका उल्लेख करते हुए कहा "जिस बात का आभास कृपालानीजी ने कल की प्रार्थना-सभा मे दिया, उसमे एक गम्भीर चीज है। कृपालानीजी एक विशिष्ट प्रकृति के मनुष्य है और उनके बोलने का ढग भी विशिष्ट है। बोलते समय उन्होने उपनिषद् की ही बात कही है, किन्तु सहज ही यह नही मालूम पडता कि उन्होने क्या कहा? लोगो के मन मे होता है कि वे उपहास या व्यग्य कर रहे है। उन्होने अत्यन्त सहज भाव से, और मै कहूँगा कि अहिंसात्मक ढग से यह समझाया है कि भाइयो,

जीवन-दान तो कर रहे हैं, किन्तु कोई गदी चीज तो दान नही कर रहे ह ? यह वात ध्यान मे रखनी चाहिए। शुद्ध वस्तु ही अर्पित करनी चाहिए। जीवनदान का विचार अच्छा है, किन्तु जो लोग अपने मन मे जीवन-दान का सकल्प करे, उन्हे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि वे अशुद्धता का दान न करे। जीवन-दान के सकल्प का अर्थ है जीवन-शुद्धि—इस वात को उन्होने अत्यन्त रुचिकर ढग से हमारे सामने रखा है। वह हँसी-मजाक नही था। आज जो आपने मेरे सामने और अपने सामने एक या अनेक को साक्षी रखकर जीवन-अर्पण करने का संकल्प लिया है, उसके साथ-साथ जीवन-शुद्धि की सावना भी आपको करनी चाहिए। हम सार्वजनिक काम कर रहे है, वह भी भूदान-यज्ञ की तरह वुनियादी काम हे । उसके द्वारा देश का स्वरूप वदलेगा। ऐसे काम के लिए यदि जीवन-दान किया जाय, तो चित्त-शुद्धि के लिए साधारण से अविक प्रयत्न किया जाना चाहिए।"

इसके कई महीने वाद विहार मे जीवनदान-शिविर का उद्घाटन करते समय विनोवाजी ने वतलाया कि जीवनदान और भी गम्भीर अर्थपूर्ण हे और इसलिए जीवनदानी को अविक ऊँचे आध्यात्मिक आदर्श का अनुसरण कर चलना होगा। हम कौन है ? सारे ससार का सचालन कौन कर रहा हे ? ससार-सचालन की योजना किसकी है और वह क्या हे ? क्या मनुष्य इस योजना मे भाग ले सकता है ? ईश्वर ही सम्पूर्ण ससार का सचालन कर रहा है। सब उसीकी योजना है। हम लोग कुछ भी नही है। मनुष्य तुच्छ है। ईश्वर यदि अपने काम के लिए किसीको यन्त्र-रूप मे चुन लेता है, तो उसका कुछ मूल्य हो जाता है। केवल तभी मनुष्य उसकी योजना मे हिस्सा ले सकता है। अन्यथा मनुष्य तुच्छ रह जाता हे। क्या करने से या कैसा वनने से मनुष्य भगवान् के हाथ का यत्र वनने योग्य होता है ? वीज अपने को नष्ट कर देता है, तभी वृक्ष उत्पन्न होता है। वीज का अस्तित्व रहने तक वृक्ष उत्पन्न नही हो सकता। उसी प्रकार मनुष्य अपने 'स्वत्व' को नष्ट कर जव तक नवजीवन प्राप्त नही करेगा, तव तक ईश्वर की योजना मे भागीदार होने के योग्य नही होगा और ईश्वर उसे ग्रहण नही करेगा। इस सम्वन्ध मे विस्तृत व्याख्या करते हुए विनोवाजी कहते है "यदि ईश्वर की योजना मे योगदान करना है, तो वीज की तरह अपने को समाप्त करना होगा। वीज के नष्ट

होने पर ही वृक्ष जन्म लेगा। इसीलिए बौद्ध लोग यह सिद्धान्त कहते हैं कि एक का विनाश होने पर एक अस्तित्व का जन्म होता है। यदि हम अपने रूप को बचाये रखेंगे, तो ईश्वर के काम के उपयुक्त नहीं होंगे। परन्तु लोगों को प्राय खाली नही देखा जाता। उनके 'अहम्' के चारो ओर कल्पना-जाल, कर्तव्य-क्षेत्र और ममत्व घिरे रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति उन सबको कायम रखते हुए ईश्वर की योजना में योगदान करना चाहता है, तो ईश्वर कहता है कि तूने मेरे लिए जगह खाली नही छोडी है। यदि तू खाली हो जायगा, तभी न मेरे लिए स्थान बनेगा। यह हुआ जीवनदानी का स्वरूप। जो खाली हो गये हैं, जिन्होने अपने को शून्य बना लिया है, जिन्होने अपनी जगह छोड दी है, केवल वे ही जीवनदानी हो सकते हैं। जो शून्य नही बने है, उनमे उनका 'स्वत्व' ही चल सकता है, ईश्वर का काम नही चल सकता। तुलसीदासजी कहते हैं बाबा, 'अपने करत मेरी घनी घटी भई' अर्थात् मेरी ही करनी से मेरी इज्जत नष्ट हुई है। इसलिए अब से आप ही कीजियेगा, मै नही करूगा। मेरे द्वारा काम करा लीजियेगा, मै शून्य हो गया हूँ। जब मन इस अवस्था को प्राप्त हो जाता है, तब मनुष्य जीवनदानी बनता है। गीता में भगवान् ने अर्जुन से कहा 'यथेच्छसि तथा कुरु' अर्थात् तेरी जैसी इच्छा हो, वैसा कर। यह बात कहकर भगवान् ने अर्जुन की परीक्षा लेनी चाही कि अर्जुन के पास इच्छा नाम की कोई चीज बची है अथवा नहीं। यदि अर्जुन कहते कि 'मेरी यह इच्छा है', तो भगवान् कहते कि 'तुम अयोग्य हो, तुम मेरे योग्य नही हो।' अर्जुन ने कहा 'मेरी क्या इच्छा हो सकती है?' 'नष्टो मोह'—मेरा मोह दूर हो गया है। इसलिए 'करिष्ये वचन तव', अर्थात् तेरी ही आज्ञा का पालन करूँगा। गीता-प्रवचन के अन्त मे दादू के एक वचन का उल्लेख किया गया है। बकरी 'मे-मे' (मैं-मैं) करके बोलती है, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद जब उसके शरीर के अश-विशेष से ताँत तैयार करके पिजन मे लगायी जाती है, तब उससे 'तू ही-तू ही' (तुम्ही-तुम्ही) की आवाज निकलती है। अहकार का अन्त होने पर 'तू-तू' शुरू होता है। तभी भगवान् उस व्यक्ति से अपना काम कराते हैं।"

यह ससार एक रगमच है। यहाँ एक नाटक का अभिनय चल रहा है। प्रत्येक मनुष्य अभिनेता है। अभिनय करते समय यदि अभिनेता यह

सोचता रहे कि वह वास्तव मे फलाँ व्यक्ति है, तो उसका अभिनय सफल नही होगा। उसी प्रकार भगवान् का काम करते समय यदि हम अपने स्वत्व को याद रखेगे, तो भगवान् का काम नही कर सकेगे। इसीलिए विनोबाजी कहते है "विनोवा यदि कल हरिश्चन्द्र की भूमिका मे अभिनय करेगा, तो उसे उस समय यह नही सोचना पडेगा कि वह विनोवा है।"

मनुष्य अन्तत अपने अहकार का विसर्जन कर देने पर ही जीवनदानी माना जायगा। इसका चरम प्रमाण तो जीवन रहने तक नही मिलेगा। मृत्यु के वाद इसका निर्णय होगा कि किसने अपना जीवन अर्पित किया था और किसने नही। इसीलिए 'फलाँ व्यक्ति जीवनदानी है'—ऐसा नही कहा जा सकता। 'फलाँ व्यक्ति जीवनदानी है'—यह वात केवल अन्तर्यामी कह सकते है। केवल मृत्यु के वाद ही यह कहा जा सकता है कि फलाँ व्यक्ति जीवनदानी था। यह वात समझाकर विनोवाजी कहते है "जो कहेगे कि 'मै जीवन-दानी हूँ', उनका 'हूँ' खतम होगा और 'मै' रह जायगा। इसीलिए यह कहना ठीक नही है कि 'मै जीवनदानी हूँ'। जीवनदानियो की सभा स्व मे हो सकती है। पृथ्वी पर हम जैसे सामान्य मनुष्यो की ही सभा हो सकती है। जीवनदानियो का सम्मेलन स्वर्ग मे होगा—मृत्यु के वाद, पहले नही।"

मनुष्य के पहले के चरित्र को देखकर यह नही कहा जा सकता कि अमुक व्यक्ति जीवनदान का सकल्प लेकर जीवनदानी के उपयुक्त स्थिति प्राप्त कर सकेगा, अथवा नही ? ऐसा हो सकता है कि सात्त्विक प्रकृति का भी कोई व्यक्ति जीवनदान करके अन्त तक 'अहम्' को न छोड सके और जीवनदानी की सज्ञा के योग्य सावित न हो सके। इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि राजसी अथवा तामसी प्रकृति का कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक जीवन-दान का सकल्प लेने के वाद अपने जीवन मे ऐसा परिवर्तन ले आये कि उसका आध्यात्मिक दृष्टि से पुनर्जन्म हो जाय और वह अपने को समाप्त कर अपने को ईश्वर के हाथ में पूर्णत समर्पित करके वास्तव मे जीवनदानी हो जाय। अतएव जीवनदानियो मे जो लोग राजसी या तामसी प्रकृतिवाले प्रतीत हो, उन्हे छोड देने का कोई प्रश्न ही नही उठता। विनोवाजी कहते है 'किसीको भी छोड देनेवाला मै कौन ? मृत्यु के वाद, मे ही जीवनदानी था या नही, इसका विचार होगा और मुझे कौन स्थान मिलना चाहिए, इसका

निर्णय होगा।" अतएव जिन्होंने यह घोषणा की है कि वे जीवनदानी हैं, उन्हें जीवनदानी मान लेना ही उचित है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "हम लोग कथन को ही सत्य मान लेते हैं। जन-गणना के समय कौन हिन्दू है—कौन मुसलमान है, यह लिखा जाता है। मुँह से जो व्यक्ति जो कहता है, उसे सच मानकर लिख लिया जाता है। इस सम्बन्ध में शास्त्र का प्रमाण नहीं माँगा जाता। लोग कहते हैं मैं जानता हूँ कि अमुक कैसा व्यक्ति है, उसने बेकार ही नाम दिया है। यह तो ऐसा लगता है, जैसे हम मनुष्य के अन्तर्यामी हैं।" लकडी के जल जाने पर यह बात समझ में नहीं आती कि वह किसकी लकडी थी। इसीलिए आज कोई किसी भी प्रकृति का क्यों न हो, यदि जीवनदान की घोषणा करने के बाद अपने को जलाकर राख कर दे अर्थात् अपने को ईश्वर के हाथों में अर्पित कर दे, तो उस अवस्था में यह नहीं मालूम हो सकेगा (और यह जानने की आवश्यकता भी नहीं रह जाती) कि वह व्यक्ति पहले किस प्रकृति का था? यह बात समझाते हुए विनोबाजी कहते हैं "लकडी में अग्नि का प्रयोग किया गया। लकडी जलकर अंगारे में परिणत हो गयी। तब वह बबूल या आम की लकडी नहीं रह जाती। उसे देखकर यदि कोई बता सके कि वह अमुक वृक्ष की लकडी थी, तब यह मानना पडेगा कि लकडी पूरी तरह जली नहीं। भीतर की लकडी को अब भी जलकर राख होना बाकी है।"

कुछ लोग कहते हैं कि जिन लोगों ने जीवन-दान किया है, उनकी आजीविका की क्या व्यवस्था होगी? इसके उत्तर में विनोबाजी कहते हैं "इसका उत्तर यही है कि जो विश्वम्भर है, वही यह व्यवस्था करेंगे। 'योऽसौ विश्वम्भरो देव स भक्तान् किं उपेक्षते?'—ईश्वर अपने भक्त की उपेक्षा नहीं करेंगे। वे विश्वम्भर हैं, यह बात कभी भी गलत प्रमाणित नहीं हुई है। यदि जीवनदानी लोग भक्त हों, तो विश्वम्भर उनकी चिन्ता करेंगे। अंग्रेजी भाषा के अनुसार हमारा यह काम 'सर्विस' नहीं है, यह परिशुद्ध सेवा है। अतएव आजीविका की व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की इसने गारण्टी नहीं है। शिक्षा-दान की व्यवस्था की जा सकती है, किन्तु वह भी होगी ही, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। काम के माध्यम से उन्हें शिक्षा मिलेगी। जीवनदानी लोगों की मित्र-मंडली काफी बडी है। इस मित्र-मंडली

के द्वारा उनके लिए कुछ व्यवस्था हो जा सकती है । यह मित्र-मडली है—विशाल जनता। अतएव जीवनदानियो के भरण-पोषण के लिए कुछ व्यवस्था करनी होगी और इस बारे मे विचार करना होगा—ऐसा मै नही सोचता। भगवान् के हाथ मे हमने अपना जीवन समर्पित किया है। वे ही हमारे एकमात्र आधार है—यही विशुद्ध भक्तिमार्ग है। पहले ही मैने कह दिया है कि यदि अहकार शेष रह जायगा, तो जीवनदान का उद्देश्य पूरा नही होगा। भक्ति का सकल्प ग्रहण किया गया है। भक्ति को प्राप्त होने पर जिसकी जितनी शक्ति है, वैसा काम होगा। काम करते-करते शक्ति बढेगी। इसी प्रकार युक्ति का भी विकास होगा । जिन लोगो ने जीवनदान किया है, उनकी शक्ति और युक्ति कम रह सकती है, किन्तु उनकी भक्ति कम नही होनी चाहिए।"

जिन लोगो ने जीवन-दान किया है, उनसे कैसे काम कराया जाय—यह एक समस्या है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते है "जिन्होने जीवन-दान दिया है, उन्होने कहा है कि वे उसी क्षण से इस काम मे लग गये है—यह बात ध्यान मे रखनी होगी। अतएव यदि मुझसे कोई परामर्श माँगेगा, तो मै निश्चय ही परामर्श दूंगा। यदि कोई सहायता माँगेगा, तो सहायता दूंगा। जिन्होने जीवनदान किया है, उन्होने किसी व्यक्ति के हाथ में अपना जीवन अर्पित नही किया है।" अतएव उनका निर्देशक कोई नहीं है और न रहेगा। विनोबाजी कहते है कि वे लोग भेडो के झुण्ड नही—वे एक-एक बाघ है। वे अपनी शक्ति से काम करेंगे। उनके लिए किसी गडेरिये की आवश्यकता नही होगी। जिन लोगो ने जीवनदान किया है, वे आपस मे परामर्श कर लेंगे। उनके बीच परस्पर उपदेशो और परामर्शो का आदान-प्रदान होगा। विनोबाजी कहते है "यह भक्तो का एक लक्षण है। 'बोधयन्ति परस्परम्।' ज्ञान देने के लिए कोई धर्माधिकारी नही रहेगे। वे एक-दूसरे को उपदेश देगे, परामर्श देंगे।"

जीवनदान केवल बडी उम्र के लोग करे, ऐसा नहीं है। बालक-बालिकाएँ भी जीवनदान कर सकती है।

विनोबाजी आगे कहते है "जीवनदान का अर्थ है अतिम प्रवास। यह अन्तिम कार्य है। जिन्होने जीवनदान किया है, वे अखड यात्री बन गये है।

वे केवल आगे की ओर बढ़ते जायँगे, कभी भी पीछे नहीं मुड़ेंगे। इस अन्तिम काम में किसीके लिए कोई प्रतीक्षा नहीं करेगा। किसीके कारण कोई पीछे नहीं रहेगा। चलते-चलते जो गिर जायँगे, वे गिरे ही रहेंगे। चलते-चलते जो रुक जायँगे, वे रुके ही रहेंगे। किसीके लिए कोई प्रतीक्षा नहीं करेगा।" इस सिलसिले में वे पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा का स्मरण दिलाते हैं। पाँचों पाण्डव और उनके साथ द्रौपदी चलने लगी। भीम गिर गये और धर्मराज से बोले 'सहायता कीजिये'। धर्मराज ने कहा 'भाई, उठ सकते हो, तब कुछ सहायता की जा सकती है'। वे भीम के लिए रुके नहीं। एक-एक करके अन्य सभी इसी प्रकार गिर गये। स्वर्ग के द्वार पर उनका केवल एक साथी रहा। वह था उनका कुत्ता। उसे छोड़कर वे स्वर्ग में प्रवेश करने को तैयार नहीं हुए। इस सम्बन्ध में विनोबाजी आगे कहते हैं : "इस कार्य में सभी मुक्त हैं। मुक्त रहकर 'सामने केवल यही एक काम है' ऐसा सोचकर उसमें पिल पड़ना होगा। ऐसा विचार हृदय में लाने से काम सरल हो जायगा और इस काम में किसी प्रकार के दुष्परिणाम की सम्भावना नहीं रह जायगी। प्रत्येक की परीक्षा होगी। जो रुक जायगा, वह रुक जायगा। जो नहीं रुकेगा, वह नहीं रुकेगा। जो हमारे साथ चलना चाहेगा, उसके साथ हम हैं। जो लोग हमारा साथ त्यागना चाहेंगे, उन्हें वैसा करने की स्वतन्त्रता होगी और हमें भी आगे बढ़ जाने का अधिकार होगा।"

बोधगया में जीवनदान की जो लहर उठी थी, वह मंद नहीं हुई है। अविरल गति से जीवनदान का स्रोत बहता जा रहा है। सितम्बर, १९५५ तक एक हजार से भी अधिक व्यक्तियों ने जीवनदान का संकल्प लिया है। जीवनदानियों को चित्त-शुद्धि की प्रेरणा देने और उन्हें उनके उपयुक्त जीवन-शृंखला में दीक्षित करने के उद्देश्य से शिविरों की व्यवस्था की जा रही है। इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि वे लोग अपनी योग्यता और मानसिक झुकाव के अनुकूल विभिन्न क्षेत्रों में अपने को लगा सकें। जीवनदान की प्रक्रिया में एक दैवी शक्ति का उदय हो रहा है और भूदान-यज्ञ तथा सर्वोदय-साधना के क्षेत्र में एक नवीन युग के आगमन की सूचना मिल रही है। सर्वोदय-स्थापना में इसकी सम्भावनाएँ असीम हैं।

षष्ठांश दान का रहस्य

भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध में कोई-कोई व्यक्ति ऐसा कहते है कि जमीन्दार और मालगुजार एक-षष्ठांश भूमि का दान करने के बाद बाकी पंच-षष्ठांश का आराम से और निरापद भाव से भोग करेंगे और उनकी जीवन-यात्रा पूर्ववत् चलेगी। इससे समाज में क्रांति आने की आशा कम है।—जो लोग ऐसा सोचते हैं, वे भूदान-यज्ञ-आंदोलन के रहस्य को हृदयंगम नहीं कर सके हैं। भूदान-यज्ञ सम्पत्ति के स्वामित्व की समाप्ति की दीक्षा देनेवाला आंदोलन है। जिन्होंने आज एक-षष्ठांश दान किया है, वे कल उससे अधिक दान करेंगे और जब तक उनकी सम्पत्ति का पूर्णतः विसर्जन नहीं हो जायगा, तब तक उनका दान चलता रहेगा। विनोबाजी ने कहा है "रबड़ को अधिक खींचने से वह फट जाता है। अतः उसे धीरे-धीरे खींचा जाना चाहिए। इसीलिए अभी मैं केवल एक-षष्ठांश माँग रहा हूँ। आज तो मालिक सबको अपने पास संचित रखता है। समाज में यही रीति चल रही है। इसीलिए प्रथमतः मैं एक-षष्ठांश माँग रहा हूँ। बाद में अधिक माँगूँगा। व्यक्ति के गुण-विकास के लिए पर्याप्त समय देना आवश्यक है।" सम्पत्तिदान के सम्बन्ध में विनोबाजी ने यह बात कही है। भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध में भी यही बात प्रयुक्त है। उन्होंने सम्प्रति राँची में बिहार राज्य के भूदान-कार्यकर्ताओं के शिविर में जो प्रवचन किया था, उसमें उन्होंने यह बात और स्पष्ट रूप से कही थी "बिहार में हम अधिक गम्भीरता में प्रवेश कर रहे हैं। मैंने यहाँ केवल भूमि और दानपत्रों के कोटे में वृद्धि नहीं की, बल्कि मैं ग्रामवासियों को यह समझा रहा हूँ कि गाँव के भूमिहीन गरीबों को भूमि देने की व्यवस्था आप लोगों को करनी होगी, और आप सब लोगों को मिलकर यह काम करना चाहिए। पहले मैं कहूँगा कि प्रत्येक ग्राम से ५-१० एकड़ जमीन मिलनी चाहिए। बाद में एक कदम और बढ़ूँगा। गम्भीरता में प्रवेश करने पर धीरे-धीरे जाना होता है। प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक किसान से दानपत्र लेना होगा। इसके बाद अंतिम चरण उठाऊँगा और लोगों से कहूँगा 'अब स्वामित्व को एकदम समाप्त करना होगा।' इस प्रकार कार्यकर्ताओं को भूदान-यज्ञ के सम्पूर्ण दर्शन का ज्ञान रहना चाहिए। आप सब लोगों के मन में यह बात रहनी चाहिए और आपको एक-एक कदम आगे बढ़ना चाहिए।"

इस सम्बन्ध मे उन्होने और एक स्थान पर कहा है "लोग पूछते है कि एक-षष्ठांश दे देने के बाद फिर तो नही मॉगेगे ? मै कहता हूँ कि धर्मकार्य मे क्या कभी छुटकारा मिलता है ? उसमे तो बन्धन आता है। बाद मे तो सब कुछ देकर आपको गरीबो की सेवा में लग जाना चाहिए। वामन के तीन डग उठे थे। वामन का तीसरा डग जिस प्रकार उठा था, इसी प्रकार अंत मे हमें गरीब हो जाना पडेगा और जीवन को सीधा-सादा बना लेना होगा।

"सन्तान को उठाते समय माता को झुकना पडता है। इसी प्रकार ग [illegible]बो को ऊँचा उठाने के लिए हमें अपने जीवन-मान को कुछ नीचा करना होगा। एक-षष्ठांश दान के द्वारा इसका आरम्भ हुआ है।"

सम्पत्तिदान-यज्ञ के सम्बन्ध मे भी [illegible]ही आपत्ति प्रकट की गयी है, जिसका विनोबाजी ने खडन किया है।

भूमि-वितरण

अभी तक सर्वत्र भूमि-वितरण का काम इसीलिए आरम्भ नही किया गया कि भूदान-यज्ञ के कार्यकर्ताओ की शक्ति, सामर्थ्य और समय एकनिष्ठ रूप से भूमिदान-सग्रह के काम मे लगा रहे। जहाँ भूमि-वितरण आरम्भ किया गया था, वहाँ भी उसे तेजी से चलाने के लिए विशेष चेष्टा नही की गयी। बोधगया-सम्मेलन के बाद से भूमि-वितरण पर विशेष जोर दिया जा रहा है। भूमि-वितरण के फलस्वरूप भूदान-यज्ञ का वास्तविक और परिपूर्ण रूप जनता के सामने प्रकट हो जायगा। भूमि-सग्रह की अपेक्षा भूमि-वितरण का काम अधिक श्रमसाध्य और दायित्वपूर्ण है। भूमि-वितरण का भार जिन कार्यकर्ताओ पर पडे, उन्हे न्याय-परायण, निरपेक्ष मनोभाव-सम्पन्न और क्रातिकारी दृष्टिवाला होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विनोबाजी ने वितरण के सम्बन्ध मे जो नियम निर्धारित किये है, उनका यथातथ्य पालन करना होगा। अन्यथा, वितरण का उद्देश्य नष्ट हो जाने की सम्भावना रहेगी। वितरण-सम्बन्धी नियमो में निम्न-लिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय है (१) वितरण-कार्य ग्राम की सार्वजनिक सभा मे करना होगा। (२) वितरण के लिए निर्दिष्ट तिथि के सात दिन पहले एक बार और उससे एक दिन पहले फिर एक बार ढोल के साथ इसकी मुनादी करा देनी होगी। (३) ग्रामवासियो की सर्वसम्मति से, अन्यथा भूमिहीनो

की सर्वसम्मति से भूमि का वितरण करना होगा। मतभेद होने पर गोटी या पर्चा डालकर निष्कर्ष पर पहुँचना होगा। सव काम एक ही सभा मे पूरा करना होगा। (४) भूमि-वितरण करनेवाले कार्यकर्ता सभा मे केवल गवाह के रूप मे उपस्थित होगे, सेवक के रूप मे रहेगे, निर्णायक की तरह नही रहेगे। (५) यथासम्भव दान मे प्राप्त भूमि का तृतीयाश हरिजनो मे वितरित किया जायगा। (६) साधारणत जिस ग्राम मे भूमिदान मिला हो, उसी ग्राम के भूमिहीन गरीवो मे भूमि का वितरण किया जाय। भूमिहीनो मे से जिसके पास कभी भूमि न रही हो, उसे प्राथमिकता दी जाय। उस ग्राम मे वितरण हो जाने के वाद वची हुई भूमि को पास के गाँव के भूमिहीनो मे वॉट दिया जाय।

भूमि-वितरण के सिलसिले मे एक वात की विशेष सावधानी वरतनी होगी। भूमि प्राप्त करनेवाले के मन मे यह धारणा उत्पन्न न होनी चाहिए कि गरीव होने के कारण दया करके उसे भूमि दी जा रही हे। उसके मन मे यह वात रहनी चाहिए कि गरीवो को जिस अधिकार से अव तक वचित रखा गया था, वही उसे वापस किया जा रहा है। कार्यकर्ताओ को सारे कामो मे ऐसा वातावरण पैदा करना होगा कि लोग यह अनुभव करे कि अव तक भूमिहीनो को भूमि न देकर समाज के प्रति वडा भारी अन्याय किया गया था। भूदान-यज्ञ के द्वारा वही भूल सुधारी जा रही हे।

जो लोग जमीन जोतते नही ओर विना परिश्रम के जमीन मे उत्पन्न फसल का भोग करना चाहते हे, वे जमीन के मालिक नही वन सकते। जो परिश्रम कर सकते है, उन्हे आज उनका अधिकार लौटाया जा रहा है सही, किन्तु उन्हे इसका ध्यान रहना चाहिए कि अधिकार की दूसरी ओर कर्तव्य होता है। कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करने से ही अधिकार सार्थक होता है। इस वात को भूमि प्राप्त करनेवाले के हृदय मे उतारना होगा। उसे इस वात का अधिकार नही होगा कि जमीन लेकर उसके जी मे जो आये, वह करे। जमीन को नष्ट करने से, जमीन मे कम फसल उत्पन्न करने से अथवा जमीन को परती रखने से वह समाज और ईश्वर के समक्ष दोषी माना जायगा।

इन सवसे वडी वात यह है कि भूमि-वितरण होने के समय से ही भूमि पानेवाले को सर्वोदय की दीक्षा देनी होगी, उसे सर्वोदय की विचारधारा मे दीक्षित और शिक्षित करना होगा। उसके परिवार को 'सर्वोदय-परिवार' के

रूप में संगठित करना होगा। मादक द्रव्यों से उसे छुड़ाना होगा। जीविका के परि-पूरक उपाय के रूप में उसे वस्त्र के मामले में स्वावलम्बी बनना पड़ेगा। इसके लिए उसे अविलम्ब ही सूत कातने की शिक्षा लेनी होगी और प्रत्येक वर्ष सूता-जलि अर्पित करनी होगी। उसे ढेकी से चावल कूटना और हाथ की चक्की से गेहूँ पीस लेना होगा। उसे गुड़ या हाथ से बनी चीनी तथा घानी तेल तैयार करना होगा और उसीका व्यवहार करना होगा। इस प्रकार उसे क्रमशः सर्वोदय के पथ पर अग्रसर होना होगा। तभी भूमि-वितरण का उद्देश्य सार्थक होगा।

भूमि का खंडीकरण

ऐसा आक्षेप किया जाता है कि भूदान-यज्ञ के द्वारा भूमि और भी खण्ड-खण्ड होती जा रही है, क्योंकि दो-चार कट्ठा भूमि भी दान में ग्रहण की जाती है। इस आक्षेप को दूर करने के लिए विनोबाजी ने कहा है "किन्तु, भाइयो! आज हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, यह क्या आपको अच्छा लग रहा है? आज सबके हृदय खण्ड-खण्ड हो गये हैं। यदि हृदय के टुकड़े जुड़ जायँगे, तो जमीन के टुकड़े भी सहज ही जुड़ जायँगे। गरीबों को जब जमीन दी जा चुकेगी, तब उन्हें सहकार की शिक्षा देना विशेष कष्टसाध्य नहीं होगा। आरम्भ से ही सहकार की शर्त लगाना बाहरी प्रतिबन्ध जैसा होगा और उनके लिए एक व्यवस्थापक की आवश्यकता होगी। इसीलिए, जमीन का मालिक परमेश्वर है—यह समझाकर आज मैं गरीबों को जमीन का पूरा अधिकार देना चाहता हूँ। यदि हृदय जुट जाय, तो क्या जमीन को जोट सकना कठिन होगा? किसे पहले जोड़ना होगा, यह तो बुद्धि की बात है। जहाँ हृदय ही भग्न पड़ा हो, वहाँ क्या जमीन को जोट सकना सम्भव है? एक भाई ने मुझसे कहा है कि जब लोग 'सहकार' करने के लिए तैयार होंगे, तभी मैं जमीन दूँगा। इस पर मैंने उनसे कहा कि आप लोगों को इसके लिए समझायें। इससे उन्हें कुछ ज्ञान मिला, क्योंकि लोग कहने लगे कि हम सहकारिता में नहीं पड़ेंगे। अन्य कार्यों में हम स्वयं सहकार नहीं करते और इस मामले में हम इन गरीबों पर सहकार की शर्त लगाना चाहते हैं और कहते हैं—सहकारिता से काम करो। इससे इनके ऊपर एक प्रतिबन्धमूलक दबाव के लिए व्यवस्था की जायगी। और ये तो आज ही डरे हुए हैं। तब उन भाई को मेरी बात समझ में आयी कि पहले हृदय जोड़ देना आवश्यक है।"

पहले प्रत्येक परिवार को पाँच एकड जमीन दी जाय। इसके वाद वची जमीन को लेकर सीलिंग के समर्थक सीलिंग निर्धारित करे। इसीलिए विनोबाजी सीलिंग-निर्धारण के अत्यधिक विरोधी है। उन्होने इस सम्वन्ध मे कहा है "सीलिंग की वात खतरनाक है। यह वात उठाना हमारे लिए ठीक नही होगा। आज यह वात सव लोग कह रहे है, किन्तु मैने कहा है कि मै 'सीलिग' नही चाहता—मै 'फ्लोरिग' चाहता हूँ। सब लोग यह सिद्धान्त मान ले कि प्रत्येक परिवार को ५ एकट के हिसाब से जमीन दी जायगी और उसके वाद जो वच जाय, उसे लेकर जो जी मे आये, किया जा सकता है। कोई-कोई कहते है आपके कथनानुसार 'रुफिग' करने से वह इतना नीचा होगा कि झुककर भीतर घुसना होगा। मैने कहा है उसमे कोई क्षति नही है। मुझे दिल्ली की 'सीलिग' की आवश्यकता नही होगी—मुझे गाँव का 'सीलिग' चाहिए। मैने राँची मे देखा है कि ३० एकड सीलिंग होने पर भी भूमिहीनो को जमीन नही मिलेगी। जमीनवाले लोग अपने परिवारवालो और आत्मीय स्वजनो के वीच जमीन का वितरण कर लेगे। तेलगाना मे सीलिग की वात चली थी। वहाँ के भूस्वामियो ने वैसा ही किया था। वहाँ दो सौ एकड सीलिग की वात हुई थी। यदि ३० एकड की तरह छोटे परिमाण का सीलिग निश्चित किया जायगा, तो वहुत अधिक क्षतिपूर्ति देनी होगी। विना क्षतिपूर्ति के आज कोई जमीन छीनी नही जा सकती। और, वडे परिमाण का सीलिग निश्चित होने से जमीन मिलेगी ही नही। इसीलिए हम चाहते है कि गाम की जमीन ग्राम के सभी लोगो की हो जाय। अधिक-से-अधिक तीन गुनी जमीन रखी जा सकेगी, ऐसी वात भी हुई है। किन्तु, जब सवको पूरा भोजन भी नही मिल सकेगा, तव किसीको तीन गुनी जमीन रखने का अधिकार क्यो दिया जायगा ? कोई भी व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति की तुलना मे तीन गुनी जमीन मे खेती नही कर सकता। तव तीन गुनी जमीन रखने का अधिकार उसे कैसे होगा ? अतएव इन सारी वातो मे कोई तत्त्व नही है। हमे मूल विपय पर सोचना होगा। हम चाहते ह कि गाँव की जमीन गाँव की ही हो। सरकार कानून के द्वारा यह कर सकेगी क्या ? सीलिग निश्चित करने से क्या काम होगा ? आज वडे-वडे लुटेरे मौजूद है, उनके स्थान पर छोटे-छोटे लुटेरे आ विराजेगे। इससे केवल लुटेरो का दल वढेगा।" इस सम्वन्ध मे एक अन्य स्थान पर उन्होने कहा है "भूमि-समस्या

के समाधान के लिए सीलिंग की बात उठ रही है। किन्तु, सीलिंग से काम नहीं होगा—फ्लोरिंग की आवश्यकता है। यदि कानून ही बनाना है, तो ऐसा कानून बनाना पड़ेगा कि प्रत्येक किसान कम-से-कम पाँच एकड़ जमीन अवश्य पाये।"

कृषि सर्वोत्तम श्रम और श्रेष्ठ आजीविका

विनोबाजी जब साबरमती-आश्रम में थे, तब वे रसोई बनाने से लेकर भंगी तक के सभी शारीरिक श्रम के कामों में योगदान करते थे। वर्धा सत्याग्रह-आश्रम में सचालक के रूप में उन्होंने आश्रमवासियों को जिन ११ व्रतों का पालन करने के लिए कहा था, उनमें शारीरिक श्रम अन्यतम था। सूत कातने की सभी प्रक्रियाओं में वे विशेषज्ञ हैं। बुनकर का काम, बढ़ई का काम आदि सभी प्रकार के उत्पादक श्रम के काम उन्होंने बहुत दिनों तक किये हैं। पवनार के 'परमधाम' आश्रम में 'कांचन-मुक्ति' की साधना में उन्होंने खेती का काम बहुत अधिक किया है और उसकी सूक्ष्मताओं से अभिज्ञ हुए हैं। इस प्रकार इस श्रमयोगी ने उत्पादकश्रममूलक काम के साथ कृषि-कार्य का तुलनात्मक विवेचन करने के बाद यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि जितने प्रकार के शारीरिक श्रम के काम हैं, उनमें खेती का काम सर्वोत्तम है। खेती का काम क्यों सर्वोत्तम शारीरिक श्रम है, इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं

(१) खेती के काम में स्वच्छ और मुक्त हवा में व्यायाम होता है।

(२) खेती का काम करने से आकाश-सेवन हो जाता है।

(३) खेती से मौलिक उत्पादन होता है। अर्थात् अन्य जिस किसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है, वह खेती में उत्पन्न वस्तु से या उसकी सहायता से तैयार होती है।

(४) खेती का काम सबसे अधिक आनन्ददायक काम है।

(५) खेत की विराट् मूर्ति ईश्वर की सर्वोत्तम मूर्ति है। इसलिए खेती का काम परमेश्वर की उपासना है।

(६) खेती का काम करने से मनुष्य दीर्घजीवी होगा और देश में रोग कम होंगे।

(७) खेती का काम करने से ब्रह्मचर्य-पालन सहज-साध्य हो जाता है। खेती का काम ब्रह्मचर्य के पालन में बहुत अधिक सहायता करता है।

इसीलिए प्राचीन काल से ही ऋषिगण जीविकोपार्जन के कामो में खेती को श्रेष्ठ स्थान देते आये हैं। इस प्रसग मे मनु ने क्या कहा है, यह जानने की इच्छा हो सकती है। अतएव मनुसहिता से तत्सम्बन्धी कथन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

"ऋतामृताभ्या जीवेत् तु मृतेन प्रमृतेन वा।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन॥"

"ऋतवृत्ति ओर अमृतवृत्ति के द्वारा जीवन-निर्वाह किया जा सकता है, अथवा मृतवृत्ति या प्रमृतवृत्ति के द्वारा जीवन-निर्वाह किया जा सकता है, अथवा सत्यानृतवृत्ति के द्वारा भी जीवन-निर्वाह किया जा सकता है, किन्तु जीविका के लिए कभी भी श्ववृत्ति (कुत्ते की वृत्ति) नही अपनानी चाहिए।"

ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत आदि वृत्तियाँ किसे कहते हैं ? उनका अर्थ यह है.

"ऋतमुञ्छशिल ज्ञेयममृत स्यादयाचितम्।
मृत तु याचित भैक्ष प्रमृत कर्पण स्मृतम्॥"

"भूमि पर गिरे हुए धान आदि अनाजो के दानो को चुनकर उसके द्वारा जीवन-निर्वाह करना उञ्छवृत्ति है। धान आदि की वाल तोड़कर जीवन-निर्वाह करना शिलवृत्ति है। इन दोनो वृत्तियो को ऋतवृत्ति कहते है। विना माँगे जो मिल जाता हे, उससे जीवन-धारण करने को अमृतवृत्ति कहते हैं। मागने पर जो (भिक्षा) मिले, उससे जीवन-निर्वाह करना मृतवृत्ति है। खेती को प्रमृतवृत्ति कहते है।"

इसके वाद कहते है :

"सत्यानृत तु वाणिज्य तेन चैवापि जीव्यते।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात् ता परिवर्जयेत्॥"

"वाणिज्य का नाम सत्यानृतवृत्ति है। उसके द्वारा भी जीवन-यापन किया जा सकता है। किन्तु, सेवा या नौकरी, जो श्वानवृत्ति मानी जाती है, उसका पूर्ण रूप से वहिष्कार किया जाना चाहिए।"

इस प्रकार मनुसहिता में जीविकोपार्जन के उपाय, खेती, वाणिज्य और नौकरी—इन तीनो मे खेती को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। किन्तु, आज समाज का दृष्टिकोण ठीक उसके विपरीत है। आज नौकरी सबसे सम्मानजनक जीविका मानी जा रही है और कृषि इन तीनो मे निकृष्ट वृत्ति समझी

जा रही है। यही वर्तमान समाज के भीषण दुःख और दुर्दशा का मूल कारण है।

परशुराम ने हिंसा का आश्रय लेकर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से हीन करने के बाद जब अपनी भूल समझी, तब उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र छोडकर खेती का काम अपनाया। इससे द्रोहरहित वृत्ति के रूप में कृषि का महत्त्व प्रकट होता है।

सभी भूमि पाने के अधिकारी

जिस व्यक्ति के पास जीविकोपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं है, वह यदि खेती करना चाहे और अपने हाथ से खेती करना चाहे, तो उसे जमीन पाने का अधिकार है—यह बात समझना कठिन नहीं है। किन्तु, विनोबाजी ने देश और समाज के समक्ष यह महान् दावा उपस्थित किया है कि जीविका के लिए अन्य कार्य रहे या न रहे, जो व्यक्ति अपने हाथ से खेती करना चाहता है, उसे कुछ-न-कुछ जमीन पाने का नैतिक अधिकार है। प्रारम्भिक दृष्टिपात में यह दावा अनुपयुक्त मालूम पड सकता है, किन्तु इस अधिकार के आधार के सम्बन्ध में विनोबाजी ने जो कहा है, उस पर जरा गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यह बात समझ में आयगी कि उनका यह दावा दृढ आधार पर प्रतिष्ठित है। यह नैतिक अधिकार क्यों रहना चाहिए, इस बारे में विनोबाजी कहते हैं

(१) खेती का काम सर्वोत्तम शारीरिक श्रम और श्रेष्ठ उद्योग है। वह स्वाभाविक और जीवनप्रद व्यायाम है। खेती का काम सर्वोत्तम श्रम और श्रेष्ठ उद्योग है, इस पर पहले के अध्याय में विचार किया जा चुका है। जिन-जिन कारणों से खेती का काम सर्वोत्तम शारीरिक श्रम माना जाता है, उन्हीं कारणों से जो व्यक्ति अपने हाथ से खेती करना चाहेगा, उसके लिए कितनी भी कम क्यों न हो, जमीन की व्यवस्था न करना अनुचित होगा। मनुष्य होने के कारण उसे यह नैतिक अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

(२) भूमि अन्न-उत्पादन का एकमात्र साधन है और वह भौतिक उत्पादन का भी प्रधानतम क्षेत्र है। अतएव जमीन और कृषि की उन्नति के लिए सबका ध्यान रहना और प्रयत्नशील होना आवश्यक है। सबका हाथ भूमि में लगने से ही सबकी बुद्धि का प्रयोग भूमि में होगा।

(३) जीवन-विकास की दृष्टि से कृषि अपरिहार्य है। इसलिए जीविकोपार्जन के लिए जो व्यक्ति जो काम करता है, करे, किन्तु उसे कुछ समय के लिए नित्यप्रति नियमित रूप से खेत मे काम करना चाहिए। विनोबाजी कहते है कि वे प्रतिदिन आठ घटे लगातार बुनाई का काम करते थे। उस समय वे यह तीव्र रूप से अनुभव करते थे कि आठ घटे तक झुककर बैठे रहने के कारण उनकी गर्दन, रीढ और कमर झुक गयी है और अपने को पुन स्वाभाविक अवस्था मे लाने के लिए उन्हें काफी कष्ट उठाना पडता था। इसलिए वे कहते है कि ताँती, सुनार, कुम्हार, दर्जी आदि गृहशिल्पी, सभी अपनी-अपनी आजीविका के लिए काम तो करेगे, किन्तु उन्हे खेत मे भी दो-चार घटे काम करने का अवसर मिलना चाहिए, अन्यथा, उनका काम आनददायक, जीवनप्रद और अधिक उत्पादनशील नही हो पायेगा। जिन लोगो ने जीविकोपार्जन के अन्यान्य साधन अपना रखे है, उनके सम्बन्ध मे भी यही बात है। जिस प्रकार किसान को प्रतिदिन दो-चार घटे खेत में काम करना चाहिए, उसी प्रकार जज साहब को भी प्रतिदिन कुछ समय के लिए नियमित रूप से खेत मे काम करना चाहिए।

इसीलिए विनोबाजी कहते है कि पढाई-लिखाई न जानने से जीवन का विकास नही होता, ऐसा कहा जाता है, किन्तु उसके साथ ही किस देश के कितने आदमी खेती का काम करते है, यह देखना भी आवश्यक है।

जनसंख्या-वृद्धि और खाद्योत्पादन

भारत की जनसख्या बडी तेजी से बढ रही है। इसके कारण खाद्य-समस्या का स्थायी समाधान सम्भव नही होगा, इस आशका से राष्ट्रीय आयोजना-आयोग और अनेक विचारक सतति-नियमन (family planning) का परामर्श देते है। इस बारे मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है। वर्तमान जन-गणना के अनुसार भारत मे हजार व्यक्तियो (पुरुष और स्त्री) पर एक वर्ष में ४० बच्चे पैदा होते है। जन्म की यह सख्या ससार में सबसे अधिक है। इस देश में मृत्यु-सख्या भी सभी देशो से अधिक है अर्थात् प्रत्येक वर्ष हजार व्यक्तियो मे से २७ की मृत्यु हो जाती है। अतएव इस हिसाब से भारत में एक वर्ष मे प्रतिहजार व्यक्तियो पर जनसख्या में १३ की वद्धि

होती है। ब्रिटेन में जन्म-संख्या वार्षिक १६ प्रतिहजार और मृत्यु-संख्या वार्षिक १२ ५ प्रतिहजार है। अर्थात् एक वर्ष मे एक हजार व्यक्तियों पर वहा जनसंख्या मे ३ ५ की वृद्धि होती है। अमेरिका मे जन्म-संख्या वार्षिक प्रतिहजार २४ ५ और मृत्यु-संख्या ९ २ है, अर्थात् वहाँ एक वर्ष में एक हजार व्यक्तियों पर जन्म-संख्या में १५ ३ की वृद्धि होती है। भारत में इतना अधिक जन्म और मृत्यु होने का कारण क्या है? साधारणत देखा जाता है कि जो अचल, जो देश या जो वर्ग जितना अधिक गरीब होता है, उसकी जन्म-संख्या भी उतनी ही अधिक होती है। गरीबी के कारण अपुष्टिकारी भोजन का अभाव ही अत्यधिक जन्म का कारण माना जाता है। साधारण तौर पर यह बात सच मालूम पड़ती है। भारत में जन्म की गति अधिक होने के अन्य कारण होते हुए भी यह कारण सर्वप्रमुख है, इसमे सन्देह नही है। भारत ससार में सर्वाधिक गरीब देश है। इसीलिए भारत की जन्म-गति सारे ससार मे सबसे अधिक है। यह तो जानी हुई बात है कि गरीबी के कारण मृत्यु अधिक होती है। भारत में जन्म की गति में अत्यधिक वृद्धि हो रही है और होगी, इस बात को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय आयोजना तैयार करना उचित है। ऐसा कहना ठीक नही है कि जन्मसंख्या में वृद्धि होने के कारण बेकारी दूर कर सकना सम्भव नही हो रहा है। कारण, कृत्रिम उपायो से सतति-नियमन की भारी नैतिक बुराइयो को यदि न भी मानें, तो भी विचार करने से यह बात समझ में आती है कि वर्तमान स्थिति में सतति-नियमन का उपदेश भी विशेष कुछ सुफल नहीं देगा। जिस गरीब-वर्ग के लिए सतति-नियमन की अधिक आवश्यकता अनुभव की जाती है, उनके कान मे सतति-नियमन की बात पहुँचेगी ही नहीं और पहुँचने पर भी उनका वर्तमान शिक्षा-दीक्षा और सस्कारो के कारण पालन नही होगा। दूसरी ओर, जिनके लिए सतति-नियमन की आवश्यकता नही है, वे इस आदोलन के फल-स्वरूप सतति-नियमन के लिए कृत्रिम उपायो का आश्रय लेकर गम्भीर नैतिक अवनति को प्राप्त होंगे। सयम का पालन करके जिन्होंने सुफल प्राप्त किया है, ऐसे विवाहित स्त्री-पुरुष यदि गरीबो के बीच जाकर सयम का अभ्यास करने के लिए लोगो को उपदेश दे, तो अच्छा परिणाम निकलेगा। एकमात्र सयत जीवन देखकर दूसरे लोग दीक्षा ग्रहण कर सकते हैं। जन्म-संख्या मे ह्रास लाने का सबसे प्रभावकारी उपाय यह है कि अविलम्ब गरीबी को दूर करने की व्यवस्था

(३) जीवन-विकास की दृष्टि से कृषि अपरिहार्य है। इसलिए जीविकोपार्जन के लिए जो व्यक्ति जो काम करता है, करे, किन्तु उसे कुछ समय के लिए नित्यप्रति नियमित रूप से खेत मे काम करना चाहिए। विनोबाजी कहते है कि वे प्रतिदिन आठ घटे लगातार बुनाई का काम करते थे। उस समय वे यह तीव्र रूप से अनुभव करते थे कि आठ घटे तक झुककर बैठे रहने के कारण उनकी गर्दन, रीढ और कमर झुक गयी है और अपने को पुन स्वाभाविक अवस्था मे लाने के लिए उन्हें काफी कष्ट उठाना पडता था। इसलिए वे कहते है कि ताँती, सुनार, कुम्हार, दर्जी आदि गृहशिल्पी, सभी अपनी-अपनी आजीविका के लिए काम तो करेगे, किन्तु उन्हे खेत मे भी दो-चार घटे काम करने का अवसर मिलना चाहिए, अन्यथा, उनका काम आनद-दायक, जीवनप्रद और अधिक उत्पादनशील नही हो पायेगा। जिन लोगो ने जीविकोपार्जन के अन्यान्य साधन अपना रखे है, उनके सम्बन्ध मे भी यही बात है। जिस प्रकार किसान को प्रतिदिन दो-चार घटे खेत में काम करना चाहिए, उसी प्रकार जज साहब को भी प्रतिदिन कुछ समय के लिए नियमित रूप से खेत मे काम करना चाहिए।

इसीलिए विनोबाजी कहते है कि पढाई-लिखाई न जानने से जीवन का विकास नही होता, ऐसा कहा जाता है, किन्तु उसके साथ ही किस देश के कितने आदमी खेती का काम करते है, यह देखना भी आवश्यक है।

जनसंख्या-वृद्धि और खाद्योत्पादन

भारत की जनसख्या बडी तेजी से बढ रही है। इसके कारण खाद्य-समस्या का स्थायी समाधान सम्भव नही होगा, इस आशका से राष्ट्रीय आयोजना-आयोग और अनेक विचारक सतति-नियमन (family planning) का परामर्श देते है। इस बारे मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है। वर्तमान जन-गणना के अनुसार भारत मे हजार व्यक्तियो (पुरुष और स्त्री) पर एक वर्ष में ४० बच्चे पैदा होते है। जन्म की यह सख्या ससार मे सबसे अधिक है। इस देश मे मृत्यु-सख्या भी सभी देशो से अधिक है अर्थात् प्रत्येक वर्ष हजार व्यक्तियो में से २७ की मृत्यु हो जाती है। अतएव इस हिसाब से भारत में एक वर्ष में प्रतिहजार व्यक्तियो पर जनसख्या में १३ की वद्धि

होती है। ब्रिटेन में जन्म-सख्या वार्षिक १६ प्रतिहजार और मृत्यु-सख्या वार्षिक १२ ५ प्रतिहजार है। अर्थात् एक वर्ष में एक हजार व्यक्तियो पर वहाँ जनसख्या मे ३ ५ की वृद्धि होती है। अमेरिका मे जन्म-सख्या वार्षिक प्रतिहजार २४ ५ और मृत्यु-सख्या ९ २ है, अर्थात् वहाँ एक वर्ष में एक हजार व्यक्तियो पर जन्म-सख्या मे १५ ३ की वृद्धि होती है। भारत मे इतना अधिक जन्म और मृत्यु होने का कारण क्या है? साधारणत देखा जाता है कि जो अचल, जो देश या जो वर्ग जितना अधिक गरीब होता है, उसकी जन्म-सख्या भी उतनी ही अधिक होती है। गरीबी के कारण अपुष्टिकारी भोजन का अभाव ही अत्यधिक जन्म का कारण माना जाता है। साधारण तौर पर यह बात सच मालूम पडती है। भारत में जन्म की गति अधिक होने के अन्य कारण होते हुए भी यह कारण सर्वप्रमुख है, इसमे सन्देह नही है। भारत ससार मे सर्वाधिक गरीब देश है। इसीलिए भारत की जन्म-गति सारे ससार मे सबसे अधिक है। यह तो जानी हुई बात है कि गरीबी के कारण मृत्यु अधिक होती है। भारत मे जन्म की गति में अत्यधिक वृद्धि हो रही है और होगी, इस बात को ध्यान मे रखकर राष्ट्रीय आयोजना तैयार करना उचित है। ऐसा कहना ठीक नहीं हे कि जन्मसख्या में वृद्धि होने के कारण बेकारी दूर कर सकना सम्भव नही हो रहा है। कारण, कृत्रिम उपायो से सतति-नियमन की भारी नैतिक बुराइयो को यदि न भी मानें, तो भी विचार करने से यह बात समझ में आती है कि वर्तमान स्थिति में सतति-नियमन का उपदेश भी विशेष कुछ सुफल नही देगा। जिस गरीब-वर्ग के लिए सतति-नियमन की अधिक आवश्यकता अनुभव की जाती है, उसके कान में सतति-नियमन की बात पहुँचेगी ही नहीं और पहुँचने पर भी उसका वर्तमान शिक्षा-दीक्षा और सस्कारो के कारण पालन नही होगा। दूसरी ओर, जिनके लिए सतति-नियमन की आवश्यकता नही है, वे इस आदोलन के फल-स्वरूप सतति-नियमन के लिए कृत्रिम उपायो का आश्रय लेकर गम्भीर नैतिक अवनति को प्राप्त होगे। सयम का पालन करके जिन्होने सुफल प्राप्त किया है, ऐसे विवाहित स्त्री-पुरुष यदि गरीबो के बीच जाकर सयम का अभ्यास करने के लिए लोगो को उपदेश दे, तो अच्छा परिणाम निकलेगा। एकमात्र सयत जीवन देखकर दूसरे लोग दीक्षा ग्रहण कर सकते हैं। जन्म-सख्या मे ह्रास लाने का सबसे प्रभावकारी उपाय यह है कि अविलम्ब गरीबी को दूर करने की व्यवस्था

की जाय। भूमि के उचित वितरण और ग्राम-उद्योगो की स्थापना के द्वारा ही यह सम्भव हे। वर्तमान स्थिति मे केवल इन्ही दो उपायो का एक साथ अव-लम्वन करने से भारत की गरीवी मिटेगी। अतएव इस आन्दोलन की सफलताके लिए और भी निष्ठा तथा श्रद्धा के साथ प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

सचमुच क्या जनसख्या मे वृद्धि के कारण पर्याप्त खाद्यान्न का अभाव रहने की आगका है ? ऐसी सम्भावना मालूम नही होती। लोग कहते हे कि जिन्होने जन्म दिया है, वही खिलाने का भी प्रवन्ध करेगे। इमे अव-सस्कारगत धारणा कहकर टाल देने मे काम नही चलेगा। वस्तुत यह सत्य हे, ऐसा देखा गया है। भारत की जनसख्या जव वढने लगी, तव विज्ञान का विकास होने के कारण उमका प्रयोग करके और देग मे नील की खेती वन्द करके अधिक खाद्यान्न का उत्पादन किया जाने लगा। कोन जाने, जव जनसख्या का दवाव अधिक वढ जायगा, तव जूट पैदा करने की कोई आवश्यकता रहेगी या नही। उस ममय भारत की करोडो एकड भूमि मे खाद्यान्नो का उत्पादन होने लगेगा। अभी ही किमी-किसी देग मे कागज और कपडे की थैलियाँ तैयार की जा रही है। इसके अतिरिक्त कृत्रिम (Synthetic) थैलियाँ भी तैयार की जा रही है और उन स्थानो की थैलियो की आवश्यकता उनसे पूरी की जा रही है। यह वात क्या उपर्युक्त सम्भावना की ही सूचना नही देती ? दक्षिण-पूर्व एगिया के विशाल क्षेत्र मे रवड की खेती के सम्वन्ध मे भी ऐसा ही सोचा जा सकता हे। एक समय आ सकता है, जव रवड की खेती की कोई आवश्यकता नही रहेगी। अतएव खाद्यान्नो के अभाव की आशका से सतति-नियमन के लिए उद्विग्न होने का विशेष कोई कारण नही है।

विनोवाजी जनसख्या मे वृद्धि के प्रतिकार के लिए सतति-नियमन के प्रस्ताव पर विचलित होकर कहते है "आप लोग family planning या सतति-नियमन का प्रस्ताव रखते है अर्थात् 'वच्चे पैदा करना कम करो'— ऐसा कहते है। किन्तु, यह वात मुझमे कहने का आपको क्या अधिकार है ? आप हमारे नौकर है या मालिक ? जापान और इग्लैण्ड मे जमीन पर आवादी का जितना भार है, उससे आवादी का कही कम भार भारत की भूमि पर है। जनसख्या मे वृद्धि क्यो होती हे, इम पर क्या आपने कभी विचार किया है ? सिंह के वहुत कम वच्चे होते है और वकरियो के अधिक।

"इसका वास्तविक प्रतिकार सतति-नियमन नही है। इसके प्रतिकार के लिए जीवन का ठीक ढग से परिचालन ही उत्कृष्ट उपाय है।"

असह्नीय स्थिति

बिहार की भूमि-समस्या का समाधान होने पर भी अन्यान्य प्रदेशो का काम तो बाकी ही रह जायगा। तब उसके लिए क्या किया जायगा ?—इस प्रश्न के उत्तर मे विनोबाजी ने कहा है "बिहार की समस्या का समाधान होने पर भी अन्य राज्यो के लोग चुप बैठे रहेगे—ऐसा सोचना गलत है। हो सकता है कि वहाँ की सरकारे कानून बनाये, या कार्यकर्ता काम मे लग जायँ और नही तो लोग बल-प्रयोग करे और रक्त-रजित राष्ट्रीय क्राति हो जाय। यदि ऐसी क्राति भी होगी, तो मुझे खुशी ही होगी। किन्तु, वर्तमान स्थिति असह्नीय है। इसलिए यदि वहाँ क्राति होगी, तो उसे रोकनेवाला मै कौन ? आज की जो परिस्थिति है, उसे मै किसी भी अवस्था मे सहन करने को तैयार नही हूँ।" किन्तु, विनोबाजी को विश्वास है कि बिहार मे भूमि-समस्या का समाधान होने पर अन्य किसी भी राज्य मे वैसी हिसात्मक क्राति होने का अवसर नही मिलेगा। इसीलिए उन्होने इस प्रसग मे कहा है "आज ससार की अवस्था ऐसी है कि किसी एक कोने मे घटनेवाली बात सारे ससार मे प्रचारित हो जाती है। जभी कश्मीर के राजा ने राज्य छोड दिया, तभी अन्य सब राजाओ की गद्दी छूटने लगी। जब आन्ध्र राज्य का निर्माण होगा, तब उसका अन्य राज्यो पर भी प्रभाव पडेगा। प्राचीन काल मे ऐसी स्थिति नही थी। अब तो एक स्थान का प्रभाव दूसरे स्थान पर पडे बिना नही रहता। इसीलिए यदि हमारा यहाँ का सैन्यदल सफलता प्राप्त करेगा, तो यही बाहर भी जायगा। हमारी यह सेना इस प्रकार तैयार होगी कि सफलता प्राप्त करके ही रहेगी।" इसलिए वे अन्यान्य राज्यो के कार्यकर्ताओ को यह उपदेश देते है कि वे अपने-अपने राज्य मे अनुकूल वातावरण का निर्माण करे। इसके अतिरिक्त वे अपने राज्य मे ऐसा कोई विशिष्ट छोटा स्थान चुन ले, जहाँ काम आगे बढने पर उसका प्रभाव सारे राज्य पर पडे। ऐसे स्थान को वे स्ट्रैटेजिक प्वाइट (strategic point) कहते है। ऐसे एक स्थान मे सबको मिलकर आत्यन्तिक और केन्द्रीभूत रूप से काम करके सफलता-प्राप्ति के लिए प्राणपण से चेष्टा करनी होगी। उसकी

प्रतिक्रिया सारे राज्य में क्रमश प्रकट होगी। इस दृष्टि से बिहार का गया जिला चुन लिया गया है और वहाँ केन्द्रीभूत और आत्यन्तिक रूप से काम किया जाता है, जिसका फल सारे राज्य मे आशातीत रूप से परिलक्षित हो रहा है।

सनातन धर्म

भूमि-समस्या का समाधान हो जाने से ही हमारा काम समाप्त नही हो जायगा, अर्थात् हम जो क्राति चाहते हैं, वह केवल भूमि-क्राति नही है। वह विचार-क्राति के आधार पर प्रतिष्ठित होनी चाहिए। विनोबाजी एक धर्म-विचार का प्रवर्तन करना चाहते हैं। वह धर्म-विचार सनातन है, किन्तु आज-कल के हिन्दू, इस्लाम आदि धर्मों के अर्थ मे 'धर्म' नही है। इस धर्म-विचार-प्रवर्तन को उन्होने 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' नाम दिया है। यह क्या है यह हम पहले देख चुके है। तब इस धर्म-विचार को किस अर्थ मे 'सनातन' कहा गया है, इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेने की आवश्यकता है। ऐसा होने पर ही यह स्पष्ट होगा कि इस धर्म-विचार का वर्तमान समाज मे क्या स्थान है ? इस सनातन धर्म के अर्थ की व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा है 'सनातन' शब्द का प्रयोग बहुत होता है, किन्तु इसका अर्थ सब लोग नही जानते। धर्म दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह, जिसका परिवर्तन नही होता, जैसे सत्य-पालन। प्राचीनकाल मे भी यह धर्म-स्वरूप था और आज भी है। भारत में भी यह धर्म-स्वरूप है और अन्य देशो में भी। इसलिए इस पर देश-काल के भेद का प्रभाव नही पडता। अतएव यह नित्य और सनातन धर्म है। इसी प्रकार प्रेम, वात्सल्य आदि सनातन धर्म हैं। इन सनातन धर्मो के पालन के लिए प्राचीनकाल मे जो आचार-निष्ठा थी, वह देश, काल और पात्र के अनुसार बराबर बदलती आ रही है। सबके लिए भक्ति सनातन धर्म है और समान है, यद्यपि उपासना की पद्धति अलग-अलग हो गयी है। अतएव जो सनातन धर्म धर्मो का सार और आत्मास्वरूप है, उसीको ग्रहण किये रहना और उसका नित्य ध्यान करना हमारा कर्तव्य है। धर्म के परिवर्तनशील अगो की ओर मैं ध्यान नही दे रहा हूं, किन्तु धर्म का जो सार है, वह मैं लोगो को दे रहा हूँ। वह सनातन है। वह परिवर्तनशील नही है। वह तीनो काल से वर्तमान है। सर्वत्र समता और एकता की स्थापना होनी चाहिए, फिर भी मनुष्य के

बाह्य जीवन मे वैषम्य और विभिन्नता रहेगी। किन्तु, समता स्थापित करना हमारा ध्येय रहेगा। जब बच्चे छोटे रहते है, तब उन्हें अनुशासन मे रखना माता-पिता का कर्तव्य होता है, किन्तु जब वे युवा हो जाते है, तब उन्हे स्वाधीनता देना और उपदेश देना माता-पिता का कर्तव्य हो जाता है। जब माता-पिता वृद्ध हो जाते है, तब बच्चो के ही अनुशासन मे रहना उनका कर्तव्य हो जाता है। इसी प्रकार धर्म बदलते रहते हैं। किन्तु, बच्चो को प्यार करना और उनकी सेवा करना माता-पिता का तीनो अवस्थाओ मे समान धर्म होता है। अतएव बच्चो को प्यार करना एक सनातन धर्म है। इसी प्रकार समाज की अवस्था मे परिवर्तन होने से उसके धर्मो का भी परिवर्तन हो जाता है। जब समाज बाल्यावस्था मे था, तब राजा की आवश्यकता थी। उस समय प्रजागण को अनुशासन मे रखना राजाओ का धर्म था और राजा की आज्ञा का पालन करना प्रजा का। किन्तु, अब समाज बाल्यावस्था मे नही है। इसलिए अब राजाओ का काम समाप्त हो गया है और लोक-प्रतिनिधियो के हाथ मे राज्य-सचालन की शक्ति आ गयी है। अब 'राजा कालस्य कारणम्' का स्थान 'प्रजा कालस्य कारणम्' ने ले लिया है। प्राचीन काल मे सम्राटो और विद्वानो को भी जितना ज्ञान प्राप्त नही था, आज विज्ञान की उन्नति के कारण इतना ज्ञान साधारण लोगो को प्राप्त हो गया है। अकबर बादशाह यह जानते ही नही थे कि अमेरिका और मास्को कहाँ है? किन्तु, आज तो स्कूल के बच्चे भी ये बाते जानते है। किन्तु, सम्पूर्ण समाज को एकरूप बनाना और समाज में अधिक समानता लाना—ये मूलतत्त्व दोनो ही कालो मे समान रूप से रहे है। प्राचीन काल में समानता के लिए भूमि-वितरण की आवश्यकता नही थी, क्योकि उस समय बहुत-सी जमीन परती रह जाती थी—जन-संख्या कम थी। किन्तु, आज भूमि-वितरण की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी है।"

युगधर्म

भूदान-यज्ञ युगधर्म है। युगधर्म का अर्थ, और भूदान-यज्ञ को क्यो युगधर्म मानना उचित है, यह अच्छी तरह समझना आवश्यक है। यह समझ पाने से लोग भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध मे विशेष रूप से प्रेरणा प्राप्त करेगे। देश मे किसी समय समाज की तत्कालीन स्थिति के अनुसार ऐसे किसी काम की

अनिवार्य आवश्यकता आ पडती है, जिसके पूरा होने से देश की अन्य बहुतेरी समस्याएँ स्वयमेव हल हो जाती हैं। देश के सर्वतोमुखी कल्याण और प्रगति का पथ सुगम हो जाता है। और, इस कार्य मे असफलता मिलने से देश के कल्याण की सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो जाती हैं तथा अन्यान्य समस्याओ का समाधान असम्भव हो जाता है। 'एकै साधे सब सधे'—ऐसे महान् कर्तव्य-कार्य को युगधर्म कहा जाता है। इससे पहले जो सब विचार किया गया है, उससे यह बात स्पष्ट रूप से समझ मे आ जाती हे कि अविलम्ब शातिपूर्ण मार्ग से भारत की भूमि-समस्या का समाधान न होने से देश मे 'ज्वालामुखी' फट पडेगा और देश की अन्य किसी भी बडी समस्या का उचित समाधान कर सकना सम्भव नही होगा। देश मे सरकारी या गैर-सरकारी तौर पर जो सब कल्याणमूलक प्रयत्न हो रहे है, वे बेकार हो जायँगे। आर्थिक साम्य-स्थापना महात्मा गाधी के व्यवस्थित रचनात्मक कार्यो मे अन्यतम थी। किन्तु, समाज के विभिन्न क्षेत्रो की अवस्था इतनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है कि इसे अब मात्र अन्यतम रचनात्मक कार्य मानने से काम नही चल सकेगा, बल्कि सर्वश्रेष्ठ मानकर अपनी सा ी शक्ति इसमे लगानी पडेगी और सर्वप्रथम तथा अविलम्ब इसे सार्थक कर दिखाना होगा। ऐसा न होने से अभी जो रचनात्मक प्रयत्न हो रहे हैं, वे सब नष्ट हो जायँगे, विकारग्रस्त हो जायँगे और दूसरी किसी भी बडी समस्या का समाधान सम्भव नही होगा। यदि शातिपूर्वक भूमि-समस्या का समाधान हो जाय और सामाजिक साम्य-प्रतिष्ठा का आधार सुदृढ हो जाय, तो सभी रचनात्मक प्रयत्नो का मार्ग सफलतापूर्वक खुल जायगा। इसीलिए 'भूदान-यज्ञ' इस युग का युगधर्म है। विनोवाजी ने कहा है "आप सब लोगो से मैं यह बात कहना चाहता हूँ कि 'भूदान-यज्ञ का काम एक अच्छा काम है'—केवल यही सोचकर आप यह काम न क`, बल्कि यह बात सोचे कि यह युगधर्म है—यह एक ऐसा कार्य है, जिसके सफल होने से अन्य सब काम सफल होगे और जिसके विफल होने से सब काम विफल हो`। ऐसा भाव मन मे अनन्य रूप से उदित होने पर ही प्रत्येक व्यक्ति की सर्वोत्तम शक्ति को इसमे लगाने का प्रश्न उठता हे।"

स्वधर्म एवं नित्य तथा नैमित्तिक धर्म

भूदान-यज्ञ के सकल्प को सार्थक करने के लिए गम्भीर, आवश्यक और एकाग्र भाव से इस काम मे आत्मनियोग करना अनिवार्य है। विनोबाजी

चाहते हैं कि भूदान-यज्ञ के कार्यकर्ता इस काम को 'स्वधर्म' मानकर इसमे अनन्य भाव से आत्मनियोग करे। जो लोग भूदान-यज्ञ मे भूमि देगे, वे भूदान-यज्ञ के सेवक और कार्यकर्ता माने जायँगे। गरीब किसान दाता तो भूदान-यज्ञ के सैनिक ही माने जाते है। अतएव 'स्वधर्म' क्या है, यह समझना सबके लिए आवश्यक है, जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अतर्दृष्टि से यह बात समझ ले कि यह उसका स्वधर्म है या नही ?* इस प्रसग मे 'नित्यधर्म' और 'नैमित्तिक धर्म' का भेद समझना आवश्यक है। 'स्वधर्म', 'नित्यधर्म' और 'नैमित्तिक धर्म' की व्याख्या करते हुए कार्यकर्ताओ से विनोबाजी ने कहा है "कभी-कभी हमे घर-गृहस्थी की चिन्ता करनी पडती है और इसीलिए हम लोग विशेष समय नही बचा पाते है। वही हमारी सामर्थ्य की सीमा है, यह मानकर हमे समाधान ढूंढना पडेगा। घर के काम के अतिरिक्त कुछ सार्वजनिक काम भी हमे करने पडते है। उनके लिए यदि हम कोई नया काम न कर पाये, तब पुराने काम से नये काम की तुलना कर लेना हमारा कर्तव्य है। किन्तु, यदि नया काम पुराने काम से श्रेष्ठ हो, तो पुराना काम छोड देना होगा—ऐसी बात नही है। धर्म के क्षेत्र मे, जो धर्मश्रेष्ठ होगा, वही ग्रहण करना होगा और जो छोटा होगा, उसका परित्याग करना होगा—ऐसी बात भी नही है। परन्तु, यह सोच लेना पडेगा कि जो काम हमारे हाथ मे है, वह बडा हो या छोटा, हमारे लिए स्वधर्म है अथवा नही। यदि हम इस सिद्धान्त को मान ले कि हम जो काम कर रहे है, वह हमारा 'स्वधर्म' है, तो हमे वह काम करते जाना चाहिए। जिसका 'स्वधर्म' भिन्न है, उसे हमारे काम मे योगदान नही करना चाहिए। उसका दुखित होना ठीक नही है। वे लोग, जो हमारे काम के प्रति सहानुभूति रखते है, उनके लिए यही यथेष्ट है, ऐसा मान लेना ठीक है। किन्तु, आत्म-निरीक्षण द्वारा यदि यह जान पडे कि हमारी बुद्धि इस नये काम को ही बुनियादी काम मानती है, तो हमे अपने ऊपर लदा अन्य बोझ विवेचनापूर्वक हटा देना होगा और उस नये काम मे लग जाना होगा। उस मामले मे यह सोचना ठीक नही होगा कि हमारे हाथ मे जो काम था, उसका क्या होगा ? जिस समय

---

* विनोबाजी के 'गीता-प्रवचन' का तीसरा, छठा और सातवाँ अध्याय इस सम्बन्ध में देखा जा सकता है।

मन ने यह निश्चय हो जाता है कि यही काम बुनियादी काम है, उसी समय वह काम 'युगधर्म' हो जाता है। 'युगधर्म' नैमित्तिक होता है। वह ४०-५० वर्षो तक नही चलता, किन्तु, जिस समय के लिए वह होता है, उस समय 'नित्य-धर्म' उसके सामने निष्प्रभ हो जाता है। उस काम का मूल्य सबसे अधिक हो जाता है। हम लोग प्रतिदिन प्रार्थना करते है। यह नित्यधर्म है। किन्तु, उसी समय यदि कही आग लग जाय, तो हमे अपनी प्रार्थना बीच मे ही रोककर उसे बुझाने के लिए जाना पडता है, क्योकि नैमित्तिक धर्म अधिक शक्तिशाली होता है। जिन नैमित्तिक धर्मो के सम्बन्ध मे हम लोग नि सशय हो गये है, उनके लिए यदि हमे 'नित्यधर्म' का त्याग करना पडे तो वैसा करना पडेगा।" न्होने एक अन्य स्थान पर इस सम्बन्ध मे कहा है "रूस और चीन मे जो काम हिंसा से पूरा हुआ है, वही यहाँ मै अहिसात्मक ढग से पूरा कर रहा हूँ। सिर्फ यही नही, इस काम के द्वारा गाधी-विचार प्रसारित हो रहे है। यह अहिंसा के मार्ग से समाज का रूप बदलने का महान् काम है। इसकी तरह आज और कोई काम नही है। अकाल-पीडितो की सेवा आदि अन्य जो कार्य है, वे नित्य के कार्य है, किन्तु यह कार्य युगधर्म का महान् नैमित्तिक कार्य है। मान लीजिये, मै सन्ध्योपासना कर रहा हूँ, ऐसे समय गाँव मे कही आग लग जाती है। मै प्रार्थना बन्द करके शीघ्र ही वहाँ के लिए रवाना हो जाऊँगा। भजन का महत्त्व कम नही है, किन्तु वह प्रतिदिन का काम है और आग बुझाने का वह काम नैमित्तिक है, क्योकि उसका विशेष परिस्थिति से उद्‌भव हुआ है। इसी प्रकार अन्य बहुत-से बडे-बडे काम है, किन्तु तुलना करने पर इस काम का महत्त्व सबसे अधिक प्रकट होता है। यदि यह समझकर सब लोग इस काम में लग जायँ, तो सारे ससार मे हम क्राति उत्पन्न कर सकेगे। मै गणितज्ञ हूँ। प्रत्येक शब्द तौलकर कह रहा हूँ।"

परमधर्म

भूदान-यज्ञ के काम मे जीवनदान के लिए आह्वान किया जा रहा है। कार्यकर्ताओ से सारा समय और शक्ति इस काम मे लगाने के लिए कहा जा रहा है। ऐसे कुछ कार्यकर्ता है, जो कई वर्षो से रचनात्मक काम करते आ रहे है। वे कहते है कि 'उन्होने जिन सब कामो मे आत्मनियोग किया है, वे सब

पुण्य-कार्य रहे हैं। जो काम वे लोग अनेक वर्षों से करते आ रहे हैं, उसे करते जाना उनका धर्म है। ऐसा कहा जाता है कि भूदान का काम सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु वे लोग, जो सेवा-कार्य करते आ रहे हैं, वह 'गीता' की शिक्षा के अनुसार उनके लिए 'स्वधर्म' है। स्वधर्म गौण कार्य होने पर भी परित्याज्य नहीं है। इसके अतिरिक्त परधर्म श्रेष्ठ होने पर भी उसे ग्रहण करना उचित नहीं है। इसलिए श्रेष्ठ और लघु का विचार यहाँ नहीं उठ सकता। जो काम वे लोग करते आ रहे हैं और जो करना उनका कर्तव्य है, वह उन्हें करना चाहिए।'— जो लोग ऐसी बातें कहते हैं, उन्हें समझाने के लिए विनोबाजी कहते हैं "धर्म-विचार की भी एक सीमा है। श्रीकृष्ण ने सारा जीवन अस्त्र लेकर युद्ध किया था, किन्तु एक समय आया, जब उन्होंने घोषणा की कि वे अब अस्त्र ग्रहण नहीं करेंगे—निरस्त्र रहेंगे। इस प्रकार जो सतत अस्त्रों का व्यवहार करते थे, उन्होंने भविष्य में फिर कभी अस्त्रों का व्यवहार न करने की घोषणा की। किन्तु, इसमें उन्होंने धर्मयोग का त्याग नहीं किया, बल्कि उन्होंने इस काम के द्वारा धर्म को ऊपर उठाया था। जिसे हम लोग पुण्यकार्य या धर्मकार्य कहते हैं, वह कुछ दूर तक आत्म-विकास में सहायक होता है, परन्तु उसके बाद विकास के मार्ग में बाधक बन जाता है। इसीलिए शास्त्र में कहा गया है 'धर्मोऽपि हि मुमुक्षूणां पापमुच्यते'। मुमुक्षु के लिए धर्म भी पाप में परिणत हो जाता है।"

कर्तव्य की भावना भी कई स्थलों पर विघ्नदायक बन जाती है। इसलिए विनोबाजी कहते हैं "तुलसीदास ने रामायण में लिखा है कि लक्ष्मण के समक्ष ऐसी एक समस्या आयी थी। राम ने वन जाते समय लक्ष्मण से कहा था कि माता-पिता की सेवा करना उनका कर्तव्य है। लक्ष्मण यदि रामचद्र की इस बात को मान लेते और वाल्मीकि इस प्रकार लिखते कि लक्ष्मण माँ-बाप की सेवा करने के लिए घर पर रह गये थे, तो ऐसा कौन है, जो उसमें दोष बताता? हम कहते कि लक्ष्मण ने रामचद्र के साथ वन-गमन का लोभ संवरण कर लिया और वे माता-पिता की सेवा में निमग्न हो गये। यहां 'स्वधर्म' का प्रश्न आ जाता है। लक्ष्मण के समक्ष भी 'स्वधर्म' का प्रश्न था, किन्तु उन्होंने रामचद्र से कहा 'आप जो कहते हैं, वह ठीक है, किन्तु इतनी बड़ी-बड़ी बातें मैं नहीं समझता। मैं तो बालक हूँ और आपके स्नेह में पला हूं। इसलिए आप जो कह रहे हैं, उसमें मेरे 'स्वधर्म' का पालन नहीं होगा।' यह कहकर वे रामचन्द्र के साथ

वन चले गये। छोटे-छोटे धर्म होते तो है, किन्तु परमधर्म एक ही होता है। जहाँ दोनो ही साधारण और छोटे धर्म हो, वहा दोनो के बीच तुलना हो सकती हे, किन्तु जहाँ एक छोटा धर्म हो ओर एक परमधर्म, वहाँ तुलना नही हो सकती। जहाँ दोनो ही साधारण धर्म होते है, वहाँ 'स्वधर्म' का प्रश्न आता हे ओर ऐसी स्थिति मे 'स्वधर्म' के गोण एव 'परधर्म' के श्रेष्ठ होने पर भी 'स्वधर्म' ही स्वीकार किया जाता है। किन्तु, जहाँ परमधर्म और स्वधर्म, दोनो ही उपस्थित होते हैं, वहाँ ऐसा निर्णय नही किया जाता। वहाँ परमधर्म स्वीकार करना पडता है।"

परमधर्म को और भी स्पष्ट करने के लिए विनोबाजी कहते है . "परमधर्म के आचरण के लिए अपना स्वधर्म परमधर्म के साँचे मे ालना होगा। यदि उसे उस साँचे मे ढालना सम्भव न हो, तो स्वधर्म का त्याग करना होगा। परमधर्म का सामना होने पर 'स्वधर्म' त्यागना ही पडता है। उस समय भी स्वधर्म से लगे रहना ठीक नही है। अतएव आचरण के लिए स्वधर्म को परमधर्म के साँचे मे ढाल लीजिये या स्वधर्म का त्याग कीजिये—यही धर्म-रहस्य है।"

भारत मे कोई व्यक्ति किसी भी सामुदायिक क्षेत्र मे जिस किसी भी सेवा-कार्य मे क्यो न लगा हो, यदि वह निष्पक्ष भाव से विचार करे, तो उसे मालूम पडेगा कि भूदान-यज्ञ 'परमधर्म' है। अतएव उसे अपने काम को भूदान-यज्ञ के साँचे मे ालना चाहिए अथवा उसका त्याग कर भूदान-यज्ञ के काम मे पूर्णत लग जाना चाहिए—तभी वह अपने परमधर्म का पालन कर सकेगा।

पूर्वजन्म का गरीबी से सम्बन्ध

कोई-कोई व्यक्ति कहते है कि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मो के फल से धनी या गरीब होता है। अतएव गरीबो की गरीबी दूर करने की चेष्टा करना तथा भूमिहीनो को भूमि दिलाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, क्योकि पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के फल को मिटा सकना सम्भव नही है। उन्हे उनके भाग्य पर छोड देना चाहिए—विकृत मज्ञान के कारण ही ऐसी वाते कही जाती है। धनी लोग अपने धन की रक्षा के लिए जिन सब मिथ्या तर्को ओर दु कौशल का सहारा लेते है, उनमे यह अन्यतम है। समाज की आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण ही गरीवी पैदा हुई हे ओर यह क्रमश वढती जा रही है, इस वारे मे पहले विचार

किया जा चुका है। अतएव, पूर्वजन्म के किसी कुकर्म के फलस्वरूप मनुष्य गरीब होता है—ऐसा सोचना अनुचित और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध बात है। शास्त्र कहता है कि जो पाप-कर्म करता है, उसका असुर-योनि मे जन्म होता है। असुर-योनि का अर्थ है—मनुष्येतर प्राणियो की योनि, अर्थात् बाघ, साँप आदि योनियाँ। "तानहं द्विषत क्रूरान् ससारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥" अर्थात् नीच, द्वेषी, क्रूर अमगलकारी, नराधमो को इस ससार मे अत्यन्त आसुरी योनियो मे बार-बार जन्म लेना पडता है। शास्त्र की बात छोड देने पर भी धनियो और दरिद्रो, दोनो वर्गो मे अच्छे लोग भी है और बुरे लोग भी। विनोबाजी कहते है "पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के फलस्वरूप इस जन्म मे मनुष्य गरीब या धनी होता है, यह धारणा गलत है। पूर्वजन्म के पुण्य से इस जन्म मे सुबुद्धि और निग्रहकारिता प्राप्त होती है और पूर्वजन्म के पाप से कुबुद्धि और दुष्कार्य करने की प्रवृत्ति मिलती है। यदि हमे सुबुद्धि प्राप्त हो, तो समझना चाहिए कि पूर्वजन्म मे हमने पुण्यकार्य किया था और यदि दुष्कार्य करने की इच्छा हो, तो समझना चाहिए कि हमने पूर्वजन्म मे पाप किया था।" वे आगे कहते है . "बुरे काम का फल गरीबी और अच्छे कर्मो का फल अमीरी है—ऐसी कोई बात नही है। शकराचार्य का गरीब परिवार मे जन्म हुआ था। तब क्या समझना होगा कि उन्होने पूर्वजन्म मे पाप किया था? पाप और पुण्य का परिणाम गरीबी और अमीरी नही है। पूर्वजन्म के पाप का फल है कुबुद्धि और पुण्य का फल है सुबुद्धि। शास्त्र कहता है कि जो अच्छा काम करते है, वे अगले जन्म मे पवित्र कुल मे जन्म लेते है और जो बहुत पुण्यवान् होते है, उनका योगियो के कुल में जन्म होता है। और, योगी लोग तो गरीब ही होते है। अतएव हमने पूर्वजन्म मे पाप किया है या पुण्य, यह हमारी कुबुद्धि या सुबुद्धि से प्रकट होता है। किन्तु, हम लोगो के देश मे तत्त्वज्ञान का बहुत गलत प्रयोग होता है। एक सन्यासी ने तो मुझसे यहाँ तक कहा था कि रोगी की सेवा करना गलत है, क्योकि रोगग्रस्त व्यक्ति अपने प्रारब्ध का भोग करता है और उसकी सेवा कर हम उसके प्रारब्ध को क्षति पहुँचाते है। यह सुनकर मैं विस्मित रह गया। उत्तर मे मैने कहा कि सभीको तो अपने-अपने प्रारब्ध का भोग करना पडता है। मेरे सेवा करने से उनके प्रारब्ध पर कोई प्रभाव नही पडेगा। प्रारब्ध इतना शक्तिशाली होता है कि वह अपने बल पर

ही चलता रहना है। किन्तु, मेरा धर्म तो सेवा करना है। इसलिए मैं तो सेवा करता रहूँगा। भगवान् यदि मुझे गरीब या धनवान् बनायेंगे, तो मेरी परीक्षा करने के लिए ही। जीवन एक परीक्षा है। अत पूर्वजन्म की बात उठाकर गरीबो की सेवा न करना बहुत बडी भूल है।"

कलियुग मे क्या यह सम्भव है ?

लोग कहते है यह कलियुग है। यह सब अभी होना क्या सम्भव है? इसके उत्तर मे विनोबाजी ने कहा है "किन्तु, जिस श्रावस्ती में बुद्ध भगवान् के निवास के लिए जमीन की आवश्यकता होने पर मोहरे बिछाकर जमीन लेनी पडी थी, उसी श्रावस्ती नगर मे मुझ जैसे अकिंचन ने—भगवान् बुद्ध की तुलना मे जिसका कोई अस्तित्व नही है—इस कलियुग में ही एक सौ एकड जमीन प्राप्त की है। तब सोचिये कि यह कलियुग है या सतयुग ?" इस प्रसग मे एक अन्य स्थान में उन्होंने कहा है—त्रेतायुग मे वामन ने जन्म ग्रहण किया था और द्वापरयुगमे दु शासन ने। किन्तु,इस कलियुग मे ही श्री चैतन्य, श्री रामकृष्ण, महात्मा गाधी आदि महापुरुषो ने जन्म ग्रहण किया है। अतएव वे कहते है "युग हमे स्वरूप नही प्रदान करता। हम ही युग को स्वरूप प्रदान करनेवाले 'कालपुरुष' है। हम चेतन है। इसीलिए यह सब जड प्रकृति हम लोगो के हाथ में है। हम मिट्टी को जो कोई भी आकार क्यो न दे, उसमें वह आपत्ति नही करती। आज ऐसा समुन्नत समय आया है कि हमने इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना इसी समय अपनी आँखो से देखी है। इतिहास मे आज तक कभी भी स्वाधीनता-युद्ध अहिंसात्मक मार्ग से सचालित हुआ है क्या ? अतएव भाइयो, गलत रास्ते पर मत सोचिये। आज हमारी आँखो के सामने सतयुग आ रहा है, और वह अत्यन्त तीव्रगति से आ रहा है। लोग कहते हैं, महायुद्ध आ रहा है। मै कहता हूँ—आये। जितनी बार महायुद्ध होगा, उतनी बार ससार यह शिक्षा प्राप्त करेगा कि महायुद्धो के द्वारा ससार की किसी समस्या का समाधान नही होता। मै सभी महायुद्धो का स्वागत करता हूँ, क्योकि उनके परिणाम-स्वरूप सम्पूर्ण समार को सीधे मेरे पास आना होगा और मुझसे कहना पडेगा कि 'हम लोग हार गये, अब हमें अहिंसा का रास्ता दिखा दीजिये'।" इस प्रसग में उन्होने एक अन्य स्थान मे कहा है "दान देने से इनकार करनेवाले

किसी व्यक्ति ने अब तक मेरी भेंट नहीं हुई है। मैं इसका अर्थ यह समझता हूँ कि सतयुग आ रहा है। पुराणों में चारों युगों के बारे में चर्चा की गयी है और कहा गया है कि प्रत्येक युग के समय की सीमा निर्धारित है। परन्तु उन चार युगों के अन्तर्वर्ती समय में भी दूसरे युग आ जा सकते हैं। जिस प्रकार दिन में प्रकाश और रात्रि में अन्धकार होता है, शरीर में श्वास-प्रश्वास की क्रिया नियत होती है, चन्द्रमा घटने के बाद पुन वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार एक-एक युग के अनन्तर अन्यान्य युग भी आते जाते हैं। अभी कलियुग चल रहा है, चले, परन्तु इस कलियुग के बीच में ही सतयुग आ सकता है। और यदि अभी सतयुग चल रहा हो, तो इसके बीच में ही कलियुग भी आ सकता है। पुराण में हमने देखा है कि श्रीराम के युग में ही रावण-जैसा राक्षस भी था और इस कलियुग में ही असंख्य सत्पुरुषों का जन्म भी हुआ है। इसका अर्थ यह है कि युग तो केवल नाम के लिए है। ज्योतिष के अनुसार वह चलता है, किन्तु भावना के अनुसार एक ही युग में चारों युग आ जाते हैं और सबसे दीर्घकाल तक सतयुग ही कायम रहता है। कलि का अर्थ होता है—एक। उसका दुगुना होता है—द्वापर और उसके तिगुने और चौगुने को क्रमश त्रेता और सतयुग कहते हैं। संस्कृत में कलि का अर्थ एक, द्वापर का दो, त्रेता का तीन और सत्य का चार होता है। इसका अर्थ यही है कि कलियुग की चार गुनी शक्ति सत्ययुग में होती है। बीच-बीच में कलि की ताकत बढ जाती है, किन्तु सत्य अधिक बलवान् है।"

मध्यवित्त-वर्ग की समस्या का समाधान

विनोबाजी जब बिहार के मानभूम जिले का भ्रमण कर रहे थे, तब एक व्यक्ति ने उनसे कहा कि वे गरीबों की समस्या के समाधान के लिए तो चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु मध्यवित्त-वर्ग की भी स्थिति खराब है। अतएव विनोबाजी को उनके लिए भी कुछ करना चाहिए। इस व्यक्ति ने यह भी कहा कि गरीबों की स्थिति तो कुछ ठीक भी है, क्योंकि हस्तशिल्प और शारीरिक श्रम का काम करके गरीबों की तरह जीवन-निर्वाह करने के वे अभ्यस्त हो गये हैं। किन्तु, मध्यम-वर्ग की स्थिति तो बहुत खराब है, क्योंकि स्वयं कुछ उत्पादन करने का उपाय इन लोगों के पास नहीं है। दूसरी ओर, धनिकों के हाथ में जो पैसा है, वह भी उनके हाथ में नहीं है। इसीलिए वे दुर्दशाग्रस्त हैं। इसके उत्तर में

यह बात पहले कही जा चुकी है। परिवार मे समता का यही आदर्श प्रतिष्ठित है। परिवार मे माँ और सन्तान में, पिता और पुत्र मे, पति और पत्नी मे यही एकात्मबोध विद्यमान है। वहाँ किसीकी योग्यता कुछ भी क्यो न हो, सबकी जीवन-यात्रा का मान एक-सा होता है। मनुष्य ने परिवार में एकता और समता की जो शिक्षा ग्रहण की हे, उसे सम्पूर्ण समाज मे प्रसारित करना सर्वोदय का उद्देश्य है। परिवार को हटा देने पर समाज मे ग्राम ही मनुष्य के सबसे निकट होता हे। इसीलिए एकात्मबोध को परिवार से पडोसी तक, अर्थात् ग्राम तक प्रसारित करना मनुष्य के लिए सबसे अधिक सहज होगा।

(२) शासन-विहीन समाज-व्यवस्था की ओर बढने के लिए शासन-शक्ति का विकेन्द्रीकरण करने की आवश्यकता है। राष्ट्र के सभी प्रकार के प्रश्न ग्राम मे पैदा हो सकते हैं और होते भी हैं। इसके अतिरिक्त सामूहिक जीवन के क्षेत्र मे ग्राम ही सबसे नीचे हे। इसलिए विकेन्द्रीकरण की अतिम सीमा के रूप मे ग्राम ही ग्रहण किया गया है।

(३) आर्थिक व्यवस्था का, जितनी दूर तक सम्भव हो, विकेन्द्रीकरण होने की आवश्यकता है। जिन उद्योगो का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है, उन सबको आत्मनिर्भरता की दृष्टि से गृह-उद्योगो के रूप मे चलाना सम्भव नही हे। अनेक उद्योगो को ग्रामोद्योगो के रूप मे चलाना होगा। जैसे, वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से सूत कातने और वस्त्र-बुनाई को गृह-उद्योगो के रूप मे चलाना होगा, परन्तु कागज आदि का घर मे उत्पादन कर सकना सम्भव नही होगा। ऐसे सभी उद्योगो को ग्रामोद्योगो के रूप मे चलाना पडेगा। अतएव आर्थिक क्षेत्र मे विकेन्द्रीकरण के लिए ग्राम का अवलम्बन किया गया है।

(४) केन्द्रित व्यवस्था मे किसी योजना के विफल होने से सम्पूर्ण समाज और देश को क्षति पहुँचती है। यदि योजना का क्षेत्र यथासम्भव सकुचित किया जाय, तो उसकी विफलता समाज और देश के अन्य भागो को क्षतिग्रस्त नही कर सकेगी। इस दृष्टि से यदि प्रत्येक ग्राम अपनी योजना बनाये, तो उसकी विफलता का प्रभाव केवल उस ग्राम पर पडेगा। उससे दूसरे ग्रामो का अनिष्ट नही होगा, बल्कि वे उससे शिक्षा ग्रहण कर सकेगे।

(५) प्राचीन काल मे ग्राम ही आर्थिक और शासन-व्यवस्था का केन्द्र था। ग्राम-पचायतो के द्वारा शासन और आर्थिक व्यवस्था का सचालन होता

था। लोक-मानस मे उसकी स्मृति अब भी बची हुई है। अतएव ऐतिहासिकता की दृष्टि से ग्राम को ग्रहण करना समीचीन और जनमन के अनुकूल है।

(६) स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व नवीन समाज-रचना के लिए जो रचनात्मक काम हो रहे थे, वे स्वाधीनता-आदोलन के माध्यम से किये जाते थे। उस समय स्वाधीनता-प्राप्ति ही युग की माँग थी। स्वाधीनता-आदोलन उस समय युगधर्म था। अतएव नवीन समाज-रचना का काम उसके माध्यम से न करके और किसी दूसरे मार्ग का अवलम्बन करने से कोई फल प्राप्त नही होता। अब युग-परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग की माँग भूमि का समवितरण और समता-स्थापना है। अतएव भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के माध्यम से सर्वोदय-प्रतिष्ठा के सभी प्रयत्न किये जाने का सुयोग आ गया है। अपने लक्ष्य की ओर बढने के लिए हमे यह नवीन माध्यम प्राप्त हुआ है।

सर्वोदय-सूत्र

बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन मे श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा जीवनदान का आह्वान किये जाने पर विनोबाजी ने अपने जीवन को समर्पित करते हुए उन्हे एक पत्र लिखा। वे जीवन का समर्पण क्यो कर रहे है, इसे उन्होने अपने चार शब्दो मे प्रकट किया है। वे शब्द है 'भूदानयज्ञमूलक, ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसात्मक क्राति'। यह चार शब्दो के द्वारा रचित एक महान् सूत्र है। सूत्र के रूप में इसमे सर्वोदय का, अर्थात् नवीन समाज-रचना का आधार, स्वरूप, साधन और उद्देश्य प्रकट है। विनोबाजी ने इस सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि प्रथम शब्द 'भूदान-यज्ञ' इसका आधार है और अन्तिम शब्द 'क्राति' इसका उद्देश्य है। द्वितीय शब्द 'ग्रामोद्योगप्रधान' इसका स्वरूप और तृतीय शब्द 'अहिंसा' इसकी साधना का उपाय है। 'क्राति' शब्द की व्याख्या इसके पूर्व की जा चुकी है। बाकी तीन शब्दो के व्यवहार का उद्देश्य क्या है, यह समझने की आवश्यकता है। उससे सर्वोदय के आधार, स्वरूप और साधना के उपाय के सम्बन्ध में स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

(क) 'भूदान-यज्ञमूलक'—(१) वर्तमान सामाजिक विकृति का मूलकारण है शोषण। केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था के द्वारा ही समाज मे शोषण चल रहा है। भूमि के बारे मे भी यही व्यवस्था चल रही है। भूमि मे

जो उत्पादन होता है, वह मौलिक उत्पादन है। अर्थात् अन्य जिन चीजो का उत्पादन होता है, वे भूमि-उत्पादित वस्तुओ से ही तैयार होती है। शोषण वन्द करने के लिए जरूरी है कि पहले मूल उत्पादन के क्षेत्र मे ही विकेन्द्रीकरण किया जाय। अतएव भूदान-यज्ञ के द्वारा पहले नवीन समाज-रचना के आधार-स्वरूप घर-घर मे भूमि-वितरण की व्यवस्था की जा रही है। (२) वर्तमान परिस्थिति मे भूमि की समस्या ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। भूमि का पुनर्वितरण इस युग की मॉग है। यही युगधर्म है। किन्तु भूमिदान की प्राप्ति और भूमि के वितरण से ही यह समाप्त नही हो जायगा। भूमि के साथ-साथ ग्रामोद्योगो की व्यवस्था करनी होगी। भूमि का पुनर्वितरण होने से ग्राम-उद्योगो की व्यवस्था करने का काम सरल हो जायगा और उसके द्वारा अनुकूल वातावरण की सृष्टि होगी।

(ख) 'ग्रामोद्योगप्रधान'—भारत की गरीबी की समस्या की मीमासा केवल भूमि के द्वारा सम्भव नही है, पूरक वृत्ति अथवा अनेक क्षेत्रो मे प्रधान वृत्ति के रूप मे गृह-उद्योग चाहिए। कर्म-विभाजन नही होने से आर्थिक साम्य-प्रतिष्ठा सम्भव नही होगी। उद्योगो का विकेन्द्रीकरण किये विना आर्थिक क्षेत्र मे कर्म-विभाजन नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त सर्वोदय के आदर्श से कैसा भी काम क्यो न किया जाय, उसका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए और सबको काम मिलना चाहिए। विकेन्द्रित उत्पादन या उद्योग-व्यवस्था मे (१) प्रत्येक व्यक्ति को काम मिलना सम्भव होगा। (२) उससे काम का प्रकार और प्रकृति-निरपेक्ष होकर आर्थिक मूल्य भी स्वय ही समान हो जाता है। आर्थिक क्षेत्र मे समता-स्थापना नही होने से समाज मे समता-स्थापना सम्भव नही है। अतएव सर्वोदय-समाज-रचना मे गृह-उद्योगो को प्रधान स्थान देना आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी ने अनुकरणीय ढग से कहा है · "राम का नाम लेते समय मै केवल 'राम' का ही उच्चारण नही करता, बल्कि 'सीताराम' भी कहता हूँ। उसका अर्थ यह है कि भूमि के पुनर्वितरण के साथ-साथ मै ग्रामोद्योग भी चाहता हूँ। लोग प्राय कहते है कि गृह-उद्योग मे उत्पादित वस्तुओ का मूल्य अधिक होता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि मनुष्य की जीविका छीनकर, उसे बेकार बनाकर, भूखा रखकर, मशीने जिन वस्तुओ का उत्पादन करती है, वे सस्ती नही, बल्कि महँगी होती है।

यदि मशीन उस बेकार को भोजन देने के लिए भी बाध्य हो, तो मिल मे उत्पादित वस्तुओ का मूल्य बहुत अधिक हो। मशीनी उत्पादन के लिए होनेवाले व्यय का हिसाब करके देखिये, तो पता चले कि मशीन-उत्पादित वस्तुएँ सस्ती है या महँगी ? कठिन परिश्रम से जिस वस्तु का उत्पादन किया गया है, उससे सस्ती तो वह वस्तु होगी ही, जो चोरी से लाकर बेची जा रही है। विष सस्ता है और अमृत महँगा, तो क्या सस्ता होने के कारण आप विष खरीदेगे ?"

अब प्रश्न यह है कि समाज की वर्तमान स्थिति मे बडे कारखानो पर अर्थात् केन्द्रित उद्योग पर पूर्णत प्रतिबन्ध लगा देना क्या सम्भव है ? नही, यह सम्भव नही है। तब किन-किन केन्द्रित उद्योगो को स्वीकार किया जाय और किस नीति से इसका निर्णय हो ? इस सम्बन्ध मे विनोबाजी ने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन मे प्रकाश डाला है। इसे सर्वोदय की आर्थिक आयोजना की संज्ञा दी जा सकती है। उन्होने कहा है "यत्र तीन प्रकार के है—समयसाधक, सहारक और उत्पादक। (१) मै समयसाधक यत्रो का विरोध नही करता। रेलगाडी या विमान-सदृश यत्रो से उत्पादन-वृद्धि तो नही होती, पर समय बच जाता है। दस हजार घोडे भी एक साथ मिलकर एक विमान के साथ प्रतियोगिता नही कर सकते। इसलिए हम ऐसे समयसाधक यत्र चाहते है। (२) तीर, बन्दूक, बम आदि जैसे सहारक अस्त्रो का अहिसक व्यवस्था मे स्थान नही है। इसलिए ऐसा यत्र हम नही चाहते। (३) उत्पादक यत्र दो प्रकार के होते है—पूरक और मारक। जहाँ जन-सख्या अधिक हो और कोई यत्र लोगो को बेकार बनाये, वहाँ उसे मारक यत्र कहते है। किन्तु, जहाँ मनुष्य-शक्ति कम है और काम अधिक है, वहाँ वही यत्र मारक न रहकर पूरक बन जायगा। एक यत्र जहाँ एक देश मे पूरक साबित होता है, वहाँ दूसरे देश मे वह मारक हो जाता है। भारत मे ट्रैक्टर की तरह के यत्र आने से प्रचण्ड रूप से बेकारी बढेगी, किन्तु अमेरिका और रूस जैसे देशो मे ट्रैक्टर जैसे यत्र मारक नही माने जायँगे, बल्कि उत्पादक समझे जायँगे। इस प्रकार एक यत्र एक समय मे पूरक रहता है और दूसरे समय मारक बन जाता है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कोई यत्र पूरक या मारक माना जाता है। अतएव यत्र के प्रति एकदम आसक्ति या विरोध का भाव रखना उचित नही है। यत्र की उपयोगिता का विचार करने के बाद ही हम उसे ग्रहण करेंगे। किन्तु, यदि

हम यत्र के प्रति आसक्त हो और यह कहे कि मिल के साथ प्रतियोगिता करने योग्य यत्र ग्रामोद्योग मे नही है, इसलिए हम उसका व्यवहार नही करेगे, तो ऐसा कहने का मतलब यह होगा कि हम उस ढग से चिन्तन नही करते, जिस ढग से करना चाहिए। पाश्चात्य देश मे किसी व्यापार को चलते देखकर ही हम उस चक्र या धोखे मे पडकर वैसी वात कहते है । इस सम्वन्ध मे भी गाधीजी ने हमे सावधान कर दिया था कि हम गलती कर रहे है। मैंने देखा है कि जहाँ हम समता की वात कहते है, वहाँ हमारे सामने उसका विरोध कर विपमता की वात कोई नही कह पाता। किन्तु, वे 'एफिशियेन्सी' या दक्षता की वात उठाते है। वे कहते है कि आप समतावादी है, किन्तु हम दक्षतावादी है। इस प्रकार वे एक गुण के विरुद्ध दूसरा गुण खडा कर देते है। फलत विरोध चलता रहता है। आजकल पूंजीवादियो ने दक्षता की आवाज उठायी है। मै भी दक्षता चाहता हूँ, किन्तु मै यह नही चाहता कि परिवार के कुछ लोगो को भोजन मिले और वाकी लोग भूखे रहे। मै चाहता हूँ कि सव लोग भोजन पायें। यदि वर्तमान परिस्थिति मे ग्रामोद्योग का यत्र सवके भोजन की व्यवस्था करने मे सक्षम हो, तो उसे ग्रहण करना कर्तव्य है। कुछ लोगो के स्वार्थसाधन के लिए वाकी लोगो को वेकार रखकर हम सक्षम होने का दावा नही कर सकेगे।

"भारत में आज उत्पादन वहुत कम हे और वेकारी वहुत अधिक है। असतोप की सृष्टि इसीलिए हुई है। और वह समय-समय पर अवसर पाकर प्रकट हो रहा है। इसके प्रतिकार के लिए कुछ करना ही पडेगा। असतोप मिटाने के लिए चेप्टा की जानी चाहिए। गाधीजी का यह नियम था कि जिसकी आवश्यकता सवसे अधिक होती थी, उसे वे सहायता प्रदान करते थे। कवि दुखायल ने कहा है कि सहायता देने का क्रम इस प्रकार होना चाहिए—पहले भूखा, फिर दु खी और तब सुखी। किन्तु, आज इसके विपरीत काम हो रहा है। इसलिए गाधीजी सदा एक ही वात सोचते थे कि जिसकी आवश्यकता सवसे अधिक है, उसकी सहायता करने का उपाय किया जाना चाहिए। इस अन्वेपण के फलस्वरूप ही चरखे का आविष्कार हुआ था। यह उनकी अद्भुत प्रतिभा है। यह उनकी काव्यशक्ति है। केवल कुछ पक्तियाँ लिखने से ही कवि नहीं वना जाता। व्यासकाचार्य ने कहा है 'कवि क्रातिदर्शी होता है।' जिसकी

दृष्टि विप्लवी है, जो दूरदर्शी और सूक्ष्मदर्शी है, वही कवि है। इस अर्थ में गांधीजी भी कवि थे। उन्होंने कुछ वर्ष पहले ही कह दिया था कि भारत के लिए ग्रामोद्योग नितान्त आवश्यक है। उन्होंने नयी तालीम, राष्ट्रभाषा, भूमि के पुनर्वितरण आदि की बात कई वर्ष पहले ही कह दी थी। उन्होंने कितना बड़ा उपकार किया है, कैसी महती उनकी बुद्धिमत्ता थी, कितनी प्रतिभा और कितना वात्सल्य उनके हृदय में था। उन्होंने हम लोगों के लिए कितना कुछ किया। हमने उनसे ही प्रकाश पाया है। फिर भी हम आज ढुलमुल रहे हैं। हम ऐसे अभागे हैं।"

स्वावलम्बन की दृष्टि से, मनुष्य के जीवन की प्राथमिक आवश्यकता पूरी करने के लिए यदि भोजन और वस्त्र का उत्पादन घर में कर सकना सम्भव न हो, तो ग्राम में उनका उत्पादन करना होगा। इसके अतिरिक्त जो कच्चा माल जिस ग्राम में पैदा होता है और जहा उसे तैयार माल में परिणत कर सकना सम्भव हो, वहाँ उसके उत्पादन की व्यवस्था करनी होगी और तैयार माल ही ग्राम के बाहर भेजना होगा। जिस प्रकार सौर-मडल में सूर्य केन्द्रबिन्दु होता है, उसी प्रकार ग्रामोद्योगरूपी सौर-मडल में खादी सूर्य है। उसे केन्द्र बनाकर अन्य ग्रामोद्योग खड़े हो जायँगे। इसीलिए महात्मा गांधी जीवनभर लोगों को यह समझाते रहे कि अपने वस्त्र के लिए स्वय सूत कातिये और जो लोग स्वय सूत न कात सकें, वे खद्दर खरीदकर व्यवहार में लाये। किन्तु, स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद अनेक लोग कहते हैं कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए ही खादी की आवश्यकता थी। अब खादी की और क्या आवश्यकता है? उन लोगों के सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है कि वे बुद्धिभ्रष्ट हैं। स्वाधीनता को सुदृढ करने और उसके सरक्षण के लिए खादी तथा ग्रामोद्योग अपरिहार्य हैं। यदि खादी का विकास न होगा, तो अन्य किसी भी ग्रामोद्योग का विकास सम्भव नही होगा। वैसा होने से गाँवों की गरीबी दूर कर सकना भी बहुत दूर की बात हो जायगी। वैसी स्थिति में ग्राम वनिकों एव मिल-मालिकों के गाल में चले जायेंगे और स्वतत्र रूप से जीवन-यात्रा असम्भव हो जायगी। थोड़े में इसे यों कह सकते हैं कि ग्रामों की स्वाधीनता विलुप्त हो जायगी और परिणामस्वरूप देश की स्वतत्रता को खो देने का रास्ता साफ हो जायगा। इसीलिए जो लोग खद्दर नही पहनते, उनसे विनोबाजी ने अनुरोध किया है कि

वे खद्दर खरीदे और मिल में बने कपडे से जितना अधिक पैसा इसमे देना पडे, उसे गरीबो को गुप्त दान किया मान ले। उन्होने कहा है "यदि हम चार रुपये मूल्य की खादी पहने, तो दो रुपये तो मिल का कपडा खरीदने मे भी खर्च होते— बाकी दो रुपये हम दान-धर्म मे खर्च हुआ मान ले। यदि हिसाब-किताब रखते हो, तो उसमे लिखे कि दो रुपये का कपडा और दो रुपये दान-धर्म की मद मे खर्च हुए। देश की माँ-बहनो को यदि बचाना चाहते है, तो कुछ धर्म तो करना ही पडेगा। यदि इस तरह दान-धर्म करेगे, तो गरीब बेकार नही होगे। भीष्मपितामह ने कहा था "दरिद्रान् भर कौन्तेय, मा प्रयच्छेश्वर धनम्"— अर्थात् गरीबो को धन दो, धनवानो को नही।"

सब लोग उत्पादक श्रम करे। सबको उत्पादक श्रम करने का सुयोग देना होगा। यह ग्रामोद्योग की मूल बात है। किन्तु केवल 'उत्पादक श्रम' कहना ठीक नही होगा, क्योकि जो बडे मशीनी उद्योग करोडो मनुष्यो को बेकार कर देते है, उनमे काम करनेवाले मजदूर भी तो उत्पादक श्रम ही करते है। कपडे की मिल और चावल की मिल मे मजदूर जो काम करते है, वह भी तो उत्पादक श्रम ही है। इसीलिए विनोबाजी ने गृह-उद्योगो मे प्रयुक्त उत्पादक श्रम को 'द्रोहरहित' विशेषण प्रदान किया है। बेकारी उत्पन्न करनेवाले मशीनी उद्योगो मे नियुक्त मजदूरो और ग्रामोद्योगो मे उत्पादन करनेवाले मजदूरो के बीच यही अन्तर है। एक का श्रम द्रोहरहित होता है, अर्थात् दूसरे का उससे अनिष्ट नही होता और दूसरे का श्रम 'द्रोहकारी' होता है।

हमारी समाज-रचना ग्रामोद्योग-प्रधान होगी। विनोबाजी ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है "प्रधान कहने का कारण यह है कि गौण रूप से और भी चीजे इसमे रहेगी।" वे चीजे है—नयी तालीम, राष्ट्रभाषा, सामाजिक क्षेत्र मे समता-स्थापना आदि। महात्मा गाधी द्वारा निर्दिष्ट १८ सूत्री रचनात्मक कार्यों मे ये सब गौण विषय है। इनके अतिरिक्त स्थिति की आवश्यकता के अनुसार नयी बातें भी इसमे रहेगी।

(ग) 'अहिंसात्मक'—विनोबाजी ने 'अहिंसात्मक' शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है "हमारी क्रांति का साधन 'अहिंसा' होगी। इसे हम सत्याग्रह भी कहते है। इसके चार अग है (१) दु ख-कष्ट का वरण अर्थात् तपस्या,

(२) विचार-प्रचार, (३) नयी तालीम और (४) पाप अर्थात् अन्याय से असहयोग।"

नवीन समाज-रचना मे अहिंसा तीन प्रकार से काम करेगी (१) स्वतन्त्र जनशक्ति, (२) कर्तव्य-विभाजन और (३) विचार-शासन। इस सम्बन्ध मे पहले विचार किया जा चुका है। राष्ट्रशक्ति का सहारा न लेकर या उसका प्रयोग न कर या उसकी अपेक्षा न कर सर्वसाधारण अपनी प्रेरणा से अपनी विधायक शक्ति को जाग्रत करके कार्य पूरा करेंगे। यह हिंसा के विरुद्ध होगा।—जैसे कानून बनने की प्रतीक्षा मे न रहकर भूमि प्राप्त करने और वितरण करने का काम। ग्रामोद्योगो के क्षेत्र मे भी जनशक्ति का निर्माण करके अग्रसर होना। कानून की सहायता से या सरकार की शक्ति के प्रयोग से ग्रामोद्योगो की उन्नति के लिए अपेक्षा नही करना। कर्तव्य-विभाजन है—राष्ट्रशक्ति या आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण, अर्थात् शक्ति को केन्द्र से लेकर ग्रामो मे वितरित कर देना। वह केवल प्रशासनिक अधिकारी (Administrative Authority) की सृष्टि करना नही है। विचार-शासन कहते है उस पद्धति को, जिसमे बाहरी शक्ति या कानून के भय से नही, बल्कि हृदय में विचार करके, समझ करके, आतरिक प्रेरणा से सार्वजनिक सभी क्षेत्रो में अपने को परिचालित किया जाय।

अहिंसात्मक क्रान्ति-साधना के दो पक्ष : विधायक (Positive) और नकारात्मक (Negative)

भारत की वर्तमान समाज-व्यवस्था अत्यधिक विषमतामूलक है। एक ओर कुछ व्यक्तियो के पास करोडो रुपये की भूमि, सम्पत्ति और धन-दौलत जमा है और दूसरी ओर करोडो व्यक्ति दारुण दरिद्रता मे दबे पडे है। प्रेम के मार्ग से, अहिंसा के मार्ग से इस विषमता को दूर करना होगा। समतामूलक समाज या सर्वोदय-समाज की स्थापना करनी होगी। इसका आधार किस प्रकार तैयार किया जाय ? जिनके पास अधिक भूमि है, वे अपनी फालतू भूमि को समविभाजन या समवितरण के लिए समाज को अर्पित कर दें। भूमि किसीकी नही है। भूमि भगवान् की है, समाज की है। इसलिए भूमि पर व्यक्ति का स्वामित्व नही रह सकता। अतएव जिनके पास थोडी भूमि है,

वे भी 'व्यक्तिगत स्वामित्व' की समाप्ति का मनोभाव लेकर उसके प्रतीक-स्वरूप थोडी-वहुत भूमि 'कृष्णार्पण' करे। जिनके पास भूमि नही है, किन्तु जो उपार्जन करते है, वे अपनी आय का एक अश समाज को अर्पित करे, क्योकि भूमि के अतिरिक्त अन्य धन भी भगवान् का है। इसके अलावा समाज की सहायता या सहयोग के विना कोई व्यक्ति कुछ भी उपार्जन करने मे सक्षम नही है। इसीलिए धन पर भी किसीका व्यक्तिगत स्वामित्व नही रह सकता। इस कारण धनी व्यक्ति स्वामित्व-समाप्ति के लिए और समवितरण के लिए अपनी आय का एक अश सम्पत्तिदान के रूप मे अर्पित करे। जिनकी आय कम है, वे भी समाज का ऋण चुकाने के लिए और व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति के प्रतीकस्वरूप आय का अल्पाश यज्ञाहुति के रूप मे अर्पित करे। इतना ही नही, शरीर भी अपना नही है—वह भी भगवान् का दान है। अतएव शरीर का मनमाना व्यवहार करने का भी अधिकार किसीको नही है। मनुष्य के लिए अपनी शक्ति, वुद्धि, समय और प्रेम को सम्पूर्णत अपने लिए और अपने परिवार के लिए खर्च कर देना निषिद्ध है। अपने लिए और अपने परिवार के लिए शक्ति, समय, वुद्धि और प्रेम को यथासम्भव कम खर्च करके, उन्हे समाज की सेवा मे अर्पित करना होगा। समाज मे क्राति लाने अर्थात् सर्वोदय-स्थापना की यह प्रक्रिया नकारात्मक (Negative) है, क्योकि यह इस प्रकार है— "तुम्हारे पास वहुत जमा हो गया है। अतएव 'त्याग करो, त्याग करो।' 'दान करो, दान करो।' त्याग करके, दान करके इसे कम करो। तुम सव कुछ अपने लिए रख रहे हो। यह ठीक नही है। अतएव इसमे से कुछ अश का त्याग करो, दान करो।" यह प्रक्रिया रोगाक्रात होने के वाद रोग को दूर करने के लिए चिकित्सा-व्यवस्था करने सदृश है। अतएव यह प्रतिकारात्मक उपाय या Curative method है। केवल इस नकारात्मक प्रक्रिया के द्वारा पूर्ण क्राति का आधार तैयार कर सकना सम्भव नही है। समाज इस वैषम्यरोग से आक्रात न हो, इसका उपाय क्या है, अर्थात् इसका प्रतिषेधक या Preventive उपाय क्या है ? अर्थात् समाज मे किसीके पास अधिक भूमि, धन या सम्पत्ति पूँजीभूत न हो, इसका उपाय क्या है ? यही होगा क्राति-साधना का Positive पक्ष। यह विधायक प्रक्रिया है पचसूत्री साम्य का आदर्श ग्रहण करना और जीवन मे उनका प्रयोग करना। इन सव साम्यो के वारे मे पहले विचार किया जा

चुका है, फिर भी इस प्रसंग में संक्षेप में इनका उल्लेख आवश्यक है। यह पंचसूत्री साम्य निम्न प्रकार है

(१) सभी मनुष्य समान हैं, क्योंकि सबमें एक ही आत्मा निवास करती है। आत्मा की एकता साम्य का मूल है। परमतत्त्व पूर्ण है। पूर्ण से जो उत्पन्न होता है, वह भी पूर्ण होता है और जो बच जाता है, वह भी। सब पूर्ण हैं। सब समान हैं। इसीलिए सभी मनुष्य समान हैं। साम्य के इस बुनियादी आदर्श को ग्रहण करने से वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिफलित होता है और इस प्रकार साम्य का विकास होता है। यह बुनियादी साम्य अन्य चार प्रकार के साम्यों का मूल है।

(२) यद्यपि सभी मनुष्य समान हैं, तथापि देखा जाता है कि सबके जीवन का समान विकास नहीं होता, अथवा एक ही दिशा में सबका विकास नहीं होता। किसीका विकास एक दिशा में होता है, किसीका दूसरी दिशा में और किसीका तीसरी दिशा में। किसीका विकास किसान के रूप में हुआ है और किसीका मेहतर के रूप में। किसीका विकास वकील, डॉक्टर और जज के रूप में हुआ है। अपने-अपने विकास के अनुसार यदि सब लोग अपनी-अपनी भूमिका में सच्चाई के साथ और अक्लान्त भाव से समाज की सेवा या समाज-हितकारी काम करें, तो सबकी सेवा का नैतिक मूल्य समान माना जायगा। किसान सच्चाई के साथ और अक्लान्त भाव से खेत में काम करे तथा जज साहब भी सच्चाई के साथ अक्लान्त भाव से अदालत में मुकदमों का फैसला करें, तो दोनों की सेवाओं का नैतिक मूल्य बराबर होगा। इन दोनों ही सेवाओं का नैतिक मूल्य समान है। माता सन्तान का पालन और गृह-परिचर्या करती है। पिता अर्थोपार्जन करता है। पिता की सेवा का नैतिक मूल्य अपेक्षाकृत अधिक नहीं है और न माता की ही सेवा का नैतिक मूल्य अधिक है। दोनों की सेवाओं का नैतिक मूल्य समान है। यही है जीवन के नैतिक क्षेत्र का साम्य।

(३) यों सच्चाई के साथ और अक्लान्त भाव से की गयी सभी सेवाओं का नैतिक मूल्य जिस प्रकार समान है, उसी प्रकार समाज की जो लोग इस प्रकार सेवा करते हैं, उनकी सामाजिक मर्यादा भी समान होगी। एक दृष्टान्त लें। जज साहब अथवा अध्यापक की सामाजिक मर्यादा एक मेहतर की सामाजिक मर्यादा से अधिक नहीं है, बल्कि समान है। मेहतर मल साफ करता है,

किन्तु यह तो कोई अनुचित कार्य नही है। प्राकृतिक नियमानुसार प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से मल निकलता हे। जिसका मल हो, वही साफ करे, यही उचित है। जब तक समाज के सभी लोग यह अवश्यमेव सम्पादन किया जानेवाला काम स्वय करने का दायित्व ग्रहण नही करते, तब तक जो व्यक्ति सबके द्वारा अवहेलित कर्तव्यो का वोझ अपने कन्धे पर उठाकर निष्ठापूर्वक काम करता है, वह अवज्ञा या घृणा का पात्र तो नही है, बल्कि अधिक मर्यादा का पात्र है। माताएँ अपनी सन्तान का मल साफ करती है, इसलिए क्या माताओ की मर्यादा क्षुण्ण है ? मेहतर माँ की इसी भूमिका मे समाज की सेवा करते है। यदि यह कहा जाता है कि मेहतर अपरिष्कृत ढग से पाखाना साफ करते है और अपने को गदा रखते है, तो इसके लिए उत्तरदायी कौन है? इसका दायित्व क्या उन पर नही है, जिन्होने समाज को हाथो (Hands) और सिरो (Heads) मे विभक्त करके विपमता की सृष्टि की है। जिनकी वुद्धि-वृत्ति का विकास हुआ है, ऐसे वैज्ञानिक, जज साहव, अध्यापक आदि ने परिष्कृत ढग से पाखाना साफ करने की पद्धति का आविष्कार करके मेहतर को तत्सम्बन्धी शिक्षा क्यो नही दी ? उन्हे साफ रहने की शिक्षा उन्होने क्यो नही दी ? अतएव समाज की सेवा करनेवाले सभी लोगो की सामाजिक मर्यादा समान है। यही सामाजिक जीवन के साम्य का आदर्श है।

(४) निष्ठा और सच्चाई के साथ की जानेवाली सभी सेवाओ का आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए, अन्यथा आर्थिक क्षेत्र मे स्थायी रूप से साम्य ला सकना किसी भी प्रकार सम्भव नही है। एक व्यक्ति सच्चाई के साथ ८ घटे परिश्रम करके जो पारिश्रमिक पायेगा, दूसरा व्यक्ति ठीक उतने ही समय मे दूसरा काम करके उससे ५ सौ गुना पारिश्रमिक क्यो पायेगा ? ८ घटे परिश्रम करके खेतिहर मजदूर एक रुपया पाता है और दूसरी ओर एक व्यक्ति दो घटे एडवोकेट का काम करके ५ सौ रुपये लेता है। ऐसा क्यो होगा ? पारिश्रमिक दिया जाता है भरण-पोषण के लिए। एडवोकेट के भरण-पोषण के लिए क्या किसान की अपेक्षा ५ सौ गुना अधिक की आवश्यकता होती है ? उसकी क्षुधा, उसकी सर्दी-गर्मी का वोध, उसकी सुख-भोग की स्पृहा और उसकी दु खभोग की वितृष्णा कृषक की अपेक्षा क्या ५ सौ गुनी अधिक है ? ऐसा तो नही है। सभी मनुष्यो की आवश्यकताएँ समान है। थोडा-वहुत पार्थक्य

भी है, किन्तु वह मनुष्य के हाथ की पाँच अँगुलियों के सदृश है—समान भी नहीं है और असमान भी नहीं। तब पारिश्रमिक में इतना अन्तर क्यों रहेगा? इसीलिए महात्मा गांधी कहते थे 'यदि नाई की आठ घंटे की मजदूरी आठ आने हो, तो वकील की भी आठ घंटे की मजदूरी आठ आने होनी चाहिए।' यही है आर्थिक जीवन के क्षेत्र में साम्य का आदर्श।

(५) जिस कारण से सभी मनुष्य समान हैं, उसी कारण से सबके मत को समान मूल्य और मर्यादा देनी होगी। यदि ऐसा हो, तो बहुमत के वोट के बल पर काम क्यों चलाया जायगा? सार्वजनिक वोट की प्रथा प्रचलित है। प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार में एक वोट है। प्रत्येक के वोट का मूल्य समान है। किन्तु, जभी सौ व्यक्तियों में से ५१ व्यक्तियों के वोट एक ओर हो जाते हैं, तभी बाकी ४९ व्यक्तियों के वोट का कोई मूल्य नहीं रह जाता। यह साम्य-विरुद्ध है। इसलिए सभी सिद्धान्त सर्वसम्मति से स्वीकृत हों, यह आवश्यक है। तभी सबके मत को समान मूल्य और समान मर्यादा दे सकना सम्भव होगा। राष्ट्रीय क्षेत्र में और अन्य सभी क्षेत्रों में इस प्रकार सर्वसम्मति से काम चलने पर ही वास्तविक साम्य की प्रतिष्ठा होगी।

यह पाँच प्रकार का साम्य क्रांति-भावना का विधायक पक्ष है। नकारात्मक और विधायक, दोनों मार्गों से अग्रसर होने से ही सम्पूर्ण क्रांति की दिशा में अग्रगति हो सकेगी।

शासनमुक्त समाज

सर्वोदय-समाज-प्रतिष्ठा की योजना में समाज की चरम परिणति है—शासनमुक्त अवस्था। यह केवल Stateless Society अर्थात् शासनहीन समाज नहीं है। इसमें सामाजिक शासन भी नहीं रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी विवेक-बुद्धि से चलेगा। प्रत्येक व्यक्ति की विवेक-बुद्धि इस प्रकार विकसित होगी कि किसीके साथ किसीका स्वार्थजन्य संघर्ष नहीं होगा, अर्थात् किसी संघर्ष या विवाद का जन्म ही नहीं होगा। वास्तविकता के क्षेत्र में, सम्भव है, कभी भी इस स्थिति को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकना सम्भव न हो। सम्पूर्ण रूप से शासनमुक्त समाज एक आदर्श है। आदर्श तक पहुँचने के लिए चिरकाल तक प्रयत्न होंगे, उसी ओर उत्तरोत्तर अग्रसर हुआ जायगा, किन्तु हो सकता

है कि कभी भी आदर्श तक न पहुँचा जा सके। किन्तु यही बात मन मे रखकर आगे बढा जायगा कि एक-न-एक दिन आदर्श तक पहुँचना होगा और पहुँचा जायगा। इसलिए इस आदर्श की अवहेलना नही करनी होगी, क्योकि वैसा होने से अन्य सब व्यवस्थाओ का मूल शिथिल पड जायगा। आदर्श तो रेखागणित के बिन्दु के समान है। उसकी कल्पना की जाती है, पर कभी उसे देखा नही जाता, परन्तु उसकी अवहेलना करके कोई वैज्ञानिक वास्तव मे आगे बढ भी नही सकता, क्योकि वैसा होने से रेखागणित के परवर्ती सभी सिद्धान्त अचल पड जायँगे। कल्पना को त्याग कर कोई इजीनियर किसी दालान का नक्शा तैयार नही कर सकता। इसी प्रकार शासनमुक्त समाज का आदर्श सामने न रखने से सर्वोदय-योजना के अनुसार राष्ट्रीय, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र मे किसी प्रकार की रचनात्मक व्यवस्था ठीक तरह से कर सकना सम्भव नही होगा। अतएव पूर्ण शासनमुक्त अवस्था आदर्श-स्वरूप रहेगी, परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र मे उसका प्रत्यक्ष रूप होगा शासन-निरपेक्ष समाज। शासन का आधार है दण्डशक्ति, इसीलिए उसे 'दण्ड-निरपेक्ष समाज' भी कहा जाता है।

सर्वोदय का चरम लक्ष्य 'शासनमुक्त समाज' क्यो है ? सर्वोदय का अर्थ है अहिंसात्मक समाज की रचना, अर्थात् हिंसामुक्ति। सामाजिक क्षेत्र मे शासन और शोषण, इन्ही दोनो के माध्यम से हिंसा प्रकट होती है। आर्थिक क्षेत्र मे हिंसा शोषण का रूप ग्रहण करती है। शोषण के फलस्वरूप और उसकी प्रतिक्रिया से समाज मे तरह-तरह की विशृंखलाएँ उत्पन्न होती है। इसीके लिए शासन की आवश्यकता होती है, इसीलिए शासन-व्यवस्था का आविष्कार हुआ है। समाज मे शोषण का आधार है केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था, अर्थात् पूँजीवाद। आजकल उत्पादन के कल-पुर्जे केवल पूँजीपतियो के हाथ मे नही है, बल्कि वे उत्तरोत्तर राष्ट्र के हाथ मे जमा हो रहे है। व्यक्तिगत और गैर-सरकारी पूँजीवाद के दिन चले जा रहे है और उसके स्थान पर राष्ट्र-पूँजीवाद स्थापित हो रहा है। आजकल ससार की प्राय सब प्रकार की राष्ट्र-व्यवस्था ही वास्तविक रूप मे सर्वाधिकारी बन गयी है, अर्थात् मानव-जीवन के सभी क्षेत्रो मे राष्ट्र का नियत्रण स्थापित किया जा रहा है। Welfare State या कल्याणकारी राष्ट्र के रूप मे आज राष्ट्र-व्यवस्था सर्वाधिकारी (Totalitarian) बन गयी है। इस महाविराट् राष्ट्रयत्र को खिलाने मे ही सर्वसाधारण

का अविकाश उत्पादन समाप्त हो जाता है। राष्ट्र-व्यवस्था के सचालन के लिए समाज का एक बडा भाग आज अनुत्पादक-गोष्ठी मे परिणत हो गया है। अनुत्पादक होने पर भी उनकी सुख-सुविधाओ की माँग सर्वोपरि मानी जा रही है। इस प्रकार शासन-व्यवस्था आज समाज के एक महाविराट् शोषक और हिंसा-सस्था के रूप मे परिणत हो गयी है। इसीलिए समाज को हिंसामुक्त करने के लिए उसे शासनमुक्त भी करना होगा। किन्तु किस पद्धति या प्रक्रिया का अनुसरण करने से यह सम्भव हो सकता है? शासन-सस्था पर प्रत्यक्ष रूप से आघात करने से उसका विनाश सम्भव नही होगा। यह सत्य है कि जितने दिनो तक शासन की आवश्यकता रहेगी, उतने दिनो तक शासन-व्यवस्था का सम्पूर्णत विनाश सम्भव नही होगा। शोषण वन्द करने के लिए पहले वह काम करना होगा, जिससे शोषण के लिए स्थान ही न रह जाय। अतएव श्रममूलक स्वावलम्बन और सहयोगी तथा सहकारी वृत्ति का विकास होना आवश्यक है। अर्थात् केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था के स्थान पर विकेन्द्रित और श्रममूलक उत्पादन-व्यवस्था का श्रीगणेश करना होगा। उससे जनशक्ति का विकास होगा। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओ मे से जिनका उत्पादन घर मे ही कर लेना सम्भव हो, उन्हें गृह-उद्योग के रूप में ग्रहण करना होगा। जिनका उत्पादन घर मे कर सकना सम्भव न हो, किन्तु ग्राम में कर सकना सम्भव हो, उन्हे ग्रामोद्योग के माध्यम से तैयार करना होगा। इसी प्रकार जिन वस्तुओ को ग्राम मे उत्पादित कर सकना सम्भव न हो, उन्हे यथाक्रम जिला, राज्य और राष्ट्र मे उत्पन्न करना होगा। साराश यह कि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर स्वावलम्बी और सहकारी आर्थिक पद्धति की स्थापना करनी होगी। इस नवीन व्यवस्था मे यन्त्रो का उपयोग कहाँ तक होगा, इस बारे मे पहले ही विचार किया जा चुका है। केवल उद्योग का ही नही, कृषि-व्यवस्था का भी पूर्णत विकेन्द्रीकरण करना होगा और उसे स्वावलम्बन के आधार पर प्रतिष्ठित करना होगा। इसलिए भूमि का घर-घर मे वितरण करना आवश्यक है, जिससे सभी लोग अपने हाथ से खेती करने का सुयोग पाय और भूमि का पूंजी के रूप मे कोई व्यवहार न कर सके। सबसे अधिक इसी बात की आवश्यकता है और सर्वप्रथम यही होना आवश्यक है। कारण, भूमि से जो उत्पादन किया जाता है, वही मौलिक उत्पादन होता है। अर्थात् अन्यान्य

सभी वस्तुओ का उत्पादन कृषि-उत्पादित वस्तुओ से या उनकी सहायता से होता है। इसलिए कृषि ही उद्योग का आधार है। इस दृष्टि मे भूदान-यज्ञ अहिंसात्मक समाज-निर्माण का आधार है।

पहले ही कहा जा चुका है कि कम्युनिस्ट लोग ऐसा सोचते है कि अत मे राष्ट्र नही रहेगा। वे कहते है कि इस अवस्था को लाने के लिए पहले राष्ट्र के पर्याप्त दृढ होने की आवश्यकता हे। पहले सर्वहारा लोगो का अधिनायकवाद प्रतिष्ठित करना होगा। बाद मे राष्ट्र क्षीण होकर लुप्त हो जायगा। किन्तु, राष्ट्र के अत मे विलोप के लिए आरम्भ से ही उसे क्षीण बनाने का काम शुरू करना होगा। पश्चिम जाने के लिए पूरब की ओर चलने से लक्ष्य तक नही पहुँचा जा सकेगा। इसलिए भूमि-वितरण और गृह-उद्योग की प्रतिष्ठा करने के प्रयत्न के साथ-साथ राष्ट्रीय शासन-शक्ति का भी धीरे-धीरे वितरण करना होगा। शक्ति का वास्तव मे विकेन्द्रीकरण होना चाहिए, जिसमे केवल स्थानीय Administrative Authority की सृष्टि न हो। ग्राम-पचायत वह रूप ग्रहण करेगी। ग्राम के मामलो मे उसकी सार्वभौम सत्ता रहेगी। जैसे, यदि कोई ग्राम यह निश्चय करे कि ग्राम मे मशीन का तेल नही आने दिया जायगा, तो देश के अन्य भागो मे दूसरी व्यवस्था के चलते रहने पर भी उसे अपने सिद्धान्त को कार्यरूप मे परिणत करने का अधिकार प्राप्त होगा। ग्राम-पचायत का क्या रूप है, यह इससे प्रकट होता है। सरकार जो ग्राम-पचायत स्थापित करना चाहती है, वह केवल स्थानीय Administrative Agency (शासन-सस्था) के रूप मे है। वास्तविक ग्राम-पचायत ग्रामवासियो के द्वारा सर्वसम्मति से निर्वाचित होगी। ग्राम-पचायत का सिद्धान्त वोटो से तय नही होगा। इसमे सर्वसम्मति से सभी सिद्धान्त ग्रहण किये जायँगे। ग्राम-पचायत की नीति के सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते है "ग्राम-पचायत की नीति यही है कि भगवान् पॉच व्यक्तियो के माध्यम से बोलते है, अर्थात् पचायत का सर्वसम्मत निर्णय भगवान् का ही विचार मानकर स्वीकार कर लेना उचित है। यदि पॉच व्यक्तियो मे से तीन या चार व्यक्ति एक तरह की बात कहे और बाकी लोग दूसरी तरह की बात कहे, तो वह भगवान् का विचार नही हुआ।" इसी प्रकार क्रमश ग्रामराज की स्थापना की ओर अग्रसर होना होगा।

ग्राम ही यह तय करेगा कि व्यवस्था और उत्पादन का कितना दायित्व

ग्राम ग्रहण करेगा। जितना दायित्व ग्राम ले सकता है, उतना अपने लिए रखकर बाकी दायित्व के विशेष-विशेष भाग आवश्यकता के अनुसार वह क्रमश जिला, राज्य और केन्द्र को सौंप देगा। इसके लिए उन-उन स्थानो मे, अर्थात् ग्राम से जिला, जिला से राज्य और राज्य से केन्द्र को, प्रतिनिधि भेजने की पद्धति भी ग्राम ही निश्चित कर देगा। इस प्रकार शासन-शक्ति और शासन-व्यवस्था का मूल ग्राम मे रहेगा और वह जितना आगे अग्रसर होता जायगा, उसी मात्रा मे केन्द्र की शक्ति क्षीण होते होते क्षीणतम होती जायगी। ग्राम से राष्ट्र तक प्रत्येक सस्था का प्रतिनिधि-निर्वाचन और सम्पूर्ण कार्य-व्यवस्था निष्पक्ष रूप से और सर्वसम्मति से होगी। पक्षगत पद्धति को त्याग देने मे सिद्धान्त-ग्रहण और निर्वाचन में सर्वसम्मति पा सकना कठिन न होगा। राष्ट्र को समाप्त करने की प्रक्रिया मे शक्ति के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किस रूप मे होना उचित है, इसका केवल एक आभास अभी इस रूप मे दिया जा सकता है। समाज इस दिशा में जितना ही अग्रसर होगा, आगे के स्तर की रूपरेखा स्वभावत उतनी ही स्पष्ट होगी।

निरपेक्ष भाव से भूदान-यज्ञ के द्वारा भूमि-समस्या का समाधान होते रहने और गृह-उद्योग आदि की स्थापना के द्वारा उद्योग-व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण होते रहने से जन-साधारण मे आत्मशक्ति का उदय होगा। यह आत्मशक्ति सामुदायिक क्षेत्र मे जनशक्ति कही जाती है। सरकारी सहायता की अपेक्षा न कर और आदर्श को सामने रखकर जनशक्ति के बल पर आगे बढना होगा। जहाज से तुलना करने पर नवीन समाज-रचना मे पूर्ण शासनमुक्त समाज दिशा-निर्णायक यत्र का काम करेगा और स्वतत्र जनशक्ति उसकी Motor Force (बैटरी) होगी।

समाज-व्यवस्था मे यह आमूल परिवर्तन सहज-साध्य करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था मे तदनुरूप आमूल परिवर्तन होना जरूरी है और मनुष्य की प्रत्येक चेष्टा के साथ शिक्षा का सम्बन्ध रहना भी आवश्यक है। इसीलिए महात्मा गाधी ने बुनियादी शिक्षा-व्यवस्था को जन्म दिया। समाज मे बुनियादी मूल्य-परिवर्तन का काम जितना आगे बढेगा, बुनियादी शिक्षा का काम भी उतना ही आगे बढेगा, अन्यथा नही।

यदि चरम लक्ष्य शासनमुक्त समाज की स्थापना है, तो फिर इस दिशा मे

किये जानेवाले प्रयत्नो मे सरकार की सहायता क्यो ली जाती है ? क्या इससे ये प्रयत्न व्याहत नही होगे ? ऐसी शका का समाधान करते हुए विनोवाजी ने कहा है—(१) मोक्ष अथवा शरीर-मुक्ति के लिए साधना शरीर की सहायता से या शरीर के माध्यम से की जाती है। (२) कुल्हाडी से लकडी काटी जाती है, किन्तु उसका बेट लकडी का ही होता है। अच्छी सरकार यही चाहेगी कि उत्तम पद्धति से क्रमश शासन-व्यवस्था लुप्त हो और जनता स्वतत्र जनशक्ति के सहारे अपने पैरो पर खडा होना सीखे। माता-पिता चाहते है कि सन्तान उनकी सहायता की अपेक्षा न कर अपने पैरो पर खडा होना सीखे। इसलिए सरकार यदि सर्वोदय के काम मे सहायता करे, तो उसे ग्रहण करने मे कोई क्षति नही है। हाथ मे तो पूरी कुल्हाडी है ही। यदि हाथ मे केवल कुल्हाडी का बेट ही रहता, तो शका होना ठीक था।

यह अत्यन्त आनद और गौरव की बात है कि महाभारत मे राज्यविहीनता के आदर्श पर प्रतिष्ठित एक देश का वर्णन है।

"न राज्य नैव राजासीत् न दण्डो न च दाण्डिक ।
धर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥"

"उस देश मे कोई राजा नही था। सजा देने के लिए दड नही था। दड-धारी भी कोई नही था। उस देश के सब लोग धर्म-ज्ञान-सम्पन्न थे, इसलिए वे धर्म-बुद्धि के बल पर परस्पर रक्षा करते थे।"

शारीरिक श्रम का महत्त्व

नवीन समाज-रचना या सर्वोदय-स्थापना के लिए प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उत्पादक शारीरिक श्रम किये जाने की आवश्यकता पर क्यो विशेष जोर दिया जाता है, यह अच्छी तरह समझना आवश्यक है। साधना-पद्धति के पीछे जो गम्भीर विचारधारा है, वह समझने से सर्वोदय के पथ पर अग्रसर होने के लिए सब लोग प्रेरणा पा सकेगे। व्यावहारिक दृष्टि से जीवन का आर्थिक क्षेत्र सबसे आवश्यक है। आर्थिक क्षेत्र मे ही सर्वोदय का रूप सबसे अधिक प्रकाशमान होता है। इसीलिए सर्वोदय की स्थापना मे आर्थिक समता सर्वाधिक आवश्यक है। आर्थिक क्षेत्र मे समता-स्थापना का अर्थ यही है कि (१) समाज-उपकारी कोई भी काम क्यो न हो, उसका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए। एक ओर

जिस प्रकार खेतिहर-मजदूर के एक घटे के श्रम का और सुनार अथवा नाई के एक घटे के श्रम का मूल्य समान होगा, दूसरी ओर उसी प्रकार खेतिहर-मजदूर को एक घटे के श्रम का जितना पैसा दिया जायगा, एक वकील को भी उससे अधिक पैसा एक घटे के श्रम के लिए नही दिया जायगा। अर्थात् विभिन्न श्रेणियो के शारीरिक श्रम का मूल्य जिस प्रकार समान होना चाहिए, उसी प्रकार शारीरिक और बौद्धिक काम के मूल्य मे भी कोई पार्थक्य नही रहना चाहिए।

(२) नैतिक और सामाजिक समानता न आने से आर्थिक समानता की स्थापना दुःसाध्य होगी। समाज के लिए खेती के काम की जिस प्रकार आवश्यकता है, अध्यापक के अध्यापन-कार्य की भी वैसी ही आवश्यकता है। नैतिक दृष्टि से इन दोनो का ही समान मूल्य होना उचित है। इसके अतिरिक्त मजदूर और अध्यापक की सामाजिक मर्यादा भी समान होनी चाहिए। अध्यापक को खेतिहर-मजदूर से ऊँचा मानना ठीक नहीं है। खेती और अध्यापन, दोनो कामो का नैतिक मूल्य समान है, सामाजिक मर्यादा भी समान है और सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से खेतिहर-मजदूर और अध्यापक, दोनो ही समान है। समाज की दृष्टि मे यदि इन दोनो कामो की आवश्यकता समान रूप से हो और उनकी मर्यादा भी समान हो, तो आर्थिक क्षेत्र की विचारधारा भी दोनो को समानता की ओर ले जायगी। साराश यह कि एक खेतिहर-मजदूर के पोषण के लिए जितनी वस्तुओ की आवश्यकता है, अध्यापक के पोषण के लिए भी उतनी ही वस्तुओ की आवश्यकता है। अतएव दोनो के पारिश्रमिक मे भेद रहने का कोई कारण नही है।

आज समाज मे बौद्धिक कामो और शारीरिक श्रम के कामो के पारिश्रमिक मे विराट् अन्तर है। सामाजिक क्षेत्र मे भी श्रमजीवी को बुद्धिजीवी की तुलना मे बहुत कम सम्मान मिलता है। यह केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था का परिणाम है, क्योकि केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था मे, अर्थात् बड़े मशीनी उद्योगो मे मैनेजर आदि सभी स्तर के अधिकारियो और मशीनो के निर्माताओ तथा उनको चलानेवाले इञ्जीनियरो आदि को उच्च स्तर का बौद्धिक काम करना पड़ता है। दूसरी ओर, वहाँ मजदूरो के लिए बुद्धिगत कोई काम नही होता। इसीलिए नैतिक और आर्थिक समानता की स्थापना के लिए इस अवस्था का बना रहना सर्वथा अनुकूल नही है। समता की स्थापना के लिए उत्पादन-

व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमे शारीरिक श्रम के काम की अधिक आवश्यकता हो—साथ ही श्रम और बुद्धि का समन्वय हो। उत्पादन-व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के द्वारा यह उद्देश्य सिद्ध होगा। ग्रामोद्योग या गृह-उद्योग में मजदूर और इञ्जीनियर एक ही व्यक्ति होगा, अर्थात् बुद्धिगत काम की आवश्यकता पडने पर मजदूर ही उसे सहज रूप से कर ले सकेगा। इसमे जटिल बुद्धि की आवश्यकता नही है। इसमे बुद्धि की Monopoly (एकाधिकार) नही रहती। इसके अतिरिक्त विकेन्द्रित व्यवस्था मे अलग से सचालक या व्यवस्थापक की आवश्यकता नही है। इसमे इतनी कम पूंजी लगती है कि मजदूर ही उतनी पूंजी लगा सकता है। इस प्रकार गृह-उद्योग मे उद्योग का मालिक स्वय ही एक साथ पूँजीपति, मजदूर, सचालक और इञ्जीनियर होता है। अतएव उसमे समता स्वयमेव स्थापित हो जाती है।

केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था की तुलना मे ग्रामोद्योग मे कई गुना अधिक लोगो के शारीरिक श्रम करने की आवश्यकता होती है। उसमे शारीरिक श्रम भी अधिक करना पडता है। इसके अतिरिक्त आज शारीरिक श्रम के प्रति अग्राह्यता और घृणा का भाव पाया जाता है। समता-स्थापना के क्षेत्र मे वही सबसे अधिक मानसिक प्रतिबन्धस्वरूप है। इसलिए यदि आर्थिक समता की स्थापना करनी हो, तो उसके आधारस्वरूप पहले समाज मे शारीरिक श्रमसम्बन्धी मानसिक परिवर्तन लाना होगा। जिन्हे आज जीविकोपार्जन के लिए शारीरिक श्रम करने की कोई आवश्यकता नही पडती, जो लोग उच्च स्तर की और जटिल बुद्धि के कामो मे कुशल है और समाज मे प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किये हुए है, वे यदि नियमित रूप से प्रतिदिन अपना कुछ समय उत्पादक श्रम में लगाकर अपने भोजन तथा वस्त्र की आवश्यकता पूरी करने की ओर अग्रसर हो, तो लोक-मानस मे एक क्रातिकारी परिवर्तन आयेगा। वकील, डॉक्टर, अध्यापक, उच्चपदस्थ कर्मचारी यदि इस प्रकार नियमित रूप से उत्पादक श्रम करने लगे, तो उसके क्रातिकारी परिणाम की सहज ही कल्पना की जा सकती है। यद्यपि अभी यह आशा दुराशा जैसी लगती है, तथापि अन्य सब लोग अपने जीवन की प्राथमिक आवश्यकता—भोजन और वस्त्र की आवश्यकता—पूरी करने के लिए आगे क्यो नही बढेगे ? द्रोहरहित उत्पादक श्रम को जीवन-निष्ठा के रूप मे सबको ग्रहण करना पडेगा। इसका कारण

यह है कि 'आज विश्व मे अत्यधिक विषमता, दु खकष्ट और पाप श्रम न करने की अभिलाषा के चलते ही विद्यमान है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम से दूर रहना चाहता है, उसे गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करनी पडती है।' इसीलिए भगवान् ने गीता मे कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ-न-कुछ परिश्रम करना चाहिए, उत्पादन करना चाहिए। परिश्रमरूपी यज्ञ मे सब देवता प्रसन्न रहते है। जो इस प्रकार परिश्रमरूपी उत्पादक-यज्ञ नही करेगे, वे चोर होगे—पापी होगे। विनोबाजी कहते है "भगवान् ने जो यह शाप दिया है, वह आर्य-संस्कृति की बात है।

"एव प्रवर्तित चक्र नानुवर्तयतीह य ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघ पार्थ स जीवति ॥"

विनोबाजी आगे कहते है "कुछ लोग अधिक मानसिक परिश्रम करेगे और कुछ लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करेगे, यह बात मै स्वीकार करता हूँ। किन्तु, सबको श्रमनिष्ठ होना होगा। कुछ लोग केवल मानसिक काम करेगे और कुछ लोग केवल शारीरिक काम करेगे—ऐसा विभाजन हम कदापि नही चाहते। सबको दोनो प्रकार के काम करने होगे। भगवान् ने प्रत्येक व्यक्ति को हाथ-पाँव दिये है और बुद्धि भी दी है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को दोनो प्रकार के काम करने होगे। किन्तु आज पश्चिम से एक विचार-धारा इधर लायी गयी है, जिसके फलस्वरूप कुछ लोग केवल श्रमजीवी (Hands) हो जाते है और कुछ लोग केवल बुद्धिजीवी (Heads) रह जाते है। ऐसा विभाजन अत्यन्त खतरनाक है। हम चाहते है कि ऐसी समाज-रचना एक क्षण भी न टिके।"

अपरिग्रही समाज का अर्थ

सर्वोदय-समाज की परिकल्पना में व्यक्तिगत रूप से किसीके पास सचय या सग्रह की बात नही है। वास्तव मे सर्वोदय-समाज असग्रही और अपरिग्रही समाज होगा। इससे किसी-किसी व्यक्ति के मन मे यह बात उठती है कि इस समाज मे कोई दरिद्र तो नही रहेगा, पर समाज की अवस्था बहुत अच्छी नही होगी। किन्तु, यह धारणा गलत है। विनोबाजी ने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन मे बतलाया था कि अपरिग्रही समाज कैसा होगा ? उन्होने कहा "अभी इस

देश मे जिस परिमाण मे दूध का उत्पादन होता है, वह प्रतिव्यक्ति ाई छटाक पडता है। किन्तु, हम जिस असग्रही समाज का निर्माण करना चाहते है, उसमे प्रतिव्यक्ति एक सेर दूध पडेगा। आजकल के सग्रही समाज की यह अवस्था है कि देश की सालभर की आवश्यकता के लिए भी पर्याप्त अनाज रहता है या नही, इसमे सन्देह है। किन्तु, असग्रही समाज मे कम-से-कम दो वर्ष के लिए खाद्य-सामग्रियाँ मौजूद रहेगी। उस समय प्रत्येक घर मे अनाज रहेगा। अभी जिस प्रकार प्यास लगने पर किसी भी घर मे जाकर जल माँगा जा सकता है, उसी प्रकार असग्रही समाज मे भूख लगने पर किसी भी घर मे जाकर भोजन माँगने का अधिकार रहेगा। पीने के जल के लिए जिस प्रकार कोई पैसा नही माँगता, उसी प्रकार असग्रही समाज मे भूखे को भोजन देने के बदले मे कोई पैसा नही माँगेगा। असग्रही समाज चाहता है कि भूखो को भोजन देने के लिए प्रत्येक घर मे पर्याप्त अनाज रहे। यह कोई नयी बात मै नही कह रहा हूँ। उपनिषद् ने यह मत्र दिया है कि अन्न का उत्पादन खूब बढाना होगा। किन्तु, साथ-साथ ब्रह्मविद्या सबको यह शिक्षा देती है कि ससार मिथ्या है, इसलिए आसक्ति मत रखो। ब्रह्मविद्या की शिक्षा यह है—'अन्न बहु कुर्वीत। तद् ब्रह्म'—अन्न खूब बढाओ। हम अन्न की खूब वृद्धि करेगे। इससे घर मे इतना अन्न रहेगा कि कोई भी व्यक्ति उसके लिए कोई मूल्य नही चाहेगा, कोई उसकी बिक्री नही करेगा, बल्कि ऐसा करना मिथ्याचार मानेगा। असग्रही समाज मे शुद्ध घी प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होगा। किन्तु, 'डालडा' नही मिलेगा। तरकारी भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होगी। जिस किसी घर मे जाने पर आप भोजन पा सकेगे। गृहस्वामी आपसे कहेगा—'चलो भाई, दो घटे खेत मे काम किया जाय। अभी तो ६ बजे है, ११ बजे भोजन किया जायगा।' उस समाज मे लोग मछली-माँस खाना छोड देगे। उसके बदले मे गाय का दूध प्रचुर परिमाण मे ग्रहण करेगे। अपरिग्रही समाज मे मधु की महानदी प्रवाहित होगी। जिस प्रकार महानदी जगल से होकर निकलती है, उसी प्रकार मधु भी जगल से आयेगा। इस प्रकार अपरिग्रही समाज मे हम इतना परिग्रह बढाना चाहते है, जितने की लोग कल्पना भी नही कर सकते। किन्तु, हम चाहते है कि वह परिग्रह, वह सग्रह घर-घर मे विभाजित हो। 'अपरिग्रही' का अर्थ है—खब बडा सग्रह, किन्तु वह घर-घर मे बँटा होगा।

"तीसरी वात यह है कि सग्रह मे विना काम की चीजो का स्थान नही होगा। हम सिगरेट की तरह की व्यर्थ चीजो का वोझ नही वढाना चाहते। वैसी चीजो को हम असग्रह की दृष्टि से होली के दिन जला देना चाहते है। अतएव असग्रह का तीसरा अर्थ यह है कि समाज मे व्यर्थ चीजो का सग्रह नही होगा। उसका प्रथम अर्थ यह है कि समाज मे लक्ष्मी की खूब अभिवृद्धि होनी चाहिए, किन्तु व्यर्थ की चीजे नही रहनी चाहिए। शराव की वोतले और सिगरेट के पैकेट लक्ष्मी नही है।

"चौथी वात यह है कि असग्रह या अपरिग्रह का, यद्यपि वह अच्छी चीज है, क्रम निश्चित किया जायगा। आज तो क्रम के सम्वन्ध मे किसी प्रकार का विचार ही नही किया जाता। फालतू चीजे वढायी जा रही है। किन्तु, असग्रही समाज मे (१) सवसे पहले उत्तम खाद्य होना चाहिए। (२) फिर वस्त्र मिलना चाहिए। (३) उसके वाद अच्छा मकान होना चाहिए। (४) फिर उत्तम यत्र आदि प्राप्त होने चाहिए। (५) तव ज्ञानप्राप्ति के लिए उत्तम ग्रन्थादि होने चाहिए। (६) उसके वाद मनोरजन के लिए सगीत आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकार आवश्यकता के गुरुत्व के क्रमानुसार प्रत्येक वस्तु की क्रम-सख्या होगी और तदनुसार ही उन-उन वस्तुओ का उत्पादन वढाना होगा। एक भाई कहते थे कि लोग अच्छे-अच्छे कपडे पहनकर सभा मे आते है, अतएव गरीवी नही है। मै कहता हूँ कि गरीवी तो निश्चित रूप से है, किन्तु लोगो की वुद्धि कम हो गयी है। शहर मे लोग अच्छा भोजन तो नही करते, पर कपडे अच्छे-अच्छे पहनते है। शुद्ध घी नही मिलता, 'डालडा' खाकर रहते है। किसी-किसी घर मे अच्छे भोजन की व्यवस्था नही है अथवा उसकी व्यवस्था नही की जाती, किन्तु कपडे खूव रखे जाते है। उन घरो मे टुथ-व्रश, पेस्ट, लिपस्टिक आदि रहते है। हारमोनियम भी रहता है। अरे भाई, वाजा तो वजाओगे ही, किन्तु पहले खाओ तो, तव वजाना। इस प्रकार कोन वस्तु पहले चाहिए और कौन वस्तु वाद मे, यह हमें देखना होगा। मान लीजिये, हमारे घर मे पर्याप्त दूध नही है, पर्याप्त घी नही है। हम पहले इन चीजो को लायेगे। इस प्रकार असग्रह का चौथा अर्थ हुआ— क्रमानुसार सग्रह।

"पाँचवाँ अर्थ यह है कि अपरिग्रही समाज मे यथासम्भव पैसा कम रहेगा।

पैसा लक्ष्मी नही है, वल्कि राक्षस है। केला, आम, तरकारी, अन्न–ये सब लक्ष्मी है। किन्तु, यह जो पैसा है, वह नासिक के कारखाने मे तैयार होता है। वहाँ कागज से इसे तैयार किया जाता है। केला खरीदना ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार केला लेने के लिए किसीके सामने रिवाल्वर निकालकर कहा जाय कि केला दोगे या नही ? उसमे रिवाल्वर की जगह नोट दिखाकर कहा जाता है—'कहो, केला दोगे या नही ?' रिवाल्वर दिखाकर केला छीन लेना जिस प्रकार चोरी है, डकैती है, रुपये का नोट दिखाकर घी ले जाना भी उसी प्रकार डकैती है। पैसा तो राक्षस का यत्र है। किन्तु लक्ष्मी तो देवी है। लक्ष्मी भगवान् कृष्ण के आश्रम मे रहती है। 'कराग्रे वसते लक्ष्मी' लक्ष्मी का वास हमारे हाथ मे है, हमारी अँगुलियो मे है। ये जो पाँच और पाँच, दस अँगुलियाँ भगवान् ने हमे दी है, उनसे परिश्रम करने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसलिए अपरिग्रही समाज मे जो वस्तु सबसे कम होगी, वह होगी पैसा। पैसा लोगो को ऐसे भ्रम मे डाल देता है कि वस्तुत जो व्यक्ति दरिद्र है, उसीको लक्ष्मीपति मान लिया जाता है और जो व्यक्ति लक्ष्मीपति है, वह दरिद्र माना जाता है। जिसके पास दही, दूध, तरकारी और अन्न आदि है, उसीको दरिद्र कहा जाता है, और जिसके पास ये सब कुछ नही है, केवल पैसा है, उसे धनवान् कहा जाता है।"

ग्रामराज और रामराज

सर्वोदय के आदर्शो पर सघटित ग्राम को विनोबाजी ने 'ग्रामराज' की सज्ञा प्रदान की है। गाधीजी 'रामराज' की स्थापना की वात कहते थे। ये दोनो क्या एक ही चीज है ? मान लीजिये कि भूदान-यज्ञ और सम्पत्तिदान-यज्ञ के सफल होने से भूमि पर स्वामित्व-बोध समाप्त हो गया। जो खेती करना चाहते है, उन्हे ही जमीन मिलती है। प्रत्येक ग्राम जनशक्ति के वल पर जीवन-यापन के लिए प्राथमिक आवश्यकतावाली सभी चीजो को ग्राम मे ही पैदा कर लेता है। प्रत्येक ग्राम आत्मनिर्भर हो गया है। किस चीज का ग्राम मे उत्पादन होगा, इसका निश्चय करने और निश्चय को कार्यान्वित करने का अधिकार ग्रामवासियो ने प्राप्त कर लिया है। राज्यसत्ता का ग्राम-ग्राम मे विकेन्द्रीकरण हो गया है। समाज मे कही भी ऊँच-नीच का भेद-भाव नही है। सभी लोगो

ने जीवन-यापन के समान सुयोग प्राप्त कर लिये है। काम की प्रकृति या प्रकार-भेद के आधार पर आय के ऊँच-नीच का सवाल नही है। सभी कामो का मूल्य समान है।—यही है 'ग्रामराज'। 'ग्रामराज' मे जो भी सिद्धान्त निश्चित होगे या निर्णीत किये जायँगे, वे सबकी सम्मति से। 'ग्रामराज' मे भी मतभेद या विवाद पैदा हो सकता है, पर उसकी मीमासा भी सबकी सम्मति से ही होगी। किन्तु, 'रामराज' में विवाद या मतभेद का जन्म ही नही होगा। वह होगी सम्पूर्णत शासनमुक्त अवस्था। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी विवेक-बुद्धि से चलेगा। अतएव विनोवाजी का 'ग्रामराज' महात्मा गाधी के 'रामराज' की पूर्वसूचना है। इस सम्वन्ध मे विनोवाजी ने अपना विचार प्रकट किया था "जहाँ ग्राम का मतभेद ग्राम मे ही सर्वसम्मति से दूर किया जाय, वहाँ 'ग्रामराज' होगा। मतभेद या विवाद पैदा ही न हो, तो उस अवस्था को 'राम-राज' कहेगे।"

भूदान-यज्ञ के सप्तसूत्री उद्देश्य

अव तक भूदान-यज्ञ के वहुमुखी उद्देश्यो पर विचार किया गया है। भूदान-यज्ञ के उद्देश्यो की व्याख्या करते हुए विनोवाजी ने उसके सप्तसूत्री उद्देश्यो की वात कही है। वे है

(१) गरीवी का नाश।

(२) भूमि के मालिको के हृदय मे प्रेमभाव का विकास करना और उसके फलस्वरूप देश का नैतिक वातावरण उन्नत करना।

(३) एक ओर भूमि-स्वामियो और दूसरी ओर सर्वहारा भूमिहीन गरीवो–इन दोनो के वीच जो श्रेणिगत विद्वेष दिखाई पडता है, वह भूदान-यज्ञ के द्वारा दूर होगा, परस्पर प्रेम और सद्भावना का वन्धन दृढ होगा और परिणाम-स्वरूप समाज शक्तिशाली वनेगा।

(४) यज्ञ, दान और तप—इन तीनो के अपूर्व दर्शन के आधार पर जो भारतीय सस्कृति तैयार हुई थी, उसका पुनरुत्थान और उन्नति होगी। मनुष्य का धर्म-विश्वास दृढ होगा।

(५) देश मे शाति स्थापित होगी।

(६) देश मे शाति स्थापित होने से विश्वशाति की स्थापना मे वहुत सहायता मिलेगी।

(७) भूदान-यज्ञ के द्वारा विभिन्न राजनीतिक दल परस्पर निकट आयेंगे और एक साथ मिलने एव मिलकर काम करने का सुअवसर पायेंगे। इसके फलस्वरूप देश सभी ओर से शक्ति प्राप्त करेगा।

भूदान-यज्ञ के कार्य की तीन दिशाएँ

विनोबाजी कहते है कि भूदान-यज्ञ के कार्य को तीन दृष्टियो से देखा जाता है (१) दया, (२) समाज-रचना ओर (३) नैतिक उपायो का अवलम्बन या अहिंसा का प्रयोग। किसीके दु ख-कष्ट मे पडने पर उसकी तकलीफो को दूर करने के लिए सहायता देने की आवश्यकता पडती है ओर सहायता दी जाती हे। इसे 'दया' का काम कहा जाता हे। एक दृष्टि से भूदान-यज्ञ का काम ऐसा ही दया का काम है। इसके द्वारा भूमिहीन गरीबो को शीघ्रातिशीघ्र कुछ जमीन देने की व्यवस्था करके उनका दु ख-कष्ट दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। आजकल दया के काम को या सहायता के काम को विशेप महत्त्व नही दिया जाता। उसके प्रति विशेष श्रद्धा का भाव प्रदर्शित नही किया जाता। किन्तु, जिस देश मे करोडो लोग असहाय होकर दु ख-कष्ट भोग रहे हो, वहाँ दु ख-कष्ट को कम करने के प्रयत्न को साधारण मानना और केवल समाज-रचना मे परिवर्तन के काम को ही महत्त्व देना ठीक नही है। इसीलिए विनोबाजी कहते है कि "भारत मे इस काम का स्वय ही एक पृथक् मूल्य है। इसलिए दु खी के दु ख को दूर करने का काम गौण या अनादरणीय नही है। अर्थात् इसका स्थायी मूल्य है। इस काम का स्थायी मूल्य है, इसलिए इसके प्रति आकर्षण कम होता हे। हम निरतर हवा लेते हैं। इसलिए वह हम लोगो के लिए स्थायी वस्तु है। इसीलिए यदि हवा की आवश्यकता के बारे मे भापण की व्यवस्था की जाय, तो अधिक श्रोता नही जुटेंगे। किन्तु रोटी के सम्बन्ध मे भापण देना चाहने पर उसे सुनने के लिए बहुत लोग आयेंगे। फिर भी इससे हवा का महत्त्व कम नही होता।" इसलिए भूदान-यज्ञ की एक दिशा है—'दया का काम।'

भूदान-यज्ञ की दूसरी दिशा यह है कि इसके द्वारा समाज-रचना मे परिवर्तन लाया जायगा। विनोबाजी कहते है कि यह एक बुनियादी विचार है। भूदान-यज्ञ के कार्य के द्वारा जीवन-परिवर्तन और समाज-रचना मे परिवर्तन लाने के लिए आधार तैयार किया जा रहा है।

इसकी तीसरी दिशा यह है कि इसमे केवल नैतिक उपायों, अर्थात् अहिंसात्मक उपायों का प्रयोग किया जा रहा है। विनोबाजी कहते है कि जनसाधारण मे अहिंसा की शाब्दिक प्रतिष्ठा तो है, किन्तु अहिंसा के द्वारा वर्तमान समस्याओ का समाधान हो सकेगा, ऐसी श्रद्धा अब भी जनसाधारण मे उत्पन्न नही हुई है। अतएव सिद्धान्तत अहिंसा को मान लेने पर भी जब कोई विशेष समस्या उपस्थित होती है, तो अहिंसा मे विश्वास रखनेवाले लोग भी कार्यक्षेत्र मे अहिंसा को गौण स्थान देकर हिंसा का आश्रय लेते है। सिर्फ यही नही, वे हिंसा का आश्रय लेने के पक्ष मे तर्क भी उपस्थित करते है। अहिंसा के हित के लिए ही इतनी हिंसा करना उचित है, ऐसा आज भी माना जाता है। जगत्-प्रवाह और गांधीजी की शिक्षा, इन दोनो कारणो से अनेक लोगो मे अहिंसा के प्रति निष्ठा उत्पन्न हुई है, किन्तु वे ऐसा विश्वास करते है कि आत्मिक उन्नति के लिए तो अहिंसा अत्यधिक लाभदायक है, परन्तु सामाजिक क्षेत्र मे अहिंसा की कार्यक्षमता के सम्बन्ध मे वे सोचते है कि इस क्षेत्र मे कुछ कम-बेशी करके काम चलाने (Adjustment) की आवश्यकता होती है। वे सोचते है कि भविष्य मे कभी समाज की ऐसी स्थिति हो सकती है कि उसमें अहिंसा सफलता प्राप्त करे। इसलिए वे सोचते है कि समाज की दृष्टि मे भविष्य में और व्यक्ति की दृष्टि मे आज उन्नति के लिए अहिंसा कार्यकारी है, परन्तु आज के समाज मे हिंसा के प्रतिकार के लिए प्रतिहिंसा करनी होगी, बाध्य होकर भी प्रतिहिंसा करनी होगी। साराश यह कि अहिंसा के प्रति कितनी भी श्रद्धा क्यो न हो, सामाजिक क्षेत्र मे अब भी अहिंसा की प्रतिष्ठा नही हुई है। भूदान-यज्ञ की विशेषता यह है कि इसमे एकमात्र नैतिक पद्धति अर्थात् अहिंसा मे श्रद्धा रखी गयी है और कठिनतम समस्या का भी समाधान अहिंसा से होगा, यह विश्वास रखकर उसी तरह काम किया जा रहा है। सामाजिक समस्या के समाधान के क्षेत्र मे भी अहिंसा सफल हो सकती है, इसका एक दृष्टान्त उपस्थित किया जा रहा है। इसीलिए भूदान-यज्ञ की तीसरी दिशा है—नैतिक अर्थात् अहिंसात्मक उपायो का अवलम्बन।

आन्दोलन की अवधि का प्रश्न

सन् १९५७ तक भूदान-यज्ञ का काम समाप्त करने की बात है। भूदान-यज्ञ-सदृश महान् अहिंसात्मक कार्यक्रम की सफलता के लिए समय की

सीमारेखा निश्चित किये जाने पर कुछ लोगो ने आपत्ति की है। काचीपुरम्-सम्मेलन में अपने भापण मे विनोवाजी ने ऐसी आपत्तियो का खडन किया। इसके अतिरिक्त उन्होने वतलाया कि अहिसात्मक कार्यक्रम के लिए समय निश्चित करना आवश्यक हे, क्योकि उससे उपायो को सुधारने का अवसर प्राप्त होता हे। वे कहते हैं "१९५७ साल तक काम समाप्त करने की तीव्र इच्छा अनेक लोगो के मन मे है। इस इच्छा को मैने स्वय ही वढावा दिया है। इसीलिए उसकी पूरी जिम्मेदारी लेकर मै काम कर रहा हूँ। अनेक लोगो ने मुझे इस सम्वन्ध मे सावधान किया है। श्री एम० एन० राय ने लिखा था कि एक निश्चित अवधि रखना और साथ-साथ यह कहना कि हृदय-परिवर्तन के द्वारा काम पूरा करना होगा—ये दोनो परस्पर-विरोधी वाते है। किसी-किसी सज्जन ने मुझसे यह वात भी कही है कि इससे गलत पद्धति अपनायी जाने की आशका है और शीघ्र काम समाप्त करने के प्रयत्न मे हिंसा का मार्ग ग्रहण किया जा सकता है। यह भी एक आपत्ति है कि इसमे सकाम वृत्ति निहित है, जव कि गीता ने निष्काम वृत्ति की शिक्षा दी है। अत यह गीता की शिक्षा के विरुद्ध है। इन तीन आपत्तियो की युक्तिसगतता मैं नही समझ पाता हूँ। फिर भी मैं उनको महत्त्व देता हूँ। निष्काम भाव को मै सेवावृत्ति का प्राण मानता हूँ। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे मन मे अहिसा की अपेक्षा निष्काम भाव के लिए विशेष आदर है। किन्तु, साथ-साथ मैं यह भी कहता हूँ कि निष्कामता और अहिंसा, इन दोनो को मै समान अर्थवोधक (पर्याय) मानता हूँ। इसलिए समय की सीमा वाँध देने से निष्कामता पर आघात पडता है, यह आपत्ति मुझे अधिक तीव्र लगी है। मै चाहता हूँ कि यथासम्भव शीघ्र यह ससार दु ख-दुर्दशा से मुक्त हो। ऐसी इच्छा करना निष्कामता के विरुद्ध नही । इसलिए जल्दी-जल्दी काम करने से निष्कामता को क्षति पहुँचती है, यह मैं स्वीकार नही करता। समय की एक निर्दिष्ट अवधि मै मन मे रखता हूँ और हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार ग्रहण करता हूँ—इन दोनो के वीच कोई विरोध है, ऐसा मै नही मानता। कार्य की अवधि निश्चित करने का उद्देश्य यह है कि कोई काम अनन्तकाल तक पडा न रह जाय। यदि एक पद्धति जनसाधारण के समक्ष रखकर मै कहूँ कि इस पद्धति से पाँच सौ वर्ष वाद काम होगा, तो वह पद्धति

किसी काम की नही साबित होगी। अतएव निर्दिष्ट अवधि के भीतर काम पूरा करना आवश्यक है। किन्तु, यदि इस अवधि के भीतर काम समाप्त न हो, तो क्या गलत मार्ग ग्रहण करना होगा? गलत मार्ग से कभी भी कोई काम नही होगा। फिर भी यह आशका की जा सकती है कि गलत मार्ग ग्रहण किया जायगा। किन्तु किसी-न-किसी प्रकार का खतरा मोल लिये बिना काम आगे नही बढता। इस साहस के बिना काम होता ही नही। इस हद तक सजग रहना हमारा कर्तव्य है और इसका भी खयाल रखना है कि गलत पद्धति न अपनायी जाय और उसके लिए व्यग्रता भी न रहे।"

किसी एक निर्दिष्ट पद्धति से काम पूरा करने के लिए समय निश्चित करने से, यदि सच्चाई के साथ, पूरी शक्ति का प्रयोग करने पर भी उस पद्धति से अभीष्ट सिद्ध न हो, तो उस पद्धति मे सुधार करने का स्वाभाविक अवसर उपस्थित होता है। दूसरी ओर, समय निश्चित न रहने से पूरा समय और शक्ति का प्रयोग करने की प्रेरणा शिथिल पड जाती है। उससे यह बात समझ में नही आ पाती कि पूर्णत उस पद्धति की परीक्षा हुई अथवा नही। पद्धति में सुधार करने का भी स्वाभाविक अवसर कब आया, यह ठीक तरह से अनुभव नही हो पाता। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते है "अवधि निश्चित करने का तात्पर्य यह है कि इससे उपाय मे सशोधन करने का अवसर प्राप्त होता है। एक उपाय हमारे हाथ मे आया है। उसका हम पूर्णरूप से प्रयोग नही कर रहे हैं। ऐसा करने से काम नही होता और नये उपाय की भी खोज नही हो पाती। एक उपाय का हमने पूर्णरूप से परीक्षण किया, अवधि निश्चित करके उसके बीच पूरा काम हुआ—इससे समाधान होता है। पूरी शक्ति लगाने पर भी यदि निश्चित अवधि के भीतर काम न हो, तो सुधार करने का अवसर आता है और दूसरे मार्ग का पता चलता है। मैं सबको यह बता देना चाहता हूँ कि पूरी शक्ति न लगाकर यदि हम समय नष्ट कर दे, तो यह भूल होगी। उपाय मे सुधार करने के लिए यह आवश्यक है कि निश्चित अवधि के भीतर हम अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक साथ काम मे लगे रहे। फल को भगवान् पर छोडकर निष्काम भाव से काम मे लगे रहना आवश्यक है।"

भूदान-आन्दोलन में नेतृत्व और गणसेवकत्व

मध्यप्रदेश मे भूदान-यज्ञ की प्रगति आशा के अनुरूप नही हो रही

थी। वहाँ ऐसे विशिष्ट प्रभावशाली नेताओ ने भूदान-यज्ञ मे आत्मनियोग नही किया था कि जिनके व्यक्तिगत प्रभाव से आन्दोलन की गति तीव्र होती। ऐसी अवस्था मे वहाँ के कार्यकर्ताओ ने सन् १९५५ मे राज्य मे सघन सामूहिक पद-यात्रा का कार्यक्रम अपनाया। थोडे-थोडे कार्यकर्ताओ का एक-एक पदयात्री-दल बनाया गया। इस प्रकार कई दलो ने एक ही क्षेत्र के विभिन्न भागो में पदयात्रा की। एक इलाका समाप्त होने पर दूसरे इलाके मे वे प्रवेश करते। उनके आगे वढने पर स्थानीय नये-नये कार्यकर्ता आकर उन दलो मे योगदान करते। कार्यकर्ता सम्मिलित भाव से निवेदन करते। इसके फलस्वरूप वहाँ आन्दोलन की उत्तम प्रगति हुई और प्रचुर मात्रा मे भूमि आदि मिली। वे अकेले-अकेले जो काम नही कर सके थे, वह उनकी सामूहिक चेष्टा से पूरा हुआ। काचीपुरम्-सर्वोदय-सम्मेलन मे विनोबाजी ने सामूहिक कार्यक्रम की इस सफलता का उल्लेख किया था। इस प्रसग मे उन्होने भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सामूहिक सेवाकार्य के दार्शनिक पहलू की व्याख्या की थी और भूदान-आन्दोलन मे नेतृत्व के स्थान के सम्वन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व की व्याख्या की थी। उन्होने कहा था कि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन पदयात्रा के माध्यम से आगे बढ रहा है। इसलिए उसमे अखिल भारतीय नेतृत्व का निर्माण नही हो रहा है। यह भूदान-आन्दोलन का एक विशेष महत्त्व है। जनक्रान्ति का काम स्थानीय रूप से सफल होता है और वातावरण के माध्यम से वह विश्व मे चारो ओर प्रसारित हो जाता है। वुद्ध भगवान् का उदाहरण देते हुए उन्होने कहा कि वुद्ध भगवान् अखिल भारतीय नेता नही हो सके थे। वे केवल पाली-भापा मे अपने विचार प्रकट करते थे और प्रयाग से गया तक भ्रमण करते थे। किन्तु, उनके विचार सारे विश्व मे फैल गये थे, क्योकि वे विचार विश्वव्यापी होने के उपयुक्त थे और उनका जीवन भी उन विचारो के अनुरूप था। विनोवाजी ने कहा कि "वे पैदल भ्रमण कर रहे है, इसलिए स्थानीय नेतृत्व हो रहा है।" यहाँ उन्होने एक विशेष महत्त्वपूर्ण वात कही। उन्होने कहा कि "नेतृत्व स्थानीय तो हो रहा है, किन्तु स्थानीय नेतृत्व से काम नही हो रहा है। काम हो रहा है स्थानीय सेवकत्व से, क्योकि यदि हम सेवक के रूप मे जनसाधारण के पास जायँगे, तो हम जमीन पायेगे। नेता के रूप मे उनके पास जाने से जमीन नही मिलेगी। आज ही सवेरे मैं

कह रहा था—हम अपने स्वामी के सेवक हैं। इसीमे हमारी शक्ति है। रघुनाथजी को जगाने के लिए तुलसीदासजी क्या करते थे, जानते है ? वे गाते थे—'जागिये रघुनाथ कुँवर'। तमिल भक्त भी इसी प्रकार गाते थे। वे गीत भी गाते थे और भजन भी। इसी प्रकार प्रभु को जगाना होता है। लोक-हृदय मे जो प्रभु विराजमान हैं, उन्हे जगाने के लिए हमे भक्त होकर उनके पास जाना होगा। तभी वे जागेगे।" इसके बाद उन्होने मध्यप्रदेश के सामूहिक कार्यक्रम का उल्लेख करके कहा "किन्तु, इस वर्ष जो कुछ हुआ है, वह यही कि व्यक्ति-सेवकत्व के स्थान पर गण-सेवकत्व हो सकता है।" उन्होंने आगे कहा "इसी प्रकार जनशक्ति के द्वारा काम हो सकता है। व्यक्ति के नेतृत्व के अभाव मे गण-सेवकत्व सफल हो सकता है। गत वर्ष यह सिद्ध हो चुका है।" रूस मे अभी जो कुछ हो रहा है, उसके साथ उन्होने गण-सेवकत्व की तुलना की। रूस व्यक्तिपूजा (Personality Cult) तथा व्यक्ति-नेतृत्व को त्यागकर गण-नेतृत्व की ओर झुक रहा है। रूस कह रहा है कि व्यक्ति-विशेष का नेतृत्व नहीं चलेगा—गण-नेतृत्व चलेगा। भूदान-यज्ञ मे वैसे ही गण-सेवकत्व का प्रयोग किया जा रहा है।"

उक्त सामूहिक कार्यक्रम की चर्चा करते हुए विनोबाजी ने कहा "मैं उसे उत्साहित करना चाहता हूँ। हमारे काम मे नेतृत्व भी नही है और प्रभुत्व भी नही है। तेलुगु भाषा मे 'प्रभुत्व' शब्द का अर्थ है 'सरकार'। हमारे काम मे सेवकत्व है। किन्तु यह सेवकत्व गण-सेवकत्व हो सकता है। एक-एक गण-समुदाय समाज-सेवा के लिए बाहर निकल पडे। इस प्रकार के थोडे-बहुत शिविर भी चलने चाहिए। यह गण-सेवकत्व बहुत फलदायी सिद्ध होगा।"

विनोबा कर्मयोगी अथवा ज्ञानयोगी ?

भूदान-यज्ञ का तत्त्व और विचारधारा समझने के लिए यह जानना विशेष आवश्यक तो नहीं है कि विनोबाजी कर्मयोगी है या ज्ञानयोगी, किन्तु यह जान लेने से भूदान-यज्ञ के विचार-प्रचार के लिए विनोबाजी किस विषय को विशेष महत्त्व देते है और क्यो देते है, यह बात अच्छी तरह समझ में आ जायगी। घर छोडकर महात्मा ाधी के आश्रम में सम्मिलित होने के समय

से अब तक विनोबाजी का जीवन जिस रूप मे चल रहा है, उस पर विचार करने से इस सम्बन्ध मे ठीक धारणा कायम करने मे सुविधा होगी। वे आश्रम मे भोजन बनाने के काम से लेकर पाखाना साफ करने तक के कामो को निष्ठा-पूर्वक किया करते थे। वे जिस समय जो काम करते थे, अपना शरीर पूर्णत थक न जाने तक उसे करते रहते थे। देश-सेवा का काम भी वे इसी प्रकार करते थे। उन्होने सूत-कताई का काम किया—बुनाई का काम भी किया। सूत-कताई मे उन्होने इतनी दक्षता प्राप्त की कि अब तक वह मद नही पडी है। वे प्रतिदिन निरन्तर आठ घटे सूत कातने और बुनने का काम करते थे और उसके द्वारा जीविकोपार्जन सम्भव है या नही, इसकी परीक्षा करते थे। आश्रम मे सहकर्मियो के साथ उन्होने खेती का काम किया, पर वे ऋषियो की तरह खेती करने लगे। अर्थात् खेती मे वे बैल आदि की सहायता न लेकर अपने हाथ से ही सारा काम करते थे ओर अपनी आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्न पैदा करते थे। इस तरह के और भी अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते है। आज पॉच वर्षो से वे निरन्तर पद-यात्रा करके देश के एक राज्य से दूसरे राज्य मे और ग्राम-ग्रामान्तर मे घूमते फिर रहे है। यह सब कर्मयोग का कार्यक्रम है। यह देखकर मन मे यह बात आ सकती है कि वे कर्मयोगी है। किन्तु, उनकी जीवन-धारा और जीवन-गति को जरा गम्भीरतापूर्वक देखने से यह बात समझ मे आयगी कि वे मूलत ज्ञानयोगी है। किशोरावस्था मे वे कॉलेज मे पढते थे, किन्तु उनका मन दूसरी ओर लगा था। भगवान् ने उनके हृदय मे वैराग्य और गृहत्याग का सकल्प उत्पन्न कर दिया। वे ईश्वर-प्राप्ति की आशा मे हिमालय जाने के लिए घर छोडकर निकल पडे। किन्तु उनका परिचय महात्मा गाधी से हो गया और उन्होने अनुभव किया कि जिस उद्देश्य से वे हिमालय जाना चाहते थे, वह महात्मा गाधी के पास रहने से सिद्ध हो सकता है। तीस वर्ष तक वे उनके साथ रहे और उनके निर्देशानुसार काम करते रहे। काम मे निमग्न रहते हुए भी उनका अन्तर निर्लिप्त था। उस समय उनके मन की अवस्था कैसी थी, इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा है "किन्तु, मै अपने मन मे यह अनुभव करता था कि मै हिमालय मे बैठा हूँ। यद्यपि वे सब कार्यक्रम कर्मयोग के थे और मेरी मनोवृत्ति ज्ञानयोग की थी, तथापि उस समय की बातो को जब मै याद करता हूँ, तो बहुत आनन्द अनुभव

करता हूँ। कर्मयोग के जो सब काम मुझे मिले थे, वे देशसेवा के काम थे। किन्तु, जनसेवा के वे काम चुपचाप बैठकर करने होते थे। इसीलिए उन सेवा के कामो के बीच भी मैं आत्मचिन्तन के लिए यथेष्ट समय पा जाता था और उन दोनो के बीच किसी प्रकार का विरोध भी नही होता था। मुझे अध्ययन करने की धुन थी। इसलिए कुछ शास्त्रो, कुछ ऋषियो के ग्रन्थो, कुछ धर्मो और कुछ भाषाओ का अध्ययन मैंने किया। एकान्त मे रहने पर भी मैं जगत् का निरीक्षण करता था। मेरा चित्त जाग्रत् और साक्षी-स्वरूप था। इसलिए दुनिया का रूप मैं स्पष्ट रूप मे देख पाता था।" इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि अभी वे जो प्रचार-कार्य कर रहे है, वह वे किसी प्रचार-वृत्ति के वशीभूत होकर नही करते। वे कहते हैं "जिस व्यक्ति ने अपना युवाकाल एकान्त मे बिताया, वह वृद्धावस्था मे प्रचारक नही हो सकता।" वे प्रेम का प्रचार कर रहे हैं—ज्ञान का प्रचार कर रहे है। 'परमेश्वर ने जो ज्ञान मुझे दिया है, उसका मैं जनसाधारण मे वितरण करूँगा'—इस प्रेरणा से उद्बुद्ध होकर उन्होने अतीतकाल के साधु-सन्तो की परम्परा मे ज्ञानप्रचारार्थ प्रव्रज्या ग्रहण की है।

पश्चिम बगाल के अपने भ्रमण-काल मे कुछ दिनो सन्ध्या समय उन्होने बगाल के कार्यकर्ताओ के समक्ष आध्यात्मिक जीवन-निर्माणसम्बन्धी कुछ आवश्यक विषयो के सम्बन्ध मे प्रवचन किये थे। एक दिन उन्होने कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के सम्बन्ध में प्रवचन किया था और यह समझाया था कि उनके बीच क्या पार्थक्य है। उन्होने कहा था "यह सत्य है कि कुछ लोगो के लिए ज्ञानमार्ग ही आसान होता है। जिन्हे बचपन मे प्रेम का अनुभव नही है, जिनके माता-पिता बचपन मे ही मर गये हैं और दूसरो ने उनका पालन किया है, उनकी उपेक्षा ही की गयी है, उनके लिए प्रेम की अपेक्षा चिन्तन और ध्यान ही अधिक स्वाभाविक है। जिन्हे प्रेम की अनुभूति न हुई हो, उनके लिए प्रेम का मार्ग कठिन और ज्ञान का मार्ग आसान मालूम हो सकता है। देह से अपने को अलग करने का चिन्तन भी उनके लिए आसान हो सकता है। परन्तु यह बात तो कुछ विशेष व्यक्तियो के लिए है।" विनोबाजी ऐसे ही एक विशेष व्यक्ति है, जिनके लिए ज्ञान का मार्ग अधिक सहज हो गया है। इस प्रसग मे उन्होने और भी कहा है . "ज्ञानमार्ग कहता है कि

जो कुछ होता है, वह सब मिथ्या है। ऐसा मानना कठिन है। जो हो रहा है, उसे 'नही हो रहा है' मानना कठिन है। मनुष्य इसे तुरन्त ग्रहण नही कर सकता। किसी काम की निन्दा या स्तुति न करनी चाहिए, क्योकि वह जो करता है, वह सब मिथ्या है, स्वप्न है। स्वप्न मे कोई राजा बनता या भिखारी बनता है। उसके सुख-दु ख, दोनो ही मिथ्या है। दुनिया में भी जो भी कुछ हो रहा है, जो कुछ चल रहा है, सब मिथ्या है—ऐसी कल्पना कर लेने से मनुष्य बच जाता है। वैसे अपनी बात कहूँ, तो मुझे यह कल्पना बहुत जँच गयी है। मुझे लगता है कि जो कुछ हो रहा है, वह सब भ्रम ही है। अपने चिन्तन के कारण, मुझे लगता है कि मेरे सामने कुछ है ही नही।" ये उनके मुख से निकले हुए वचन है। वे ज्ञानयोगी है, किन्तु महात्मा गाधी ने उन्हे कर्मयोग की दीक्षा देकर इस मार्ग पर उनके जीवन-निर्माण का प्रयत्न किया था। इस प्रकार ज्ञानयोग के दृढ आधार पर कर्मयोग का एक मनोरम भवन उठ खडा हुआ है। इसीलिए उनका व्यक्तित्व एक अपूर्व महिमा से मडित है। सन्यास और ज्ञानवृत्ति जिसके साथ जन्म से है, वही आबाल्य-सन्यासी सबके हित के लिए आज एक अत्यन्त महान् ब्रह्मकर्म मे लीन है।

विनोबाजी की वृत्ति ज्ञानाभिमुखी है। इसीलिए भूदान-यज्ञ तथा सर्वोदय के काम मे वे ज्ञान-प्रचार या विचार-प्रचार पर विशेष जोर देते है। विचार-बुद्धि जाग्रत करने से सत्य पर प्रतिष्ठित यह विचार जनसाधारण निश्चय ही ग्रहण करेगा। इसी विश्वास पर निर्भर होकर इतनी दूर बढ सकने मे वे सफल हुए है और दिन-दिन नवीन ढग से विचार-विश्लेषण कर रहे है। एक ही विषय पर वे नित्य नया प्रकाश डाल रहे है। ऐसे अपूर्व ढग से वे विचार-विश्लेषण करते है कि मनुष्य की विचार-बुद्धि जाग्रत न हो, इसका कोई कारण नही रह जाता।

युगानुकूल दो पद्धतियों का अनुसरण

इस आन्दोलन की उद्देश्य-सिद्धि के लिए दो साधना-पद्धतियो का एक साथ ही अनुसरण किया जा रहा है। एक है—आध्यात्मिक विकास के लिए चेष्टा और दूसरी है—जन-जाग्रति। भूमि पर सबका समान अधिकार है। धन केवल व्यक्तिगत भोग के लिए नही है। वह समाज का है। व्यक्तिगत

रूप से मनुष्य समाज का एक संरक्षक मात्र है। यह ज्ञान जनसाधारण में जाग्रत होने पर उसकी प्रतिक्रिया के दबाव से जिन लोगों के पास अधिक सम्पत्ति है, वे उसे दिये बिना नहीं रह सकेंगे। किन्तु, यदि केवल इस प्रकार जाग्रति हो और दूसरा कुछ न किया जाय, तो इसके फलस्वरूप हिंसा के प्रति झुकाव होगा। इसीलिए इसके साथ-साथ मनुष्य में आध्यात्मिकता का विकास होना चाहिए। सभी प्राणियों में एक ही आत्मा विराजमान है। इसलिए मनुष्य अपने को जैसा समझता और देखता है, दूसरों को भी वैसा ही समझेगा और उसी दृष्टि से देखेगा। सबकी आत्मा समान रूप से जाग्रत और विकसित हो सकती है। इससे धनी का भी हृदय-परिवर्तन होगा। इसके अतिरिक्त यह जनसाधारण को सत्य और अहिंसा के पथ का अनुसरण करने की दीक्षा देगा। इसीलिए इन दोनों प्रकार की चेष्टाओं को युगानुकूल होना चाहिए, अन्यथा खतरे की सम्भावना रह जायगी। विनोबाजी युग के अनुसार इन दो दिशाओं में अग्रसर हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है "पहली बात यह है कि अन्तर-स्थित भगवान् पर हमारा भरोसा है। जल्दी हो या देर से, भगवान् जाग्रत होंगे और मनुष्य को सुपथ पर चलने की प्रेरणा देंगे। दूसरी बात, हम ऐसी स्थिति का निर्माण करने की चेष्टा कर रहे हैं कि जिसमें जन-जाग्रति आये और लोग दान दिये बिना न रह सकें। इस प्रकार हम लोग दोनों प्रकार से जाग्रति लाने की चेष्टा कर रहे हैं—(१) नैतिक जाग्रति, जिससे हृदय-परिवर्तन होगा और (२) लोक-मानस में चेतना का सचार। यदि केवल जनसाधारण में चेतना आये और नैतिक जाग्रति न आये, तो हिंसात्मक शक्ति जाग्रत हो सकती है। दूसरी ओर यदि केवल नैतिक जाग्रति हो, तो उद्देश्यसिद्धि में बहुत दिन लग जायँगे। जिस प्रकार उड़ने के लिए पक्षी को दोनों ही पखों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सत्संकल्प की सिद्धि के लिए अतर्जाग्रति और वाह्य परिवर्तन, दोनों आवश्यक होते हैं।"

बुद्धि, श्रद्धा और निष्ठा

बुद्धि दिशा-प्रदर्शन करती है और हृदय कर्म में प्रेरणा देता है। नाव की पतवार नाव किस ओर जायगी, यह दिखा देती है और डाँड अपनी शक्ति के

द्वारा नाव को चलाते है। वुद्धि है, पतवार ओर हृदय या श्रद्धा है डॉड। श्रद्धा मोटर-शक्ति (Motor Force) हे और वुद्धि स्टेयरिंग (Steering) है। जीवन का कोई मौलिक सिद्धान्त जव सामने उपस्थित होता है, तव मनुष्य वुद्धि के द्वारा उस विचार को समझ लेता है। तव वह सिद्धान्त किस ओर ले जायगा, यह वह हृदयगम कर पाता है। इतना होने पर भी वह विचार यदि उसके हृदय का स्पर्श न करे, तो वह उस कर्म मे प्रेरणा प्राप्त नही कर सकता। दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति की वुद्धि प्रखर न हो और वुद्धि के द्वारा वह विचार को भलीभाँति समझने मे सक्षम न हो, अथवा सिद्धान्त ने उसके हृदय का स्पर्श किया है अर्थात् उस सिद्धान्त के प्रति उसमे श्रद्धा उत्पन्न हुई है। ऐसी अवस्था मे उस सिद्धान्त की विचारधारा अच्छी तरह न समझने पर भी श्रद्धा के वल पर वह आन्तरिक भाव से काम कर लेगा। श्रद्धा और विश्वास एक ही चीज है। श्रद्धा रहने पर विश्वास आयेगा ही। अहिंसा के काम मे श्रद्धा या विश्वास की ही सवसे अधिक आवश्यकता होती है। भूदान-यज्ञ के क्षेत्र मे भी यही वात है। यदि विनोवाजी तेलगाना के पोचमपल्ली ग्राम से प्रगाढ श्रद्धा और ज्वलन्त विश्वास लेकर अग्रसर न होते, तो क्या इस स्थिति मे आ पहुँचना सम्भव होता ? अहिंसा-मूलक सिद्धान्त की विचारधारा धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त होती है। इसीलिए उसे पूरा करने के लिए पहले श्रद्धा लेकर आगे वढना होता है। किन्तु इस आन्दोलन की आज वह स्थिति नही है। भूदान-यज्ञ की विचारधारा आज इतनी आगे वढ गयी है कि गम्भीर रूप से उसे समझ लेने के लिए पूरा अवकाश उपलब्ध है। अतएव जहाँ शिथिलता या निष्क्रियता दिखाई पडेगी, वहाँ समझना पडेगा कि श्रद्धा और विश्वास का अभाव है। विनोवाजी कहते है "ससार मे कुछ काम वुद्धि के द्वारा करने होते है और कुछ श्रद्धा के द्वारा। दोनो ही परस्पर पूरक है। दोनो की ही आवश्यकता है। वुद्धि और श्रद्धा के सम्वन्ध में मै इस प्रकार व्याख्या करता हूँ—वुद्धि वह वस्तु है, जो प्रमाण के अभाव मे किसी वात को स्वीकार नही करती। और, श्रद्धा वह है, जो किसी विशेष विषय को स्वीकार करने के लिए प्रमाण नही माँगती।" जैसे वच्चा माता का स्तन-पान करने के पूर्व यह प्रमाण प्राप्त करने की चेष्टा नही करता कि स्तन मे सार पदार्थ है और उससे उसका पोषण होगा। श्रद्धावश

वह बिना प्रमाण के ही स्तन-पान करता है। इसीलिए विनोबाजी कहते है "इसी कारण किसी-किसी विषय मे हमारी श्रद्धा रहनी चाहिए।"

श्रद्धा के साथ कार्य-सम्पादन करने मे जितना ही फलोदय होता है, उतनी ही निष्ठा पैदा होती है। काम मे जितनी अभिज्ञता होती है, निष्ठा भी उतनी ही दृढ होती है। श्रद्धा और निष्ठा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा है "श्रद्धा एक दृढ दीवाल की तरह है। वह या तो सीधी खडी रहेगी या जमीन पर गिर जायगी। वह होगी तो पूर्ण रूप से और नही होगी तो सर्वथा नही। जिस प्रकार कोई मनुष्य या तो सम्पूर्ण रूप से जीवित ही रह सकता है या सम्पूर्ण रूप से मृत ही। जिस प्रकार कोई मनुष्य ४०, ५०, ६० प्रतिशत भाग जीवित और ६०, ५०, ४० प्रतिशत भाग मृत नही हो सकता, उसी प्रकार श्रद्धा कभी भी आंशिक नही हो सकती। श्रद्धा बिना कोई भी महान् काम कभी पूरा नही हो सकता। कर्म श्रद्धा का अनुसरण करता है और कर्म के पीछे निष्ठा आ जाती है। निष्ठा पैदा होने के पूर्व मनुष्य श्रद्धा के साथ काम करता है। अभिज्ञता मे सफलता प्राप्त होने मे निष्ठा का उदय होता है। किसी काम को आरम्भ करने के पहले उसमें मनुष्य की श्रद्धा रहने की आवश्यकता होती है। हम नैतिक शक्ति के द्वारा इस समस्या का समाधान करना चाहते है। अतएव कार्य-सिद्धि के उपाय में हमारी दृढ श्रद्धा रहने की आवश्यकता है।"

ज्ञान और विज्ञान

विज्ञान शक्ति और गति प्रदान करता है और ज्ञान पथ-प्रदर्शन करता है। जहाँ आत्मज्ञान होता है, वहाँ परमात्मा की ओर मार्ग जाता है। जहाँ अहिंसा होती है, वहाँ महाकल्याण की ओर मार्ग जाता है। जिस प्रकार आत्म-ज्ञान और अहिंसा मार्ग दिखाती है, उसी प्रकार हिंसा और अज्ञान भी मार्ग दिखाते है। तब यह है कि हिंसा और अज्ञान जो पथ दिखाते है, वह विनाश का होता है, अकल्याण का होता है। विज्ञान मोटर-शक्ति (Motor Force) है और आत्मज्ञान, अहिंसा, अज्ञान और हिंसा स्टेयरिंग (Steering) है। विज्ञान नाव की डाँड है और आत्मज्ञान या अहिंसा, अथवा अज्ञान या हिंसा पतवार है। अतएव विज्ञान हिंसा का साथ देने पर अत्यधिक अनिष्ट करता

है। प्राचीनकाल मे विज्ञान की उन्नति नही हुई थी, इसीलिए युद्ध छिडने पर हाथ से युद्ध होता था। जो लोग युद्ध मे योगदान करते थे, हानि-लाभ उन्हीका होता था। आजकल विज्ञान की अत्यधिक उन्नति करने के कारण युद्ध छिडने पर सारा ससार उसमे पड जाता है और क्षति का पारावार नही रहता। हिंसा के साथ मिलकर विज्ञान ने 'ऐटम (अणु) वम' का निर्माण किया है। उसी प्रकार अहिंसा या आत्मज्ञान ने भी विज्ञान की सहायता से देश-विदेश मे प्रसारित और प्रचारित होने का सुयोग पाया है। विज्ञान को यदि कल्याणदायिनी शक्ति के रूप मे प्राप्त करना हो, तो उसके साथ आत्मज्ञान या अहिंसा का मेल कराना होगा और अज्ञान अथवा हिंसा के साथ विज्ञान का सम्वन्ध सदा के लिए तोड देना होगा। ऐसा न होने से ससार द्रुतगति से विनाश की ओर अग्रसर होता रहेगा।

गांधीवादी-दर्शन की तीन नीतियाँ

गावीवादी-दर्शन का लक्ष्य है अहिंसक समाज की रचना या सर्वोदय-समाज की स्थापना। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए महात्मा गावी ने तीन नीतियों की वात कही थी। गावीजी की विचारवारा को समाज-रचना मे कार्यान्वित करने के लिए जरूरी है कि व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे इन तीन नीतियो की प्रतिष्ठा करायी जाय। अहिंसक-समाज की रचना के लिए जो कुछ कार्यक्रम अव तक प्रस्तुत किये गये है और किये जा रहे है, वे सव इन तीन नीतियो मे ही निहित है। भूदान-यज्ञ का कार्यक्रम भी इन्ही तीन नीतियो के अन्तर्गत है। ये तीन नीतियाँ है (१) वर्ण-व्यवस्था, (२) ट्रस्टीशिप और (३) विकेन्द्रीकरण।

(१) वर्ण-व्यवस्था—वर्ण-व्यवस्था की वात सुनकर अनेक लोग चौक सकते है। इसमे आश्चर्य कुछ भी नही है, क्योकि वर्ण-व्यवस्था के मूल मे पवित्र कल्पना रहने पर भी समाज ने इसे विकृत करके जातिभेद, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच भेद और धन-वैषम्य आदि के द्वारा अपना अध पतन कर लिया है। इस कारण वर्ण-व्यवस्था के सम्वन्ध मे लोगो के मन मे इन सव वडी मामाजिक ग्लानियो की वात जमी हुई है। किन्तु, गावीजी अहिंसात्मक समाज-रचना के क्षेत्र मे जिस अर्थ मे इसका प्रयोग करना चाहते थे, उसके

साथ विकृत वर्ण-व्यवस्था की इन सब ग्लानियों का किसी प्रकार का मम्पर्ग नही है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि समाज में जो सब महान् शब्द परम्परा मे चले आ रहे है, उनका परित्याग न करके समाज के नवीन प्रयोजनो के अनुसार उनमे नवीन अर्थ भरकर उन शब्दो को चलाते रहना भी एक अहिंसात्मक प्रक्रिया है। इसी भाव से वर्ण-व्यवस्था को अहिंसक समाज-रचना का एक अविच्छेद्य अग माने जाने के उपयुक्त बनाकर गाधीजी उसका प्रयोग करते थे। अतएव 'वर्ण-व्यवस्था' शब्द के व्यवहार पर आपत्ति होने का कोई कारण नही है। शब्द का विशेष कुछ मूल्य नही है। किस अर्थ मे उसका प्रयोग किया जा रहा है, यही मुख्य बात है।

अहिंसक समाज-रचना के क्षेत्र मे प्रयुक्त वर्ण-व्यवस्था का मूलभूत सार यह है—(क) सभी प्रकार के कामो का समान पारिश्रमिक और समान मर्यादा, (ख) प्रतियोगिता का अभाव और (ग) शिक्षा-व्यवस्था मे वश-परम्परागत सस्कृति का प्रयोग। अहिंसक समाज-रचना मे इन तीनो ही चीजो की सबसे अधिक आवश्यकता है। यदि गाधीजी दूसरे देश मे दूसरी सस्कृति मे जन्म ग्रहण करते, तो इस सम्बन्ध मे 'वर्ण-व्यवस्था' शब्द सम्भवत उनके मन मे न आता। उपर्युक्त तीनो भावो के द्योतक अन्य किसी उपयोगी शब्द का वे प्रयोग करते।

श्री किशोरलाल मश्रूवालाजी ने वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या करते हुए लिखा है "साधारणत लोग पिता की जीविका को अपनाते है। उससे समाज के जीवन मे स्थिरता आती है, सन्तान को व्यवस्थित शिक्षा देने मे सुविधा होती है और उस काम की वैज्ञानिक उन्नति के लिए वह विशेष सहायक होता है। यदि सभी कामो का पारिश्रमिक एक हो या लगभग समान हो और मर्यादा भी समान हो, तो विशेष अवस्था को छोडकर साधारणत लोग दूसरी वृत्ति ग्रहण करने की ओर आकर्षित न होगे। साधारणत ऐसा समझा जाता है कि माता-पिता की वृत्ति के प्रति रुचि और उनकी कुशलता सन्तान के रक्त मे समा जाती है। इस विश्वास को भ्रान्त मान लेने पर भी इस विषय मे कोई सन्देह नही है कि जीवन-पर्यन्त और वशानुक्रम से एक ही वृत्ति अपनाने मे शारीरिक गठन मे स्थायी परिवर्तन हो जाता है और वह परिवर्तन सन्तान मे भी आने की विशेष सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त

सन्तान बचपन से ही माता-पिता की वृत्तिवाले वातावरण मे पलती है। इन दोनो कारणो से पिता के पेशे की शिक्षा ग्रहण करने मे बच्चे को अधिक सहूलियत होती है। इस कारण समस्त जीवन का साधारण नियम यह होना उचित है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीविका के लिए अपने पिता के पेशे को या उस पेशे की किसी शाखा को या उस पेशे के किसी विकसित रूप को धर्म मानकर ग्रहण करे। सम्पूर्णत कोई भिन्न पेशा अपनाना अवाछनीय है। यदि यह एक बार निश्चयपूर्वक तय हो जाय कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीविकोपार्जन के लिए अपने माता-पिता के पेशे को ग्रहण करेगा, तो आज एम० ए० पास करने के बाद भी लोग जो यह निश्चित नही कर पाते कि वे कौन पेशा अपनायेगे, वैसी दर्दनाक स्थिति नही रह जायगी, क्योकि वैसा होने से एक निर्दिष्ट उद्देश्य लेकर आरम्भ से ही लोगो को शिक्षा देने की व्यवस्था होगी।"

निम्नलिखित विशेष-विशेष क्षेत्रो मे पेशा अपनाने के नियम का उल्लघन किया जा सकता है

(१) यदि पिता की वृत्ति मूल नीति के विरुद्ध हो, तो उस वृत्ति में परिवर्तन लाया जा सकता है और वैसा करना उचित होगा।

(२) यदि किसी व्यक्ति मे अन्य किसी पेशे के उपयुक्त गुण का विशेष विकास परिलक्षित हो, तो जीविका के लिए तो वह पैतृक पेशा ही अपनायेगा, पर सेवा के लिए कोई पारिश्रमिक न लेकर दूसरा काम भी कर सकेगा। उदाहरणस्वरूप, यदि किसी किसान के पुत्र मे एक सैनिक के गुणो का विकास हो जाय, तो वह जीविका के लिए खेती का काम करेगा और देश-सेवा के लिए विना पारिश्रमिक लिये सैनिक का काम कर सकेगा।

(३) समाज के परम्परागत किसी व्यवसाय मे आमूल या हितकारी परिवर्तन करने के उद्देश्य से यदि नवीन दृष्टिकोणवाले कार्यकर्ताओ के निर्माण की आवश्यकता हो, तो अन्य वृत्तिवाले लोग भी सेवार्थ उस काम को ग्रहण कर सकेगे। उदाहरणस्वरूप आज नवीन समाज की रचना के लिए बुद्धिजीवी लोगो मे से ऐसे कार्यकर्ताओ की आवश्यकता है, जो खेती, पशु-पालन आदि के काम मे लग सके।

इस देश मे जमीन कम है, इसलिए सभी किसानो को जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त जमीन दे सकना सम्भव नही है। इस कारण पूरक वृत्तियो

के रूप मे किसानो को दूसरे-दूसरे गृह-उद्योग चलाने होगे। इसके अतिरिक्त नवीन समाज-रचना मे मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास पर विशेष जोर दिया जाता है। किसान यदि केवल खेती ही करेंगे, तो उनके व्यक्तित्व का विशेष विकास नही होगा। इसीलिए ऐसा सोचा गया है कि किसानो के घरो मे अन्यान्य उद्योग भी चलेंगे। अतएव बहु-उद्योगी परिवारो (Multicraft Family) का निर्माण करना वाछनीय है। यह क्या वर्ण-व्यवस्था के ढग की चीज नही होगी ? नही, वैसी बात नही है। यदि आज समाज में जीविकोपार्जन की व्यवस्था के लिए या व्यक्तित्व के विकास के लिए पिता को एक से अधिक काम करना पडे, तो पुत्र भी जीविकोपार्जन के लिए ठीक वही काम करेगा। कोई मुख्य रूप से कोई भी काम क्यो न करता हो, विनोबाजी सबको कुछ समय के लिए नियमित रूप से खेती करने के लिए कहते है, क्योकि खेती सर्वोत्तम शारीरिक श्रम और श्रेष्ठ उद्योग है। इस प्रकार खेती का काम जो लोग करेगे, वह जीविकोपार्जन के अग के रूप मे करेगे या सेवार्थ करेगे, यह उनकी मुख्य वृत्ति की आय के परिमाण पर निर्भर करेगा। यदि मुख्य वृत्ति की आय पर्याप्त हो, तो वह व्यक्ति सेवार्थ खेती करेगा। उदाहरण-स्वरूप जज साहब सेवार्थ खेती का काम करेगे। अन्यथा उनका वेतन इतना कम होना आवश्यक है कि खेती की आय मिलाकर उनकी जीविका चल सके। यदि जुलाहे को बुनाई मे पर्याप्त आय नही होगी, तो खेती ही उसकी पूरक वृत्ति होगी।

यदि वर्ण-व्यवस्था के अनुसार सभी कामो का आर्थिक मूल्य समान हो और उनकी मर्यादा भी समान हो, तो बुद्धिजीवी लोग भी स्वास्थ्य-लाभ और जीवन-विकास के लिए क्रमश खेती का काम या शारीरिक श्रमवाला कोई काम करने की ओर आकर्षित होगे।

(२) ट्रस्टीशिप—वर्ण-व्यवस्था की ही भाँति 'ट्रस्टी' या 'ट्रस्टीशिप' की बात भी अनेक लोगो को अच्छी नही लगती। इसका कारण यह है कि कानून के अनुसार नियुक्त ट्रस्टियो मे बहुत हद तक सच्चाई का अभाव देखा गया है और उन लोगो ने अपनी शक्ति तथा अधिकारो का दुरुपयोग करके अपने को जनसाधारण का कोप-भाजन बना लिया है। इसीलिए बहुत-से लोग यह सन्देह करते थे कि गाधीजी ने राजाओ, जमीन्दारो, पूँजीपतियो

और अन्यान्य स्वार्थी व्यक्तियो की रक्षा के लिए ट्रस्टीशिप का प्रवर्तन कर उन्हे एक और रक्षा-कवच प्रदान कर दिया है। यह आशका पूर्णत निराधार है। व्यक्तिगत रूप से किसी भी व्यक्ति के पास थोडी भी सम्पत्ति रहे, यह गाधीजी नही चाहते थे। जो हो, कानून मे 'ट्रस्टी' शब्द का अर्थ और उद्देश्य बहुत पवित्र है। सत्याग्रही गाधीजी ने उसी अर्थ मे उसे अपनाया था। गीता मे बताये हुए अपरिग्रह, समभाव आदि विचार उनके हृदय मे जम गये थे। व्यावहारिक जीवन मे उन पर किस प्रकार आचरण किया जायगा, इसी बारे में विचार के क्रम मे उन्होने 'ट्रस्टी' शब्द को उपयोगी पाकर ग्रहण किया था। कानून मे 'ट्रस्टी' शब्द का जो अर्थ है, वह तो गाधीजी के ट्रस्टीशिप मे निहित है ही, इसके अतिरिक्त नैतिक दृष्टि से और भी जो-जो अर्थ हो सकते है, वे भी उसमे शामिल है। विनोबाजी 'ट्रस्टीशिप' के स्थान पर 'विश्वास-वृत्ति' शब्द का प्रयोग करते है। अब इस बात पर विचार किया जाय कि गाधीजी के 'ट्रस्टीशिप' सिद्धान्त की भावधारा क्या है ?

ससार मे जो कुछ है—चल-अचल, स्थूल-सूक्ष्म, बाह्य-अन्तर, दृश्य-अनुभव-योग्य आदि—सबका मालिक भगवान् है। मनुष्य किसीका भी मालिक नही है। शरीर, मन, बुद्धि, शक्ति और कुशलता का भी मालिक मनुष्य नही है। स्वामित्व भगवान् का है। उदाहरणस्वरूप कल-कारखानो का मालिक, उनके मैनेजर, डाइरेक्टर, शेयरहोल्डर मजदूर आदि नही, बल्कि ईश्वर है। जिस व्यक्ति के हाथ मे जमीन है, वह उसका मालिक नही है। जमीन का मालिक भगवान् है। सिर्फ यही नही, मजदूरो की परिश्रम-शक्ति के भी मालिक मजदूर नही है, वकीलो की बुद्धि-शक्ति के मालिक वकील नही है, शासक की राजशक्ति का मालिक शासक नही है, पुलिसवालो की शक्ति के स्वामी पुलिसवाले नही है, सबका मालिक भगवान् है। कानून के अनुसार ट्रस्टीशिप मे ट्रस्ट-सम्पत्ति का मालिक रहना चाहिए और ट्रस्ट-सम्पत्ति की आय के उपभोग के लिए हिताधिकारी (Beneficiary) रहने चाहिए। गाधीजी द्वारा परिकल्पित ट्रस्टीशिप मे ट्रस्ट-सम्पत्ति का स्वामी भगवान् है और उसकी हिताधिकारिणी हे सम्पूर्ण सृष्टि, जैसे कल-कारखानो से सम्बद्ध मजदूर, मैनेजर, पूंजीपति आदि ही कारखाने की आय का भोग करने के अधिकारी नही है, बल्कि सभी लोग, यहाँ तक कि

मनुष्येतर प्राणी भी उस आय का भोग करने के अधिकारी है। तब इस मामले मे मनुष्य का अग्राधिकार रहेगा। जिसके पास जो कुछ है, वह अपने को उसका ट्रस्टी मानेगा। वह यत्नपूर्वक उन सामग्रियो की रक्षा करेगा और मितव्ययी बनकर फल-भोग करेगा। वातावरण की स्थिति के अनुसार वह उन सामग्रियो का न्यूनाधिक ग्रहण करेगा और बाकी सब सेवार्थ अर्पित करेगा। अपने शरीर को भी मनमाने तौर पर काम मे लाकर नष्ट करने का अधिकार किसीको नही हे। वह तो सम्पूर्ण सृष्टि की सेवा के लिए है। इसलिए यत्न और सतर्कता के साथ शरीर की रक्षा करनी होगी और आवश्यकता होने पर सेवार्थ उसका विसर्जन करना होगा। मनुष्य की शक्ति, बुद्धि, कुशलता, क्षमता, अधिकार आदि के सम्बन्ध मे भी यही बात है। सभी चीजे सम्पूर्ण सृष्टि की सेवा के लिए है।

गाधीजी इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने देना चाहते थे क्या ? नही, ऐसी बात नही हे। जब तक सम्पत्ति-परिग्रह-प्रथा का अन्त नहीं हो पाता, तब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति जिनके पास हे या रहेगी, उन्हे कौन दृष्टिकोण अपनाना होगा और इतने दिनो तक व्यक्तिगत सम्पत्ति उनके पास किस रूप मे रहेगी, इसी समस्या को हल करने के लिए ट्रस्टीशिप की आवश्यकता अनुभव की गयी। वे केवल ट्रस्टी के रूप मे उन्हे ग्रहण कर रहे है, ऐसी मनोवृत्ति उनमे पैदा होनी चाहिए और तदनुरूप आचरण उन्हे करना चाहिए।

एक बात और हे। मान लिया जाय कि व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त हो गयी अथवा वह इतनी कम हो गयी कि उसका महत्त्व कुछ नही रहा। तब क्या ट्रस्टीशिप नीति के प्रयोग की समाज मे आवश्यकता नही रहेगी ? नही, ऐसी बात नही है। शिक्षा आदि के द्वारा क्रान्ति के पथ पर बढ रहे समाज मे मनुष्यो के बीच की दैहिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति तथा योग्यता की विषमता को कम तो किया जा सकता हे, पर कुछ विषमताएँ सदा विद्यमान रहेगी। अतएव मनुष्य सर्वदा ही अपने को अपने शरीर, मन और बुद्धि का ट्रस्टी मानकर तदनुरूप आचरण करेगा और उनका सेवार्थ प्रयोग करेगा।

कानून के अनुसार, किसी नाबालिग की सम्पत्ति ट्रस्टियो के हाथ में जाने पर ट्रस्टियो का यह कर्तव्य होता है कि वह नाबालिग जब बालिग हो

जाय, तब उसकी सम्पत्ति उसे अर्पित कर दे। जब तक देश की जन-सख्या कम थी और भूमि अधिक थी, तब तक भूमि-समस्या पैदा नही हुई थी। इसके बाद जनसख्या मे उत्तरोत्तर होनेवाली वृद्धि के दबाव से देश मे करोडो भूमिहीन गरीबो का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु इतने दिनो तक वे बेहोश रहे—निद्रा मे पडे रहे। अब वे जाग गये है। करोडो भूमिहीन नाबालिग अब बालिग हो गये है। इसलिए अब भूमिवान् ट्रस्टियो का कर्तव्य है कि वे हिताधिकारी (Beneficiary) भूमिहीन गरीबो को उनकी भूमि वापस कर दे। यही भूदान-यज्ञ का आह्वान है।

कोई-कोई व्यक्ति गाधीजी के 'ट्रस्टीशिप' का गलत अर्थ लगाते है। इस सम्बन्ध मे बोलते हुए विनोबाजी ने सम्प्रति ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के अर्थ पर नवीन प्रकाश डाला है। इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा है "मै यह कहना चाहता हूँ कि कोई-कोई व्यक्ति गाधीजी के ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त का गलत अर्थ लगाते है।

"ट्रस्टीशिप का प्रथम सिद्धान्त यह है कि ट्रस्टी अपने को पिता के स्थान पर मानेगे। पिता पुत्र का अपनी अपेक्षा अधिक अच्छो तरह भरण-पोषण और सरक्षण करता है। कोई भी पिता ऐसा नही कहता कि मै जितनी अपनी परवाह करता हूँ, पुत्र की भी ठीक उतनी ही परवाह करता हूँ। बल्कि, पिता कहता है कि मै अपने से अधिक अपने पुत्र का ध्यान रखता हूँ। इसी प्रकार ट्रस्टी भी अपने को पिता-स्वरूप ही मानेगे। किन्तु, केवल इतने से ही ट्रस्टीशिप का उद्देश्य पूरा नही होता। ट्रस्टीशिप का दूसरा सिद्धान्त यह है कि पिता चाहता है कि पुत्र शीघ्रातिशीघ्र उसके बराबर हो जाय, उसके समान योग्यता प्राप्त कर ले और अपने पैरो पर खडा होना सीखे। स कार गाधीजी का सिद्धान्त बहुत गम्भीर है।" अतएव समाज मे एकाध परिवर्तन आने से या कुछ सस्कार आ जाने से ही ट्रस्टीशिप का उद्देश्य पूरा नही हो जाता। मजदूरो की मजदूरी तो बढा दी जाती है, पर मालिक और मजदूर, इन दोनो वर्गो को स्थायी बनाये रखने के लिए मालिक को मालिक और मजदूर को मजदूर बनाकर रखा जाता है। इससे न तो ट्रस्टीशिप हुआ और न सर्वोदय ही।

(३) विकेन्द्रीकरण—विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध मे अन्यत्र विचार

किया जा चुका है। यहाँ केवल एक-दो विषयों का उल्लेख किये जाने की आवश्यकता है।

(क) मशीन-युग के आविर्भाव के पूर्व देश की अर्थ-व्यवस्था और उद्योग-समूह विकेन्द्रित थे। अब जो विकेन्द्रीकरण की बात कही जा रही है, उसमें क्या नवीनता रह सकती है? इस आशंका का समाधान होना चाहिए। मशीन-युग के पहले सब विकेन्द्रित तो थे, पर विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था नहीं थी। उस समय ग्राम-ग्राम में उद्योग-धंधे छोड़े हुए थे। उनके पीछे कोई सुपरिकल्पित व्यवस्था नहीं थी, कोई संगठन भी नहीं था। इसीलिए मशीन-युग के प्रथम आघात से ही सब उद्योग-धंधे चूर-चूर हो गये थे। नवीन समाज-रचना की परिकल्पित विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था मशीन-युग के तथा विज्ञान के सभी अवदानों को प्रयोग में लायेगी और शक्ति-सञ्चय करने योग्य उनमें जो कुछ है, उन सबको ग्रहण करके उत्तरोत्तर अधिक शक्ति-सम्पन्न बनेगी। लक्ष्य यह रहेगा कि मशीन-युग या विज्ञान के किसी अवदान को ग्रहण करने के फलस्वरूप किसी प्रकार की बेकारी, आलस्य और बुद्धि की जड़ता का जन्म न हो। इस प्रकार मशीन-युग में जो कुछ ग्रहण-योग्य होगा, उन सबको विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था ग्रहण करेगी। पहले जो विकेन्द्रित उद्योग थे, उनमें यह शक्ति नहीं थी। सभी दृष्टि से विचारी हुई कोई व्यापक योजना भी उनके सामने नहीं थी। वर्तमान विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था मशीन-युग में जो कुछ अच्छा है, उन सबको हजम कर लेगी और अन्त में मशीन-युग को ही समाप्त कर देगी। पहले के विकेन्द्रित उद्योगों और आज की विकेन्द्रीकरण-योजना या परिकल्पना के बीच इतना बड़ा पार्थक्य है।

(ख) विकेन्द्रीकरण का अर्थ केवल उद्योगों का विकेन्द्रीकरण नहीं है, राज्य-शक्ति का विकेन्द्रीकरण भी इसमें निहित है। इसके अतिरिक्त समाज के जिस किसी क्षेत्र में, जहाँ भी क्षमता केन्द्रीभूत हो गयी है, उसका विकेन्द्रीकरण भी इसमें शामिल है।

सूतांजलि

महात्मा गांधी का प्रथम श्राद्ध-दिवस १२ फरवरी, १९४८ को देश में सर्वत्र मनाया गया था। महात्मा गांधी के देहावसान के उपरान्त उनके

कार्यो को अच्छी तरह चलाने के लिए क्या व्यवस्था की जाय, इस बारे मे विचार करने के लिए मार्च, १९४८ मे सेवाग्राम मे रचनात्मक कार्यकर्ताओ का एक सम्मेलन बुलाया गया। उस सम्मेलन मे महात्मा गाधी की विचार-धारा को माननेवालो का एक भ्रातृ-समाज (Brotherhood) कायम किया गया। उसका नाम 'सर्वोदय-समाज' रखा गया। सर्वोदय-समाज के सिद्धान्त के अनुसार सर्वोदय-योजना के व्यापक प्रचार के लिए प्रत्येक वर्ष १२ फरवरी को देश मे स्थान-स्थान पर मेलो का आयोजन होता है। सूताजलि अर्पित करना उस मेले का एक मुख्य कार्यक्रम होता है। गाधीजी पर जो लोग श्रद्धा करते है और शारीरिक श्रम का आदर्श मानते है, उन सबको अपने हाथ से काता हुआ एक गुडी सूत (६४० तार) सर्व-सेवा-सघ के लिए अर्पित करना होता है।

सूताजलि का कार्यक्रम आत्मनिर्भर ग्रामराज के निर्माण तथा शासन-मुक्त समाज की प्रतिष्ठा के लिए अपरिहार्य कार्यक्रम है। कारण, (१) सूताजलि प्रचलित होने से सारे देश मे एक कर्ममय उपासना प्रचलित होगी। इसमे जनसाधारण एक स्वाभाविक आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त करेगा। (२) सर्वोदय-प्रतिष्ठा के लिए शारीरिक श्रम के आदर्श का अनुसरण करना अपरिहार्य है। सूत कातना द्रोह-रहित उत्पादक श्रम का प्रतीक है। इसलिए वह श्रम-यज्ञ के अनुरूप आहुति है। (३) अपने हाथ मे काता हुआ सूत अर्पित करने का अर्थ होता है, आत्मनिर्भर ग्रामराज तथा सर्वोदय के लिए वोट देना। एक गुडी ही देनी होगी, अधिक नही, क्योकि इससे यह समझा जा सकेगा कि जितनी गुडियॉ प्राप्त हुई है, उतने लोगो ने सर्वोदय के पक्ष मे वोट दिया है। सूताजलि के रूप मे यदि अर्थसग्रह करना इसका उद्देश्य होता, तो एक व्यक्ति के एक से अधिक गुडी अर्पित करने पर प्रतिबन्ध नही रहता। (४) सूताजलि-अर्पण मे कितनी विराट् शक्ति निहित है, इस सम्बन्ध मे अब भी लोग जागरूक नही हुए है। मान ले कि प्रत्येक मेले मे सूत का पहाड खडा हो जाय, तो क्या विचार मन मे आयेगा ? विनोबाजी कहते है कि ऐसा होने से लगेगा कि हनुमान चित्रकूट-पर्वत ले आये है।

सर्वोदय का रूप ग्रामोद्योग-प्रधान होगा। खादी ग्रामोद्योगो का केन्द्र-स्वरूप है। महात्मा गाधी खादी को ग्रामोद्योगरूपी सौरमडल का सूर्य कहते

थे। स्वाधीनता-आन्दोलन के समय खादी को स्वाधीनता का परिधान (Livery Of Freedom) कहा जाता था। विनोबाजी कहते है कि अब खादी 'साम्ययोग का सकेत-चिह्न' बन सकती है। इसीलिए सूताजलि सर्वोदय-साधना के कार्यक्रम में क्रमश प्रधान स्थान ग्रहण कर लेगी, इसमे सन्देह नही है। जिन सब भूमिहीन गरीबो मे भूमि-वितरण किया गया है और किया जायगा, वे सब जब विचार को समझकर श्रद्धासहित नियमित रूप मे सूताजलि अर्पित करने लगेगे, तभी भूमि-वितरण का उद्देश्य सार्थक मानना होगा।*

समन्वय

बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन की एक बडी देन है—विनोबाजी द्वारा बोधगया मे 'समन्वय-आश्रम' की स्थापना। विनोबाजी ने बोधगया मे 'समन्वय-आश्रम' नामक एक आश्रम की स्थापना करनी चाही। इसका लक्ष्य है—वेदान्त के सत्य और बौद्ध अहिंसा का समन्वय। इसीलिए विनोबाजी की इच्छा हुई कि बोधगया के विश्व-प्रसिद्ध बौद्ध-मदिर के पास ही आश्रम के लिए थोडी जमीन मिलती, तो अच्छा होता। वहाँ सहज ही कोई जमीन प्राप्त नही होती, किन्तु भगवान् की ऐसी लीला हुई कि विनोबाजी को इच्छित स्थान पर ही ५ बीघा जमीन प्राप्त हुई। यह जमीन स्थानीय शकर-सम्प्रदाय के मठ ने सानन्द आश्रम-निर्माण के लिए दान मे दी। जमीन बोधगया मदिर के निकट ही है। इसके अतिरिक्त वहाँ से शकर मठ के साथ सम्बन्ध-स्थापना भी सहज है। सम्मेलन के आरम्भ मे काका कालेलकर ने समन्वय की व्याख्या करते हुए एक सारगर्भित भाषण किया। विनोबाजी के अनुरोध पर सम्मेलन मे योगदान करनेवाले सदस्यो और कार्यकर्ताओ ने २० अप्रैल (१९५४) को दिन-रात के परिश्रम मे उस जमीन में एक कुआँ खोदकर उक्त आश्रम की स्थापना की दिशा मे एक कदम उठाया। सम्मेलन के घर आदि तोडकर उनके बाँस, फूस इत्यादि चीजे लेकर २२ अप्रैल की रात को उस जमीन पर एक कुटिया का भी निर्माण किया गया। २३ अप्रैल को प्रात काल विनोबाजी सम्मेलन-स्थान से वहाँ गये और उस कुटिया में तीन दिनो तक रहकर

---

* सन् १९५६ में ६ लाख ३१ हजार गुडी सूताजलि प्राप्त हुई है।

"एक ईश्वर ही है और सब शून्य है, हम सब शून्य है। उसीके अन्तर्गत उसीकी लीला मे हमने ये सब रूप पाये है। शून्य का भी एक रूप होता है। उसका भी एक आकार दिखाई पडता है। वह निराकार नही है। इसी प्रकार हमे भी आकार मिला है। इसीलिए हमे शून्य हो जाना पडेगा।"

हमे 'सर्वोदय'-रचना के माध्यम से सामुदायिक अहिसा की प्रतिष्ठा करनी होगी। सामुदायिक अहिसा का मूल है—आत्मा की एकता का दर्शन। सभी प्राणियो मे एक ही आत्मा विराजमान है—यही अनुभूति है। यही सामुदायिक अहिसा की जड है। यही वेदान्त है। यह अनुभूति रहने से ही सामुदायिक क्षेत्र मे समता-स्थापना की प्रेरणा आती है। इसलिए सत्य या वेदान्त के साथ अहिसा के समन्वय का प्रयोजन आज अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वेदान्त या आत्मज्ञान दिशा-निर्देश करता है। परन्तु कर्म मे अग्रसर होने की प्रेरणा और शक्ति देती है अहिसा। अतएव सामुदायिक समता-स्थापना के क्षेत्र मे यह सत्य या आत्मज्ञान और अहिसा परस्पर पूरक है। इसी कारण आज समन्वय की इतनी आवश्यकता है। समन्वय-आश्रम की स्थापना की यही मूल बात है। यदि अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय, तो यह बात समझ मे आयगी कि आज सभी क्षेत्रो में समन्वय की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव की जा रही है। विभिन्न धर्मो के बीच, विभिन्न आदर्शो और 'वादो' के बीच, ससार के विभिन्न वर्णो और जातियो के बीच समन्वय आज आवश्यक हो गया है। सब प्रकार के समन्वय का मूल है सत्य और अहिसा का समन्वय। अतएव विनोबाजी द्वारा प्रतिष्ठित 'समन्वय-आश्रम' का भविष्य अपरिमित सम्भावनाओ से पूर्ण है। वह इस युग के अतर्राष्ट्रीय सास्कृतिक केन्द्र के रूप मे परिणत और परिगणित होगा, ऐसी आशा करना दुराशा नही है।

समन्वय-आश्रम की स्थापना के पीछे जो महान् आदर्श और उद्देश्य निहित है, वह विनोबाजी के श्रीमुख से निसृत अमृतमयी वाणी से और भी स्पष्ट हुआ है। समन्वय-आश्रम की स्थापना का एक और मुख्य उद्देश्य है—ध्यानयोग और कर्मयोग के बीच समन्वय-स्थापना। विनोबाजी ने समन्वय और समन्वय-आश्रम सम्बन्धी विचार प्रकट करते हुए (सितम्बर, १९५५ मे) कहा है "समन्वय का अर्थ यह नही है कि ससार के कुछ धर्म अपूर्ण

है और उन अपूर्ण धर्मों का समन्वय करना होगा। सभी धर्म पूर्ण है। तब, उन सबमे जो विशिष्टताएँ है, उनका समन्वय करना होगा।

"उस आश्रम से कुछ पाने की मुझे आशा है। एक तो यह कि ध्यानयोग और कर्मयोग की अभिन्नता किस प्रकार प्रमाणित की जाय, इसका प्रयोग वहाँ चले। भारत में ध्यानयोग का जिस प्रकार विकास हुआ है, उस प्रकार और कही नही हुआ है। सम्भवत सूफियो मे वैसा विकास हुआ था। किन्तु, इस ध्यानयोग की साधना मे थोडी त्रुटि रह गयी थी। श्रम और कर्म से विमुख होकर एकान्त मे साधना की जाती थी। इसका अर्थ यह नही है कि वे सब साधक आलसी थे। वे तो श्रम करते ही थे। उनकी जीवन-यात्रा अत्यन्त कठोर थी। परन्तु, वे उत्पादक श्रम नही करते थे। ऐसा विश्वास किया जाता था कि ध्यानयोग के लिए कर्मत्याग आवश्यक है। अतएव साधक श्रम-विमुख हो गये। समाज मे उत्पादक श्रम की प्रतिष्ठा कम हो गयी। समाज ने उन सब साधको के भरण-पोषण का भार ग्रहण कर लिया। अब मै चाहता हूँ कि ऐसे साधको की सृष्टि हो, जो अपने भरण-पोषण का भार समाज पर न छोडे, स्वय उत्पादक श्रम करे।

"इस उत्पादक श्रम को मै 'ब्रह्मकर्म' कहता हूँ। साधक श्रम कर रहे हैं, ऐसा बाहर से दिखाई तो पडेगा, पर उसका कोई भार साधक के मन पर नही पडेगा। हम साँस लेते है, यह देखा जाता है, किन्तु साँस लेने मे हमे किसी तरह का कष्ट नही होता। इसी प्रकार साधक 'ब्रह्मकर्म' करते तो रहेंगे, पर हृदय से वे अखड रूप से ध्यानमग्न रहेंगे। जैसे साँस लेते समय हम यह अनुभव नही करते कि हम साँस ले रहे है, उसी प्रकार अविरत कर्म करते रहने पर भी साधक को यह अनुभव नही होगा कि वह काम कर रहा है। कर्म के कारण उसकी समाधि भग नही होगी।

"समाज में ऐसे ज्ञान-प्रचारक सेवको की आवश्यकता बराबर रही है, जो प्रव्रज्या ग्रहण करके अखड भाव से भ्रमण करते फिरे। हिन्दू सन्यासियो, बौद्ध भिक्षुओ, जैन मुनियो एव अन्य साधु-सतो ने भारत मे इस परिव्राजक-वर्ग को जीवित रखा है। इन परिव्राजको की तपस्या के कारण ही हमारी सस्कृति इतनी विविधताओ से समृद्ध हुई है, प्राणवती हुई है। उसे कितने ही आघात सहने पडे है, फिर भी वह जीवित है। अनासक्त वृत्ति से ग्राम-

ग्राम मे ज्ञानप्रचार करते फिरें, ऐसे सेवको की अत्यन्त आवश्यकता है। इस बारे में समन्वय-आश्रम सहायता कर सकेगा। आज तक यह परिव्राजक-वर्ग भिक्षा-वृत्ति के द्वारा जीवन-यापन करता आ रहा है। जिन लोगो ने समाज मे भिक्षा-वृत्ति प्रचलित करायी थी, वे स्वय उच्चकोटि के साधक थे। भिक्षा-वृत्ति के द्वारा जीवन-यापन करने से साधक की उन्नति तो होती ही है। जन-सम्पर्क एव जनता-जनार्दन के दर्शन पाने का वह एक सुन्दर उपाय है। मै उस भिक्षा-वृत्ति के साथ शारीरिक श्रम के व्रत को जोड देना चाहता हूँ। परिव्राजक जहाँ रहेगे, वहाँ वे कोई-न-कोई उत्पादक श्रम अवश्य करेंगे।

"उस श्रम के द्वारा जो उत्पन्न होगा, उस पर उनका अपना अधिकार है—ऐसा वे नही सोचेंगे। उक्त उत्पादन भी वे समाज को अर्पित करके जो कुछ उनके अपने जीवन-यापन के लिए जरूरी होगा, उसे वे नम्रतापूर्वक ग्रहण करेगे। यदि इस प्रकार भिक्षा-वृत्ति के साथ ब्रह्मकर्म को जोड दिया जाय, और ध्यानयोग तथा कर्मयोग की अभिन्नता प्रमाणित करने के लिए चेष्टा की जाय, तो जीवन मे एक नया आलोक आयेगा।

"उस क्षेत्र मे साधक की साधना सामूहिक साधना मे परिणत होगी। साधक यह जानेगे कि समाज के साथ उनका अभेद्य सम्बन्ध है और वे समाज-रूपी Living Organism (जीवित सस्था) के एक अविभाज्य अग है। जलविन्दु का जीवन जिस प्रकार सागर के साथ समरस होने पर ही सम्भव होता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी समाज मे रहकर ही सम्भव है। दो अवस्थाओ मे मनुष्य का जीवन समाज से पृथक् रह सकता है। पहली अवस्था है मृत्यु और दूसरी है मुक्ति। समाज से अलग होकर जीवित रह सकना सम्भव नही है।"

विनोबाजी की मौलिकता

भूदान-यज्ञ का मूल गाधीजी की विचारधारा मे है—इस बात का हमने एकाधिक बार उल्लेख किया है। किन्तु, विनोबाजी ने इसे जिस प्रकार देश के समक्ष उपस्थित किया है, वह मौलिक है। इसे प्रकाश में लाने का उनका ढग अपना है। जिस गम्भीरतम आध्यात्मिकता के दृष्टिकोण से भूदान-यज्ञ की विभिन्न दिशाओ का वे विचार करते हैं, वह उनका अपना

है। अतएव विनोबाजी गाधीजी के असमाप्त कार्य को पूरा तो कर रहे हैं, परन्तु उसकी प्रत्येक तह में, प्रत्येक कण मे विनोबाजी की मौलिक छाप है। वे गाधीजी के अनुकरण नही है, वे मौलिक हैं। गाधीवादी विचार को वे एक नवीन आलोक मे उद्भासित कर हमारे समक्ष उपस्थित कर रहे हैं। विनोबाजी को समझने के लिए इस बात को याद रखना होगा। उन्होने जहाँ से जो पाया है, उसे अपना बना लिया है। वह बात जब उनके मुँह से निकलती है, तब लगता है कि कोई नयी चीज प्रकट हो रही है। यही विनोबाजी की विशिष्टता है। विनोबाजी ने गाधीजी के पास से कितना पाया है और दूसरो के पास से कितना पाया है—ऐसे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होने सन् १९४८ मे जो मन्तव्य प्रकट किया था, उसमे विनोबाजी की उक्त मौलिकता की बात विशेष रूप से प्रकट होती है। उन्होने कहा "गाधीजी के पास से तो मैंने परिपूर्ण रूप से प्राप्त किया है। किन्तु, उनके अतिरिक्त अन्य लोगो से भी बहुत चीजे पायी हैं। जिसके पास से मैंने जो कुछ पाया है, उसे मैंने अपना बना लिया है। अब वह सम्पूर्ण पूंजी मेरी ही हो गयी है। उसमें गाधीजी का दिया हुआ कितना है और दूसरो का दिया हुआ कितना है, इसका हिसाब मेरे पास नही है। जिस विचार को मैंने सुना है और जिसे उचित पाकर मैंने हजम कर लिया है, वह मेरा ही हो गया है। वह पृथक् कैसे रहेगा? मैंने केला खाया और उसे हजम कर लिया एव उससे निर्मित माँस मेरे शरीर से जुड गया, तब वह केला कहाँ प्राप्त होगा? वह तो मेरे शरीर के रक्त-मास मे परिणत हो गया। इसी प्रकार जिस विचार को मैंने ग्रहण किया है, वह तो मेरा ही हो गया है।"

आन्दोलन का भावी स्वरूप

एक लक्ष्य तय करके घोषणा की गयी है कि सन् १९५७ साल के अन्त तक अहिंसात्मक ढग से देश की भूमि-समस्या का समाधान करना होगा, अर्थात् भूमि-वितरण का वर्तमान असाम्य दूर करना होगा। इस बात का पहले उल्लेख किया जा चुका है। जिस मूलभूत विचार-बोध के आधार पर भूमि-वितरण का असाम्य दूर करना होगा, वह है भूमि पर किसी प्रकार का व्यक्तिगत स्वामित्व नही रहेगा। ग्राम की भूमि का स्वामी सम्पूर्ण ग्राम होगा।

जो व्यक्ति अपने हाथ से खेती करना चाहेगा, उसे ही भूमि मिलेगी। यह एक महान् क्रातिमूलक विचार है। इसे कार्यरूप मे परिणत करने का काम भी एक महान् क्रान्ति का काम है। लोक-मानस मे आमूल परिवर्तन लाने से ही यह क्रान्ति सम्भव होगी। सर्व-सेवा-सघ भूदान-यज्ञ-आन्दोलन का सचालन और व्यवस्था करता आ रहा है। विनोवाजी का खयाल है कि किसी सस्था की सीमा मे रखकर क्राति ला सकना सम्भव नही है? इसीलिए वे चाहते है कि आन्दोलन का भार जन-साधारण पर डाल दिया जाय। इससे आन्दोलन व्यापक होगा और क्राति भी सहज-साध्य होगी। इसके अतिरिक्त गाधी-स्मारक-निधि से धन लेकर आन्दोलन का खर्च पूरा किया जा रहा है। आन्दोलन को सस्था-निरपेक्ष करने के लिए यह भी जरूरी है कि केन्द्रीय सस्था से आर्थिक सहायता लेनी बन्द की जाय। जन-साधारण द्वारा आन्दोलन का भार ग्रहण कर लिये जाने पर धन की विशेष आवश्यकता नही रह जायगी। तब सम्पूर्ण समय देनेवाले कार्यकर्ताओ के लिए आर्थिक व्यवस्था न करने से काम नही चलेगा। सम्पत्तिदान-यज्ञ मे प्राप्त धन का एक अश इस मद मे खर्च किया जा सकता है। सम्पत्तिदान मे प्राप्त सम्पत्ति को जिन-जिन उद्देश्यो के लिए खर्च करने के नियम है, उनमे अन्यतम उद्देश्य यह है कि त्यागी गरीब कार्यकर्ताओ के न्यूनतम निर्वाह-व्यय के लिए सम्पत्तिदान में मिला धन खर्च किया जा सकता है। इसीलिए विनोबाजी चाहते है कि सम्पत्ति-दान-यज्ञ-आन्दोलन अत्यन्त व्यापक रूप से चलाया जाय। सितम्बर १९५५ के अन्त मे सर्व-सेवा-सघ की प्रबन्ध-समिति के कुछ सदस्य विनोवाजी के उडीसा के कुजेन्द्री पडाव पर उनसे मिलने गये। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के भावी स्वरूप के सम्बन्ध में उनसे बातचीत के क्रम मे विनोवाजी ने उपर्युक्त मनोभाव व्यक्त किये। उससे आन्दोलन के भावी स्वरूप के बारे मे स्पष्ट धारणा बन पायेगी। सर्व-सेवा-सघ ने विनोबाजी की उस विचारधारा को मान लिया है और आन्दोलन को वैसा ही रूप देने के लिए आवश्यक व्यवस्था कर रहा है। आन्दोलन के भावी स्वरूप के सम्वन्ध मे विनोवाजी की उपर्युक्त बातचीत का साराश यह है :

"आन्दोलन को किसी सस्था की सीमा या नियम मे बाँधकर क्रान्ति नही लायी जाती। सर्व-सेवा-सघ तो एक सस्था है। सस्था के माध्यम से

सहायता दी जाती है, किन्तु क्रान्ति लाने के लिए लोकमानस में परिवर्तन होना आवश्यक है। मै चाहता हू कि सन् १९५७ मे क्रान्ति हो, अर्थात् ग्राम-ग्राम मे लोग उठ खडे हो और हम जैसा चाहते है, उस ढग से भूमि का वितरण हो। उस दिन को आने में जितना समय लगे, लगे। किन्तु, अन्तिम क्रान्ति का काम एक ही दिन होना चाहिए। एक तिथि निश्चित करके उस दिन सारे भारत में भूमि-वितरण करना होगा। वैसा लोकमानस तैयार करने के लिए जो कुछ करना आवश्यक हो, वह किया जाय। हम लोगो की पद-यात्रा भी चलेगी, कुछ रचनात्मक काम भी होगे और राजनीतिक दलो की सहानुभूति भी प्राप्त की जायगी। यह सब तो होगा ही। किन्तु, अतिम लक्ष्य प्राप्त होगा जनशक्ति के द्वारा।

"हम लोग गाधी-निधि आदि से अभी जो पैसा ले रहे है, उसे लेना बन्द करके कह देना होगा कि इस क्रान्ति के काम को सम्पूर्ण भारत की जनता ही पूरा करेगी। हम लोग इस काम के लिए किसीसे पैसा नही लेगे। देश के केवल बीस-पच्चीस स्थानो मे कार्यालय रखने होगें। वहाँ दानपत्र आदि जमा रहेगे। इस काम के लिए जो एकाध लाख रुपये की आवश्यकता होगी, वह तो गाधी-निधि से लेकर पूरी की जायगी, पर आन्दोलन का भार जनता पर छोड देना होगा। यह बात ठीक है कि पैसे की व्यवस्था न रहने से पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता (Wholetime Worker) नही मिलेगे। इसके लिए केन्द्रीय व्यवस्था बन्द करके सम्पत्तिदान के लिए जोरदार चेष्टा करनी होगी और सम्पत्तिदान से आर्थिक सहायता लेकर कार्यकर्ताओ की व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार सारी व्यवस्था जन-शक्ति के माध्यम से होगी। इसे स्वीकार करके एक दिन निश्चित करना होगा और राम-नाम लेकर ऊपर से आर्थिक सहायता लेना बन्द कर देना होगा। लोग कहते है कि यह काम केवल आप लोगो का नही है, हम लोगो का भी है। तब हम निरर्थक क्यो यह अहकार रखे कि केवल हम ही यह काम कर रहे है। यदि हम सस्था के माध्यम से काम करना बन्द कर दे, तो काम को सफल बनाने का भार प्रत्यक्ष रूप से जनता पर आ जायगा। हाँ, रचनात्मक कार्यो की बात अलग है और मै चाहता हूँ कि कोरापुट जिले में रचनात्मक काम चलते रहे। इसके अतिरिक्त जो सब जमीन मिली है, उसके अधिकाश का वितरण करके

लोगो के समक्ष वितरण-प्रणाली का एक नमूना रखना होगा। वाकी काम जनता को ही करने होगे। वितरण के सम्वन्ध में हमारे जो नियम है, उन्हें वडे-वडे अक्षरो में छपाकर प्रत्येक ग्राम में टँगवा देना होगा। तव उन नियमो के अनुसार कोई भी व्यक्ति वितरण-कार्य कर सकेगा। इस प्रकार आन्दोलन को तत्रमुक्त अवस्था मे ले जाने के लिए जो कुछ आवश्यक हो, वह आप लोग करें।"

उपसंहार

प्रेम की शक्ति शान्तिपूर्वक और अदृश्य रूप से काम करती रहती है। फिर एक दिन किसी शुभ अवसर पर वह विराट् आकार मे प्रकट होती है। तव लोग उसे देखकर स्तम्भित हो जाते है। महात्मा गाधी ने भारत-भूमि में सामुदायिक प्रेम का वीज वोया था। वह वीज अकुरित होने के लिए मिट्टी के नीचे अदृश्य रूप से क्रियाशील था और एक दिन लोक-चक्षु के अतराल मे अकुरित हुआ था। आज एक और साधु के शीतल जल-सिंचन से वह तरुण वृक्ष के रूप में द्रुतगति से वढ रहा है। लोग इसकी वृद्धि की गति और प्रकृति को देखकर आश्चर्य कर रहे है। यह काम महात्मा गाधी के कार्यक्रम मे शामिल था। इस सम्वन्ध मे विनोवाजी ने कहा है : "आज जिस काम को मैने आपके समक्ष उपस्थित किया है, उसे आपने अपने हृदय से मान लिया है और मैंने देखा है कि उसे समझाने में मुझे कुछ विशेष कष्ट नही उठाना पडा। इसका अर्थ क्या है ? महापुरुष की शक्ति जव उसके शरीर में वँधी रहती है, तव वह सीमावद्ध रहती है, किन्तु जव वे शरीर त्याग देते है, तव वही शक्ति अधिक तेज के साथ काम करने लगती है। यदि हम लोगो के मन की भूमिका ठीक तरह से गठित हो, तो हम हृदय से यह अनुभव करेगे कि गाधीजी विराजमान है—वे तिरोहित नही हो गये है। आज उन्हीकी शक्ति वहुत-से लोगो को प्रेरणा दे रही है। परमेश्वर अपना काम अनेक प्रकार से पूरा करा लेते है। समुद्र मे अनेक लहरे उठती है। परमेश्वररूपी समुद्र मे सत्पुरुषरूपी लहरें उठती है। और, यदि हम उन लहरो का स्पर्श करते है, तो हमें उनसे प्रेरणा और नवजीवन प्राप्त होता है। आज जो कार्यक्रम मैने देश के समक्ष रखा है, वह गाधीजी का ही आदर्श कार्यक्रम है। आप लोगो मे यह विश्वास रहना चाहिए कि हमे एक आशीर्वाद प्राप्त है।"

अभी यह काम ईश्वर की प्रेरणा और संकेत से हो रहा है। अन्यथा, किसी व्यक्ति-विशेष या कुछ व्यक्तियों के संचालन में इतना सम्भव नहीं होता। इस आन्दोलन की आशातीत प्रगति देखकर विस्मय होता है। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि भूदान-यज्ञ कोई साधारण आन्दोलन नहीं है। भूमि लेकर इसका आरम्भ भले ही है, किन्तु इसका मूल गम्भीरतम प्रदेश में है। यह एक धर्म-आन्दोलन है। यह युग की माँग है। यह युग-धर्म है। धर्म-प्रवाह का आरम्भ होता है अत्यन्त संकीर्ण आकार में। क्रमशः उसका विस्तार होता है और अन्त में वह सम्पूर्ण भू-भाग को प्लावित कर देता है। वह आरम्भ में वृक्ष के क्षुद्रतम बीज के आकार में प्रकट होता है, किन्तु क्रमशः बढ़कर विशाल वृक्ष में परिणत हो जाता है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "साधारणतः वट वृक्ष के साथ धर्म की तुलना की जाती है। जो धर्म चेतनामय और जीवन्त होता है, वह वट वृक्ष की तरह बढ़ता है। उससे जो शाखाएँ फूटती हैं, कालान्तर में वे जड़ के रूप में परिणत हो जाती हैं और नये-नये वृक्ष पैदा हो जाते हैं। धर्म-विचार के क्षेत्र में भी ऐसा ही होता है। वट वृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है, इसीलिए उसके साथ धर्म की उपमा दी जाती है। आम का पेड़ बड़ा तो होता है, पर उसकी गुठली छोटी नहीं होती। बरगद का बीज बहुत छोटा होता है और इस छोटे बीज में ही सारी शक्ति निहित रहती है। इसी प्रकार भूदान-यज्ञ के नाम से जो आन्दोलन आरम्भ हुआ है, उसका बीज भी इतना छोटा था कि जिन्होंने उसे बोया था, वे भी यह नहीं सोच सके थे कि वह इतना व्यापक रूप धारण करेगा और उसकी शाखाओं से भी नये-नये वृक्षों का जन्म होगा।" इसमें नवीन समाज-रचना का बीज निहित है। सिर्फ यही नहीं, विश्व की आज जो सबसे आवश्यक समस्या है, उसके समाधान का बीज भी इसमें निहित है। यदि भारत इस आन्दोलन को पूर्णतः सफल कर सकेगा, तो केवल सर्वोदय-समाज की स्थापना में ही उसकी परिणति नहीं होगी, बल्कि उससे विश्व शान्ति का मार्ग देख सकेगा। वह सम्पूर्ण विश्व को अभय मंत्र देने में सक्षम होगा।

महाकवि शेक्सपियर की वाणी में कहा जाय, 'There is a tide in the affairs of man.'—मनुष्य के जीवन में उन्नति का एक शुभ क्षण आता है, जैसा व्यक्तिगत जीवन में, वैसा ही जाति और देश के

जीवन मे भी। यदि हम उस शुभ क्षण को पहचान ले और अनन्य रूप से कार्यरत होकर उसका सद्व्यवहार कर सके, तो अविलम्ब ही और अनायास ही देश अभीप्ट प्राप्त करेगा। हमारे देश और जाति के लिए वह शुभ क्षण उपस्थित है।

इस गम्भीर प्रसग मे गीता का अतिम श्लोक स्मरण हो आता है

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥"

"जहाँ योगेश्वर कृष्ण है, जहाँ धनुर्धारी पार्थ है, वही श्री है, विजय है, वैभव है और अविचल नीति है—यह मेरा मत है।"

महात्मा गाधी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है "यहाँ श्रीकृष्ण को 'योगेश्वर' विशेषण दिया गया है। अतएव उसका अर्थ है, अनुभवसिद्ध शुद्ध ज्ञान। 'धनुर्धारी पार्थ' के द्वारा अनुभवसिद्ध ज्ञान की अनुसारिणी क्रिया सूचित की गयी है।" जहाँ अनुभवसिद्ध ज्ञान और तदनुसारिणी क्रिया—इन दोनो का सयोग होगा, वही श्री, विजय, वैभव, सब मिलेगे।

आज भारत मे पूर्ण विकसित आत्मज्ञान और तदनुसारिणी क्रिया—इन दोनो की आवश्यकता है। यदि इन दोनो को हम एक साथ प्राप्त कर सके, तो हमे श्री, विजय, वैभव, सब कुछ प्राप्त होगा। भगवान् हमे वह शक्ति प्रदान करे।

◆

...और भूदान-साहित्य

क्रान्ति का अगला कदम	।)
मानवीय क्रान्ति	।)
(अन्य लेखक)	
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
जीवनदान	।)
श्रमदान	।)
भूदान-आरोहण	॥)
पावन-प्रसंग	॥)
सत्संग	॥)
सन्त विनोबा की आनन्द-यात्रा	१॥)
सुन्दरपुर की पाठशाला	॥।)
विनोबा के साथ	१)
क्रान्ति की राह पर	१)
क्रान्ति की ओर	१)
पावन-प्रकाश (नाटक)	।)
क्रान्ति की पुकार	=)
पूर्व-बुनियादी	॥)
गोसेवा की विचारधारा	॥)
भूमि-क्रान्ति की महानदी	॥।)
भूदान-दीपिका	=)
गाँव का गोकुल	।)
सर्वोदय भजनावलि	।)
सेवाग्राम-आश्रम [परिचय]	।=)
सर्वोदय पद-यात्रा	१)
गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन	॥)
सामाजिक क्रान्ति और भूदान	।-)
ग्रामशाला : ग्रामज्ञान	१)
आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१)
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१)
छात्रों के बीच	।)
धरती के गीत	-)
नक्षत्रों की छाया में	प्रेस में
भूदान-गंगोत्री	प्रेस में

M K
Bhoo
Revolt
Princ
Swara
Voice
The (
A Pic
Jeeva
Dema
Bhoo
Sarvc
Lessc
Non-
Why
Prog
Bhoc
Plan